॥ श्रीरूपकलादेव्यैनमः ॥

विनय-पीयूष

[सर्व सिद्धांत समन्वित विनयपत्रिकाका सबसे बृहत् तिलक]

द्वितीय हिलोर

(पद २५ से ३९ तक)

लेखक

महात्मा श्री अंजनीनन्दन शरणजी (ज० सु० श० सीतला सहाय सावंत, बी० ए० एल्एल्बी०, भूतपूर्व एडवोकेट, हाईकोर्ट, इलाहाबाद। सम्पादक, "मानस-पीयूष" और "मानसमणि")

प्रथम संस्करण] सन् १९४८ ई० [मू० ३)

प्रकाशक

पं. रामचंद्रदास

साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, मानसकेसरी, मॉट्. डिप्., टी. डी.

पीयूष धारालय

विठ्ठलक्रीडाभवन, बड़ौदा।

लेखकद्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक

पं. मोतीदासजी चेतनदासजी

कबीर प्रिन्टींग प्रेस,

सीयाबाग, बड़ौदा।

श्रीमंत सरकार हुक्म No. (D) 53/44 Date 26-11-45
के आधारपर मुद्रित।

सांकेतिक अक्षरोंका विवरण

हस्तलिखित पोथियाँ	सांकेतिक अक्षर
१ सं. १६६६ की श्रीभगवान् ब्राह्मणकी लिखी प्रति। रामनगर, काशी।	६६
२ १८६९ की श्री चौधरी छुन्नीसिंहकी एक पोथी। रामनगर, काशी।	६९
३ श्रीभागवतदासजीकी प्रतिलिपि।	भा.
४ सं. १८७८ की श्री बेनी कायस्थकी लिखी पोथी। मिरजापूर।	बे.
५ सं. १८७९ की श्री प्रल्हाददासकी लिखी पोथी। राज्यपुस्तकालय, बलरामपुर।	प्र.
६ सं. १८९३ की श्री जमुनादास वैश्यकी लिखी पोथी।	ज.
७ सं. १९१५ की श्री रामदत्तदासकी लिखी पोथी	१५
८ ईजानगर (विजयानगर) के व्यासकी पोथी।	रा.

छपी हुई पुस्तकें

१ मूल, व्यंकटेश्वर प्रेस। सं. १९५१	५१
२ ,, ,, सं. १९५७	
३ मुरादाबाद लक्ष्मीनारायण यंत्रालय।	मु.
४ चरखारी नरेशकी लीथोमें छपी टीका। सन १८७६	च.
५ बाबू शिवप्रकाश (डुमराँव) की टीका। सं. १९४१	डु.
६ श्री वैजनाथजीकी लीथोमें छपी टीका। सं. १९४७	बै.
७ श्रीसीतारामीय बाबा हरिहरप्रसादजीकी टीका। सन १९०४	ह.
८ वीरकवि पं. महावीरप्रसाद मालवीयकी टीका	७४
९ पं. रामेश्वर भट्टजीकी टीका, तीसरा संस्करण सन १९२५	भ.
१० लाला श्रीभगवानदीनजीकी टीका। सं. १९८५	दी.
११ श्री वियोगी हरिजीकी टीका। सं. १९८७	वि.
१२ मास्टर बिहारीलाल, टीकमगढ़की टीका।	टी.
१३ पं. रामकुमारजीके खर्रे	खर्रा, रा. कु.
१४ डु. मु. बै. भ. दी. और वि. का समुच्चय	आ.

पदसूची

अंक	पद	विनय	पृष्ठ
२५	जयति अंजनागर्भ अंभोधि संभूज बिधु ।	श्रीहनुमानजी	१
२६	जयति मर्कटाधीस मृगराज बिक्रम ।	,,	३४
२७	जयति मंगलागार संसारभारापहर ।	,,	५१
२८	जयति बात संजात बिख्यात बिक्रम ।	,,	६२
२९	जयति निर्भरानंद संदोह ।	,,	८५
३०	जाके गति है हनुमानकी ।	,,	९९
३१	ताकि है तमकि ताकी ओर को	,,	१०२
३२	ऐसी तोहि न बुझिए ।	,,	११०
३३	समरथ सुअन समीरके ।	,,	१२२
३४	अति आरत अति स्वारथी ।	,,	१३३
३५	कटु कहिये गाढे परे सुनि ।	,,	१३९
३६	मंगल मूरति मारुतनंदन ।	,,	१५०
३७	लाल लाडिले लखन ।	श्रीलक्ष्मणजी	१५४
३८	जयति लक्ष्मणानंत भगवंत ।	,,	१६४
३९	जयति भूमिजा रमन ।	श्रीभरतजी	१८४

॥ श्रीहनुमतेनमः ॥

विनय-पीयूष

२५ [१४] राग-धनाश्री

जयति[1] अंजनागर्भ अंभोधि संभूत बिधु बिबुधकुलकैरवानंदकारी ।
केसरीचारुलोचनचकोरकसुखद लोकगनसोकसंतापहारी ॥१॥
जयति बालार्क[2] कपि केलि कौतुक उदित चंडकर मंडल ग्रासकर्त्ता ।
राहुरविसक्रपबिगर्ब खर्बीकरन सरनभयहरन जय भुवनभर्त्ता ॥२॥

---

१ मु०, ७४ में नहीं है । २ रा० में 'जयति बाल कपि'; मु०, भा०, बे०, ५१, बै, डु०, ७४ में 'जयति जय बाल कपि' और ज० में 'जयति रन बाल कपि' है । ६६ में 'जयति बालार्कपि' है । 'बालार्कपि' का कोई अर्थ समझमें नहीं आता और न छन्दही बैठता जान पड़ता है । संभवतः एक 'क' भूलसे छूट गया है और इस तरह 'बालार्क कपि' उसका पाठ जान पड़ता है । यहाँ 'बालार्क' संबोधन हो सकता है । परन्तु उसी अंतरेमें कविने इनको उदित चंडकर मंडलका ग्रासकर्ता कहा है । एक सूर्य दूसरे सूर्यको ग्रास करे यह ठीक नहीं जँचता । इसीसे संभवतः लोगोंने 'बाल कपि' पाठ कर दिया हो और 'अर्क' के बदलेमें 'जय' ये दो अक्षर बढ़ाकर छंदकी पूर्ति की हो । हमको तो ऐसा जान पड़ता है कि यहाँ कविने आर्षकवि श्रीवाल्मीकिजीके उ० सर्ग ३५ के 'बालार्काभि मुखो बालो बालार्क इव मूर्तिमान् । गृहीत कामो बालार्क प्लवतेऽम्बर मध्यगः । २४ ।' इस श्लोकके भावकोही यहाँ उद्धृत कर दिया है । श्लोकका अर्थ है कि 'उस समय सूर्यको

शब्दार्थ—जयति = जय हो। यह आशीर्वाद है जो ब्राह्मणादि गुरुजन प्रणामके उत्तरमें देते हैं। परन्तु आशीर्वादके अतिरिक्त इस शब्दका प्रयोग देवताओं वा महात्माओंकी अभिवंदना सूचित करनेके-लियेभी होता है जिसमें कुछ याचनाका भाव मिला रहता है। यही अर्थ यहाँभी है। पुनः, वंदना करनेकी प्राचीन रीति है कि प्रथम 'जय' शब्द उच्चारण करके स्तुति करे। यथा 'जयेति नामोच्चार्य्य ततो स्तोत्रमुदीरयेत्।' अंजना = कुंजरनामक वानरकी पुत्री और केसरीनामक वानरकी स्त्री। कहीं कहीं इनको गौतमकी पुत्रीभी लिखा है। पूर्व जन्ममें यह पुंजिकस्थलानामकी अप्सरा थी जो परम सुंदरी थी। शापवश वही कुंजर वानरकी कन्या हुई। वानरयोनिमेंभी वह इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी। एक बार वह मनुष्यरूप धारण कर माला, आभरण आदिसे विभूषित पर्वतशिखरपर बैठी थीं। पवनदेवने उसपर मोहित हो मनसे उसका आलिंगन किया, जिसके प्रभावसे महाबली, महापराक्रमी, महातेजस्वी और सब प्रकार पवनके समान श्रीहनुमान्‌जी पवनके औरस और केसरीके क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न हुए।* (वाल्मी० कि० सर्ग ६६ में यह

पकड़नेकी इच्छा किये हुए यह मूर्तिमान् बालसूर्यकी तरह बालक हनुमान्‌जी आकाशके बीच जा पहुँचे।' इसप्रमाणसे ६६ का पाठ शुद्ध जान पड़ता है और प्राचीनतम तो हैही। दूसरे, चन्द्रमाका रूपक प्रथम अन्तरेमें दिया गया है और इस अन्तरेमें सूर्यको ग्रास करना कहते हैं। चंद्रमाका सूर्यके तेजको ढक लेना कहना योग्य नहीं। अतः इनको यहां 'बालार्क' कहा गया है।

* श्रीहनुमान्‌जीका जन्म कार्तिक कृ. १४, मंगलवारको स्वाती नक्षत्र और मेष लग्नमें हुआ। 'ऊर्जे कृष्ण चतुर्दश्यां भौमे स्वात्यां कपीश्वर। मेष लग्नेऽञ्जनीगर्भात् प्रादुर्भूत शिवः स्वयम्॥' यह श्लोक जन्मके संबंधमें प्रसिद्ध है। परन्तु कहीं कहीं इनका जन्म अगहन कृ. १४ और कहीं चैत्रकी पूर्णिमाको माना जाता है। किसी एक ग्रंथमें हमने इनका जन्म एकादशीको लिखा देखा था। महीना चैत्र हो या कार्तिक।

कथा जाम्बवान्‌जीने हनुमान्‌जीसे कही है ।) अंभोदि = जलका अधिष्ठान, समुद्र । गर्भ = स्त्रीके पेटके भीतरका वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है । संभूत = उत्पन्न, पैदा । बिधु = चंद्रमा । बिबुध = देवता । कुल = समूह, समुदाय । कैरव = कुमुद, कुई, कोकाबेली । इसके विषयमें ऐसा प्रसिद्ध है कि यह चंद्रमाको देखकर खिलता है और सूर्यके प्रकाशमें संपुटित हो जाता है । ठीक इसके विपरीत कमलका हाल है । चकोर यह चंद्रमाका बड़ा भारी प्रेमी है । उसकी ओर एकटक देखा करता है, यहांतक कि आगकी चिनगारियोंको वह चन्द्रमाकी किरण समझ कर खा जाता है । कवियोंने इसके प्रेमका उल्लेख अपनी उक्तियोंमें बराबर किया है । यथा ' जूही अपने मित्रहित पावक खात चकोर । जो हरि सुमिरै प्रीति ते क्यों न होइ भल तोर । ' (विश्राम सागर) पद २ देखिये । चकोरक = चकोरका बच्चा, चकोरका । लोकगन = सभी लोगोंका, समस्त लोकोंका । केलि = क्रीड़ा, विनोद । कौतुक = खेल, सहजही । यथा ' कीस कौतुक केलि लूम लंकादहन ' । (२६) चंडकर = तीक्ष्ण किरणवाला, सूर्य । मंडल = चन्द्रमा या सूर्यके चारों ओर पड़नेवाला घेरा जो कभी कभी आकाशमें बादलोंकी बहुत हलकी तह या कुहरा रहनेपर दिखायी पड़ता है । किसी वस्तुका वह गोल भाग जो अपनी दृष्टिके सम्मुख हो । ग्रास = उतना भोजन जितना कि एक बार मुंहमें छोड़ा जाय, कौर । ग्रहण = पकड़ । ग्रासकर्ता = निगलनेवाले । राहु = नवग्रहोंमेंसे एक ग्रह जो विप्रचित्तिके वीर्यसे सिंहिकाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । यह बहुत बलवान् था । समुद्रमंथनपर जब अमृत निकला और भगवान् मोहिनीरूप धारण कर उसे बाँटने लगे तब इसने, यह देखा कि सब अमृत देवताओंमेंही बँट जायगा, चोरीसे देवताओंके साथ सूर्य और चंद्रमाके बीचमें बैठकर अमृत पी लिया । सूर्य और चंद्रमाने यह चोरी देख ली और भगवान्‌को इशारा कर दिया । भगवान्‌ने चक्रसे उसकी गर्दन काट ली । पर वह अमृत पी चुका था इससे मरा नहीं, वरंच उसका मस्तकभी अमर हो गया । इसी मस्तकका नाम ' राहु ' हुआ और कबंध (धड़) ' केतु ' कहलाया । सूर्य और चन्द्रमाके

इशारेसे मस्तक काटा गया था; इससे वह इन दोनोंसे बैर मानता है और उस मस्तकसेही वह इन दोनोंको समयसमयपर ग्रसता रहता है। इसी ग्रासको 'ग्रहण' कहते हैं। पवि = वज्र, भालेके फलके समान एक शस्त्र जो इन्द्रका प्रधान शस्त्र कहा जाता है। ब्रह्मर्षि अथर्वाके पुत्र श्रीदधीचि ऋषिकी हड्डीसे यह बनाया गया था। पुराणोंमें इसकी उत्पत्तिकी कथाएँ भिन्न भिन्न हैं। गर्ब = गरूर, घमंड। खर्ब्बी = तुच्छ, छोटा। यथा '**खर्ब निसाचर बाँधेऊ नागपास सोइ राम।**', '**महा मत्त गजराज कहं बस कर अंकुस खर्ब।**', **परम बर्बर खर्ब गर्ब पर्वत चढ्यो अज्ञ सर्वज्ञ जनमनि जनावों।**' भर्त्ता = स्वामी।

पदार्थ—(माता) अंजनाके गर्भरूपी समुद्रसे उत्पन्न चन्द्रमा (रूप), देवकुलरूपी कुमुदको विकसित करनेवाले और समस्त लोकोंके शोक संतापके हरनेवाले! आपकी जय हो। १। वानरी बालविनोदसे उदय हुए सूर्यमण्डलको सहजही ग्रास कर लेनेवाले (मूर्तिमान्) बालसूर्य! आपकी जय हो। राहु, सूर्य, इन्द्र और वज्रके गर्वको तुच्छ कर डालनेवाले, (नीचा दिखाने वा चूर्ण करनेवाले) शरणागतका भय हरनेवाले, लोकोंके स्वामी!* आपकी जय हो। २।

नोट— यहांसे श्रीहनुमान्‌जीकी विनय प्रारंभ करके ग्यारह पदोंमें उनकी वंदना की गयी है। इनके अतिरिक्त पद ३६ मेंभी इनकी वंदना है। पद ३६ इन्हींकी वंदनासे प्रारंभ होता है। परन्तु आगे चलकर उसमें समष्टि वंदना है। इस तरहसे बारह पद हो सकते हैं। श्रीहनुमान्‌जी एक तो रुद्रावतार हैं। भगवान् शंकरही रामसेवाको सरस जानकर वानररूप हो प्रभुकी नित्य सेवामें रहकर कृतार्थ हुए। दूसरे, श्रीरामजी-तक पहुँचनेकेलिये इनसे बढ़कर दूसरा वसीला नहीं। किसी प्रकारसे ये शिवरूपसे कम नहीं हैं। अतः इनकीभी १२ पदोंमें स्तुति की गयी। †

---

*अर्थान्तर—'भुवनभर्त्ता श्रीरघुनाथजीके शरणागतोंके भयके हरनेवाले।' (वै०) परन्तु 'भुवनभर्त्ता' विशेषण श्रीहनुमान्‌जीकेलिये आगे पद २६ मेंभी आया है। यथा '**केसरीसुवन भुवनैकभर्त्ता।**'

†यह जनश्रुति है कि गोस्वामीजीने श्रीहनुमान्‌जीकी बारह मूर्तियाँ

श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण, श्रीशत्रुघ्न और श्रीहनुमान्‌जीमेंसे इनकी वंदना प्रथम क्यों की गयी ? यह बातभी मनमानी घरजानी नहीं है। यहांपरभी आगे जो क्रम वंदनाका है वहभी शास्त्रबद्ध नियमके अनुसार है।

सभामें प्रवेश करनेकेलिये पूज्य श्री गोस्वामीजीको प्रथम फाटकपर द्वारपाल विघ्नविनाशक श्रीगणेशजीसे, दूसरेपर श्रीसूर्यभगवान्‌से, तीसरेपर श्रीशिवजीसे, चौथेपर श्रीपार्वतीजीसे, पाँचवेंपर श्रीगंगाजी तथा श्रीयमुनाजीसे, छठेपर श्रीकाशीजीसे और सातवेंपर श्रीचित्रकूटसे इस तरह सात ड्योढ़ियोंपर सात द्वारपालोंसे क्रमशः प्रार्थनापूर्वक प्रवेशकी आज्ञा प्राप्त कर भीतर जानेपर श्रीरामजीके सिंहासनके सामने श्रीअंजनीनंदन श्रीहनुमान्‌जी, सामने दाहिने चँवर लिये हुए श्रीभरतजी, पीछे छत्र लिये हुए श्रीलक्ष्मणजी और बाएँ हाथकी ओर व्यंजनधारी श्रीशत्रुघ्नजीका दर्शन होता है। सिंहासनपर श्रीरामजीके वामभागमें जगदंबा श्रीजानकीजी विराजमान हैं। "**हनूमंतंच श्रोतारमग्रतः स्यत् त्रिकोणकम्** । ५० । **पश्चिमे लक्ष्मणं धृत्वा धृतच्छत्रंच चामरम्** ।५१। " (श्रीरामतापनीयोपनिषद्) "**वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः। शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वायव्यकोणादिषु ॥ सुग्रीवश्च बिभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्। मध्ये नीलसरोज कोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम्** ॥ " शास्त्रका सिद्धान्त है कि राजा, गुरु, आदि श्रेष्ठोंके पास जानेपर प्रथम उनकी परिक्रमा करे, तब उन्हें प्रणामपूर्वक अपनी प्रार्थना सुनावे। यथा '**पुरीत्य देव देवेशं गुरूं नरपतिं तथा। प्रणम्य कूर्मवच्चैव स्वास्याभीष्टं निवेदयेत्** ॥ '* श्रीमद्‌गोस्वामीजीने विनयपत्रिकामें यही नियम पालन किया है। अर्थात् सप्तद्वारपालोंकी कृपासे भीतर सभामें प्रवेश होनेपर श्रीहनुमान्‌जीसे प्रथम भेट होती है।

स्थापित की थीं। यहभी एक कारण बारह पदोंमें विनय करनेका हो सकता है।

* सविस्तर वर्णन अमररामायण, भुशुण्डिरामायण, कोशलखण्ड और वसिष्ठसंहिता आदि ग्रंथोंमें मिलेगा।

फिर प्रदक्षिणा करते हुए क्रमशः श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्नजीसे मिलना होता है। जब बायीं ओरसे सिंहासनके अति सन्निकट जाने लगे तब अंबा श्रीजानकीजूकी कृपा प्राप्त कर श्रीसरकारके करकंजोंमें पत्रिका देते हुए आग्रह करते हैं कि '**बिनयपत्रिका दीनकी बाप आपुही बाँचो।**'

टिप्पणी—१ 'जयति अंजनागर्भअंभोधिसंभूत बिधु' इति। अंजनाजीके गर्भमें समुद्रका आरोप करके हनुमान्जीमें चन्द्रमा, बिबुधकुलमें कैरव, और केसरीके नेत्रोंमें चकोरका आरोपण किया गया। इस तरह यहां परंपरितरूपक अलंकार है। रूपक निम्न मिलानसे स्पष्ट हो जायगा।

अंजनीके गर्भसे हनुमान्जीका जन्म।	१	पृथ्वीके गर्भ समुद्रसे चन्द्रमाका जन्म।

समुद्रमंथनसमय जो १४ रत्न उसमेंसे निकले उसमेंसे एक चन्द्रमाभी है। इसीसे चन्द्रमाका जन्म समुद्रसे कहा जाता है। यथा '**जनम सिंधु पुनि बंधु बिष**' (बा०)

हनुमान्जीसे देवकुलको आह्लाद हुआ।	२	चन्द्रमासे कैरव विकसित होता है।

सीताशोध, लंकादहन, निशाचर वध, मेघनादरावणयज्ञविध्वंस, कालनेमिवध और संजीवनीप्राप्तिद्वारा लक्ष्मणप्राणदातृत्व इत्यादि (हनुमान्जीके) कर्मोंसे देवताओंको सुख हुआ। वे बंदीखानेसे छूटे और उनके संतप्त हृदय शीतल हुए। यथा, '**उथपैथन थपै उथपन पन बिबुधबृन्द बंदिछोर को। जलधि लंघि दहि लंक प्रबल दल दलन निसाचर घोर को।**' (३१)

ध्वनिसे यहभी सूचित करते हैं कि रावणरूपी सूर्योदयसे देवसमुदायरूपी कुमुद संपुटित हो गये थे। सकुलसदलरावणनाशरूपी सूर्यास्त और श्रीहनुमान्रूपी चन्द्रोदयसे वे पुनः विकसित हुए। मिलान कीजिये, "**नारि कुमुदिनी अवध सर रघुमति बिरह दिनेस। अस्त भए बिकसित भई निरखि राम राकेस ॥७०॥**" संपत्तिका छिन जाना और रावणसे भयभीत रहनाही यहाँ कुमुदका संकुचित होना है। यथा, '**मुनि सिद्ध सकल सुर परमभयातुर नमत नाथ पदकंजा।** (बा०)

'रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥ आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता ॥'

हनुमान्‌जीको देख केशरीके नेत्रोंको सुख। ३ चन्द्रमासे चकोरको सुख।

चकोरका चन्द्रमासे भारी प्रेम है। वह चन्द्रमाकी ओर एकटक देखता रहता है। वैसेही केसरीका हनुमान्‌जीपर भारी प्रेम है। चकोर चंद्रकिरणको पान करता है। केसरीजी वात्सल्यभावसे अपने पुत्रको देखकर सुखी होते हैं और उनके कीर्त्तिचंद्रकिरणको पान करते हैं।

हनुमान्‌जीने त्रैलोक्यका शोक संताप दूर किया।	४	चंद्रमा लोगोंके शोक संतापको हरता है।

अंधेरी रातमेंही प्रायः चोरों आदिका भय होता है। यथा, **'चोरहि चंदिनि राति न भावा'**। चन्द्रमा शरदातपको हरता है और उसकी किरणोंसे अन्नादिका पोषण होता है जिससे लोग जीवित रहते हैं। यथा, **'सरदातप निसि ससि अपहरई।' 'जगहितहेतु बिमल बिधु पूषन।'** (बा०) रावणके अत्याचारसे समस्त लोक शोकातुर और संतप्त थे। यथा, **'निज संताप सुनायेसि रोई। काहू ते कछु काज न होई ॥' 'गगन गिरा गंभीर भइ हरन सोक संदेह।'** (बा०)

२ 'अंजनागर्भ अंभोधिसंभूत विधु विबुधकुलकैरवानन्दकारी' इति। अंजनाके गर्भको समुद्र, श्रीहनुमान्‌जीको चन्द्रमा और सुरवंशको कुमुदिनी-का रूपक देकर आह्लादकत्व विशिष्टगुण प्रदर्शित किया है। माता अंजनाका गर्भ वड़वाग्नि एवं रत्न धारण करनेवाले महोदधिके तुल्य अनन्त, अगाध और प्रशान्त है। तभी तो त्रिभुवनविजयी महावीर हनुमान् जैसा पुत्ररत्न प्रसूत हुआ। जिस प्रकार वड़वाग्निको धारण करनेमें समुद्रही समर्थ है, उसी प्रकार वड़वानलसेभी तीव्रतर हनुमान्‌को गर्भके अन्दर धारण करनेमें माता अंजना पूर्ण समर्थ थी। समुद्रसे चतुर्दशरत्न प्राप्त हुए। माता अंजनाके गर्भसे चतुर्दशभुवनविजयी पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। समुद्रोत्पन्न विधुरत्न सुधांशु है, अमृत धारण करता है। अंजनागर्भसंभूतरत्न स्वयं अमृत अमर है। सुधांशुमें आल्हादकत्वगुण है किन्तु एकाङ्गी। वह सुखी संयोगी व्यक्तियोंकोही आल्हादित कर सकता है,

विरहियोंको नहीं। मर्यादापुरुषोत्तमकी विरहदशामें उसने उनको आल्हादित न कर व्यथित किया, किन्तु अंजनागर्भसंभूतविधुने उसी विरहावस्थामें उन्हें पूर्ण आल्हादसे विभोर बनाया। 'विधु' पूर्णचन्द्रकी संज्ञा है, पर्यायी है। षोडशकलापूर्णचन्द्रको 'विधु' कहा जाता है। अंजनागर्भसंभूतविधु ज्ञान भक्ति वैराग्यकी समस्त कलाओंसे पूर्ण है। रामरावण युद्धमें भगवान् रामको आड़े और गाढ़े समयमें पूर्ण साहाय्य प्रदान कर भयभीत देवकुलहृदयकुमुदको विकसित करनेमें समर्थ अंजनागर्भसंभूतविधुही थे। (दे० द० शर्माजी)

३ 'केसरी चारु लोचन चकोरक' इति। भक्तशिरोमणि श्रीहनुमन्‌जीके दर्शनसे सुखी होनेसे 'लोचन' को 'चारु' कहा। भागवत और भगवत् दर्शनसे नेत्र सफल होते हैं। इसीसे कहा है, **ज्यों चितई परनारि सुने पातक प्रपंच घर घरके। त्यों न साधु सुरसरि तरंग निर्मल गुनगन रघुबरके।' (वि०), 'देखु रामसेवक सुनु कीरति रटहि नाम करि गान गाथ।' (वि०), 'नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा।' (बा०), और 'हनुमान् देखे जग जीवन को फल भो।' (बाहुक)।** पुनः केसरीजीके नेत्रोंको चारु चकोर कहकर जनाया कि वे हनुमान्‌जीको आँखोंकी ओट नहीं होने देते। प्राकृत चकोर प्राकृत चन्द्रमाको आँखोंसे ओझल हो जाने देता है, अतः वह 'चारु' नहीं है।

४ 'कपि केलि कौतुक उदित चंडकर' इति। (क) श्रीहनुमान्‌जीके जन्मकी कुछ कथा अंजनाजीके प्रसंगमें शब्दार्थमें दी गयी है। (ख) सूर्यमण्डलग्रास आदिकी कथा वाल्मीकिजीने कि० सर्ग ६६ और उ० सर्ग ३५ में लिखी है। कि० कांडमें जाम्बवान्‌जीने हनुमान्‌जीसे उनके जन्मादिकी कथा इस प्रकार कही है कि 'तुम्हारा जन्म एक गुहा (पर्वतकी गुफ़ा) में हुआ। उस महावनमें प्रातःकालके समय सूर्यका उदय देख उसे फल समझकर इसे लेनेकी इच्छासे तुम छलाँग मारकर आकाशमें पहुँचे। तीनसौ योजन ऊपर जानेके बाद सूर्यके तेजसे आक्रान्त होनेपरभी तुम्हारे मनमें खेद न हुआ।' उत्तरकांडमें महर्षि अगस्त्यजीने

इनके बालकेलीकी कथा श्रीरघुनाथजीसे इस प्रकार कही है कि ' सुमेरु नामके स्वर्णपर्वतपर इनके पिता केसरी राज्य करते थे। हनुमान्‌जीकी माता अंजना एक दिन फल लानेकेलिये बनमें गयी। उससमय माताके चले जानेसे और भूखकी प्रबलताके कारण बालक हनुमान् बहुत रोये। इतनेमेंही इन्हें जपाकुसुमके समान उदय होता हुआ सूर्य दिखायी दिया। उसे फल समझकर ये उसकी ओर दौड़े। यह देखकर देवता, दानव और यक्षोंको बड़ा विस्मय हुआ। अपने पुत्रको सूर्यकी ओर जाते देख उसे उसकी दाहसे बचानेकेलिये उस समय वायुदेवभी वर्षाके समान शीतल होकर उसके पीछे पीछे चल रहे थे। इस प्रकार बालक हनुमान् कयी हज़ार योजन आकाश पार करके सूर्यके पास पहुँचे। जिस दिन ये सूर्यको पकड़नेकेलिये उछले थे उसी दिन राहुभी सूर्यको ग्रसनेकेलिये चला था। जब इन्होंने सूर्यके रथपर पहुँच राहुको पकडनेकी चेष्टा की तब वह वहांसे भागकर क्रोधमें भरा हुआ इंद्रके पास आकर बोला, ' तुमने मेरी भूख मिटानेकेलिये सूर्य और चन्द्रको मुझे दिया था तब इस समय तुमने उन्हें दूसरेके अधीन क्यों कर दिया ? आज मेरा पर्वकाल था, पर वहां तो एक दूसरे राहुने आकर सूर्यको ग्रस लिया। राहुके वचन सुनकर इंद्र घबड़ाकर ऐरावतपर चढ़ राहुको आगे कर वहां पहुँचे। राहुको फल समझ वे सूर्यको छोड़ पुनः उसकी ओर दौड़े तब वह डरकर चिल्लाने लगा, ' इंद्र ! मुझे बचाओ। ' इंद्रने यह कहते हुए कि ' डरो मत, मैं इसे मारता हूँ, ' ऐरावतको बढ़ाया। इन्होंने ऐरावतकोभी एक विशाल फल समझा और ये उसे पकड़ने दौड़े। उस समय कुछ देरकेलिये उनका रूप औरभी भयंकर हो गया। इससे इंद्रकोभी क्रोध हो आया और इन्होंने इनपर वज्रका प्रहार किया। वज्रकी चोट खाकर ये पर्वतपर गिरे जिससे इनकी बायी ' हनु ' (ठुड्डी) कुछ टूट गयी। (वाल्मी० रा० उ० सर्ग ३५ श्लो० २२ से ४७ तक)

(ग) ' राहु रवि सक्र पवि गर्ब खर्बीकरन ' इति। राहुको गर्व था कि मैंही सूर्यको ग्रस सकता हूँ, सो वहभी इनको देखकर रक्षाकेलिये पुकार करने लगा और भाग गया। सूर्यको अपने तेज और गतिका

गर्व था, सो हनुमान्‌जीके तेज और गतिके आगे जाता रहा। इन्द्रको देवराज, शत्रुशाली होने और अपने वज्रका गर्व था। वह गर्व हनुमान्‌-जीकी बालकेलीके आगे जाता रहा। वही इन्द्र ऐसे घबड़ा गये कि बालकपरही उन्होंने वज्र चला दिया। शत्रुशाली वज्रभी कुछ न कर सका। केवल कुछ टुड्डीपर चोट आयी। पर साथही वज्रके दाँतही गोठिल हो गये। पद ३१ टि० ४ 'जाकी चिबुक चोट' देखिये।

सूर्यग्रासका आध्यात्मिक रहस्यः—श्रीयुत् रामचंद्र शंकरजी टकी महाराज लिखते हैं कि, 'श्रीहनुमान्‌जी यह देखकर कि सूर्यरूप ज्ञानको राहुरूप अज्ञान ग्रस रहा है तथा यह जानकर कि ज्ञान और अज्ञान दोनोंही मायानिर्मित हैं, उनपर झपट पड़े। उस समय उनका विरोध करनेकेलिये इन्द्रादिरूप कामादि षड् रिपुओंने अपनी वज्ररूप शक्ति उनके हनुरूप भूमिकापर डाली। किन्तु वह केवल स्पर्श करकेही गेंदकी तरह उछल गयी।' (रामायणाङ्कसे)

'राग धनाश्री' का साभिप्राय प्रयोजनः—पं० देवदत्तशर्माजी लिखते हैं कि गोस्वामीजी आजकलके छायावादी कवियोंकी भाँति निष्प्रयोजन पत्थरमें फूल खिलानेवाले कवि नहीं थे। उन्होंने जो कुछभी लिखा है उसमें उनकी आत्मप्रेरणा, सत्यनिष्ठा निहित है। यही कारण है कि उनके भाव, भाषा और विन्यास अस्त व्यस्त न होकर विशिष्ट आशययुक्त और संगत होते हैं। श्रीहनुमान्‌जीकी स्तुतिमें उनके सच्चे हृदयके खरे भाव तो हैंही, किन्तु कथन और शैलीका सामञ्जस्यभी युक्तियुक्त तथ्यपूर्ण है।

आपने 'राग धनाश्री' द्वारा आञ्जनेयकी बिरुदावली गायी है। 'धनाश्री रागका' प्रयोग सदैव वीररसमें किया जाता है। यह हेमन्तके द्वितीय प्रहरमें गायी जाती है। इस रागमें पांच पदोंद्वारा वीरत्वपूर्ण बिरुदावली ऐसे ढंगसे गायी गयी है कि जिसे पढ़तेही नसनसमें वीरभाव-नाएँ जागृत हो जाती हैं। प्रथम पदमें हनुमान्‌जीके अनेक यशकृत्योंका दिग्दर्शन, स्मरण कराते हुए यह प्रगट किया है कि 'तुम तुलसीदासके

भवभयको नष्ट करनेमें समर्थ हो और जानकीजीवनके साथ सदैव अयोध्यामें निवास करते हो।'

यह प्रसिद्धही है कि हनुमान्‌जीको जबतक उनके पुरुषार्थका परिचय कोई दूसरा न दे तबतक उन्हें आत्मसाहसशक्तिका पताही नहीं रहता। समुद्रोल्लंघनमें जाम्बवान्‌ने परिचय दिया जिसके फलस्वरूप रामचर्चा सुन्दर बनी और रामावतार सफल हुआ। इसी उद्देश्यसे गोस्वामीजीभी उनकी पूर्ण विरुदावली वीररससे गाकर अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहते हैं।

'युगल सरकारके साथ उन्हींकी राजधानीमें आप उनके विश्वस्त संरक्षक बनकर रहते हैं। उन्हींके निकट विनयपत्र भेजना है। मैं कलि-कल्मषसे क्लान्त हूँ, दीन हूँ। आप स्वयं वीर हैं, समर्थ हैं। युगलसरकारके कृपापात्र हैं। अतः वीरतापूर्वक मेरे दैन्यको नष्ट करनेमें आपही समर्थ है। मुझ पतितकी फ़रियाद राजाधिराजके पासतक आपही पहुँचा सकते हैं और दो शब्द सिफ़ारशके कहनेमें आपही समर्थ हैं। आप जन्मतः विघ्न प्रत्यवायोंको चूर्ण करनेमें समर्थ हैं। अतः मुझे विश्वास है, कि 'बाँहगहेकी लाज' आप अवश्य रखेंगे।'

विशेष भावः—यह पद तुलसीके मुखसे आर्तहिन्दुओंके हृदयकी पुकार है। गोस्वामीजी महात्मा थे। लोककल्याणकी भावनासे ओतप्रोत थे। वे अपने युगके सर्वजनीन, सहृदय राष्ट्रनायक थे। तत्कालीन सत्ताके-प्रति उनके हृदयमें पूर्ण घृणा थी। वे उसको सदय बनकर सत्पथमें लाना चाहते थे। क्रान्ति करना नहीं चाहते थे। भूषण आदिकी भाँति बवण्डर नहीं पैदा करना चाहते थे। उनके हृदयमें एक टीस थी, वेदना थी। फिरभी महात्मा होनेके नाते विरोधियोंको समूल नष्ट करनेकी चेष्टा तो दूर रही, इच्छाभी नहीं थी। विवश होकर यही कहते, '**को करि सोचमरै तुलसी हम जानकिनाथके हाथ बिकाने।**' वे व्यक्तिविरोधी न थे, सिद्धान्तविरोधी थे। व्यक्तिको नष्ट करनेकेलिये वीरकेशरीसे प्रार्थना नहीं करते थे। अपितु जघन्य प्रवृत्तियों और सिद्धान्तोंको समूल नष्ट करनेकेलिये आंजनेयको उकसाते थे। तुलसीदास मानवताके पुजारी थे।

गोस्वामीजीके समयमें देश, धर्म, समाज कुशासनके शिकंजेमें इस प्रकार ग्रस्त था कि विरक्त महात्माका हृदयभी द्रवीत हो उठा और उन्होंने उससे मुक्त होनेकी प्रार्थना संकटमोचनसे की। इसका प्रमाण इस पदका अन्तिम चरण है। '**राहु रवि सक्र पवि गर्ब खर्ब्बी करन सरनभयहरन जय भुवन भर्ता**'। '**राहु**' और '**सक्र पवि**' तत्कालीन शासक और शासनके इशारे हैं। रोटी बेटी छीनी जानेसे भयभीत प्रजाको शरणागत बतलाकर भुवनभर्ता विशेषण देकर औरभी स्पष्ट कर दिया। निःसन्देह यह विनंति गोस्वामीजीने आत्मकल्याणकेलिये नहीं वरं ग्रस्त भारतीय प्रजाकी ओरसे की थी।

गोस्वामीजीका काव्यही रूपक है। यह पद परम्परारूपकका सुन्दर उदाहरण है। चन्द्रमा, सूर्य, राहु आदि साभिप्राय शब्द परम्परितरूपकसे रिक्त नहीं हैं। रामचरितमानसमें भलेही हम चन्द्रमा, सूर्य, राहु और रावणको उनके वाचक अभिधेय मान लें। किन्तु विनयमें तो यवनशासक शासनके अतिरिक्त और कोई भावही नहीं। ऐसेही वर्णन तुलसीकी स्थिति और तत्कालीन सामाजिक दशाके द्योतक हैं।

अनुसंधान [२५]

जयति धीरधुर[३] बीर रघुबीर हित रुद्र अवतार संसारा पाता।
बिप्रसुरसिद्धमुनिआसिषाकर बपुषबिमलगुन बुद्धिबारिधिबिधाता॥३॥
जयति सुग्रीव सिक्षादि रक्षन निपुन बालि बलसालि बध मुख्य हेतू।
जलधिलंघनसिंह सिंहिकामदमथन रजनिचरनगरउत्पातकेतू॥४॥
जयति भूनंदिनी सोचमोचन बिपिन दलन[४] घननाद बस बिगत संका।
लूम [५]लीलानलज्वालमालाकुलित होलिका करन लंकेस लंका॥५॥

---

३ धीर धुर बीर रघुबीर—६६ रा०। धुर धीर रघुबीर रनधीर—भा०, ह०। धर्म धुर धीर रघुबीर रनधीर—बे०। धीर धुर धीर रघुबीर रनधीर—प्र०। रनधीर रघुबीर हित देवमनि—शि०, ५१, ७४, आ०। धर्म धुर धीर पर पीर रघुबीर—ज०। ४ दहन—ह०, ज०। ५ लीला अनल—बि०, ७४, ५१, भ, दी०, वि०। लीलानल—औरोंमें।

शब्दार्थ—धीर = जिसमें धीरज हो; जो संकट या कठिनायी आदि उपस्थित होनेपर घबड़ा न जाय, दृढ़ और शान्त चित्तवाला। धुर = गाड़ी या रथ आदिका धुरा, (वह डंडा जिसमें पहिये पहनाये रहते हैं और जिसपर पहिये घूमते हैं।) भार संभालनेवाला, प्रधान, शिरोमणि। बीर = साहसी और बलवान् योद्धा। हित = लिये। यथा, 'हरि हित हरहु चाप गरु आई' (बा०) भलाई चाहनेवाला, हितैषी। यथा, 'राम सों न मातु पितु स्वामी समरत्थ हित।' अवतार = जन्म, शरीरग्रहण। देवताओंका मनुष्यादि संसारी प्राणियोंके शरीरको धारण करना अवतार कहलाता है। पाता (सं० पातृ) = रक्षा करनेवाला। आसिषाकर = (आसिष+आकर) आशीर्वादोंकी खानि। मंगलकामना-सूचक वचनको आशीर्वाद कहते हैं। आशीर्वादोंका। बपुष (सं० वपुस्) = शरीर, देह। बुद्धि बारिधि बिधाता = पद १ देखिये। सिक्षा (शिक्षा) = उपदेश, मंत्र, सलाह। रक्षन (रक्षण) = आपत्तिसे बचाने, रक्षा करनेमें। निपुन (निपुण) = कुशल, प्रवीण, चतुर, पूरे होशियार। बालि = यह किष्किंधाका राजा और सुग्रीवका बड़ा भाई था। दोनोंके जन्मकी कथा इस प्रकार है कि ब्रह्माकी आँखोंसे गिरे हुए आँसूसे ऋक्षराज नामका एक बानर उत्पन्न हुआ। एक बार अपनी छाया जलमें देखकर वह उसमें कूद पड़ा। जब वहांसे बाहर निकला तो उसका सुन्दर स्त्रीका रूप हो गया। सूर्य और इन्द्र दोनों उसपर मोहित हो गये। सूर्यका तेज उसकी ग्रीवापर पड़ा जिससे सुग्रीव हुआ। इन्द्रका तेज मस्तकपर पड़ा जिससे बाली हुआ। सालि (शालि) = शोभित, पूर्ण भरा हुआ। बलसालि = महाबली। मुख्य=प्रधान, सबसे बड़ा। हेतु = कारण। लंघन = लाँघना, उछलकर पार जाना। सिंह = शेर। यह वीरता और श्रेष्ठतावाचक शब्द है। शेर सरीखे निडर और पराक्रमी। सिंहिका = यह राहुकी माता है। यह स्वेच्छारूप-धारिणी और छायाग्राहिणी थी। रावणकी आज्ञासे यह समुद्रमें रहती थी। 'करि माया नभके खग गहई', जिसमें कोई लंकामें न जा सके। इसका पराक्रम अत्यन्त दुर्धर्ष था। इसकी माया जलमें लगती थी, इसीसे

कोई इसके कार्यमें बाधक न हुआ। यथा, 'सिंहिका नाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा। आकाशगामिनां छायामाकृष्याकृष्य भक्षयेत्।' (अध्यात्मे) हनुमान्‌जीने इसका वध किया। मथन = नष्ट वा ध्वंस करनेवाले। रजनिचर = निशाचर, रावण। भूनंदिनी = श्रीजानकीजी। पृथ्वी माताके गर्भसे ये प्रगट हुई थीं; इस कारण भूमिजा, धरणिसुता, भूनंदिनी इत्यादि नाम हुए। विपिन=वन। यहां अशोकवन अभिप्रेत है। यथा, 'तहं असोक उपवन जहं रहई। सीता बैठि सोचरत अहई।' (कि०) 'बन उजारि रावनहिं प्रबोधी' (उ०)। घननाद=मेघनाद। यह रावणका सबसे बड़ा पुत्र था। पैदा होनेपर इसने मेघोंके समान गर्जना की थी। इसीसे मेघनाद नाम हुआ। इन्द्रने जब रावणको बाँध लिया तब इसने अपनी मायासे गुप्त होकर इन्द्रको फाँसकर कैद कर लिया था। उस समयसे उसका नाम 'इन्द्रजित्, पाकारिजित्' हुआ। लूम=पूंछ। लीला=क्रीड़ा, केलि, विलास। वह व्यापार जो केवल चित्तके मनोरंजनकेलिये किया गया हो। ‡ आकुलित=व्याकुल, घबड़ाए हुए व्याप्त, पूर्णयुक्त। होलिका = होली। लकड़ी फूस आदिका वह ढेर जो होलीके दिन जलाया जाता है। वर्षके अंतमें होली जलायी जाती है। इसीसे उसे संवत्सरका जलानाभी कहते हैं।

पद्यार्थ—धीरोंमें श्रेष्ठ और वीर रघुबीर श्रीरामचन्द्रजीके हितैषी, रुद्रके अवतार, संसारके रक्षक,* ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनियोंके आशीर्वादोंकी खानि (रूप) शरीरवाले, निर्मल गुणोंके सागर और बुद्धिके विधाता! आपकी जय हो। ३। सुग्रीवजीकी शिक्षा आदि रक्षामें निपुण, महाबली बालिके वधके मुख्य कारण, समुद्रके लाँघनेमें सिंह (के समान

अर्थांतर—*'रघुबीरकेलिये रुद्रावतार लेकर संसारके रक्षक'। (पं० रा० कु०)। ‡ हु०, वै० ने 'आकुलित' का अर्थ 'व्याकुल' किया है। उनका अर्थ है, 'लूमको घुमाने फिराने आदि कौतुकमें अग्निकी निकली हुई ज्वाला समूहसे व्याकुल रावणकी नगरीको'। भट्टजी और वि० नेभी उन्हींका अर्थ लिया है। परन्तु घबड़ाये हुएको जलानेमें प्रशंसा नहीं है। दूसरे, 'आकुलित' और 'लंकेस लंका' एक दूसरेसे दूर हैं।

निर्भय और पराक्रमी), सिंहिकाके घमंडको चूर्ण कर डालनेवाले, रावणके नगरमें उपद्रव करनेमें केतुरूप (श्रीहनुमान्‌जी) ! आपकी जय हो ।४। श्रीजानकीजीके सोचको दूर करनेवाले, अशोक वनको ध्वंस (नष्टभ्रष्ट) करनेवाले, मेघनादके वशमें (होकर) भी शंकारहित, अग्निकी ज्वाला-समूहसे युक्त, अपनी पूँछके विलाससे लंकपति रावणकी लंकाको होली करडालनेवाले अर्थात् जला डालनेवाले (श्रीहनुमान्‌जी) ! आपकी जय हो ।५।

टिप्पणी—५ (क) 'धीरधुर बीर रघुबीर हित' इति । 'धीरधुर बीर' रघुबीर और हनुमान्‌जी दोनोंका विशेषण हो सकता है । किसीभी विकटसे विकट कार्यमें इन्होंने धैर्यका त्याग नहीं किया । आगे 'सिंहिकामदमथन' आदि इनके इस विशेषणके प्रमाण हैं । मानसमें सिंहिकावध प्रसंगमेंभी ये विशेषण आये हैं । यथा, '**ताहि मारि मारुतसुत बीरा । बारिधि पार गएउ मति धीरा ।**' उसको मारनेसे 'वीर' और उसके कपटसे न घबड़ानेसे 'धीर' विशेषण दिये गये । परन्तु 'धीरधुर बीर' को रघुवीरका विशेषण माननेसे हनुमान्‌जीकी प्रशंसा अधिक होगी कि ऐसे वीरकीभी आपने सहायता की । क्या सहायता की ? यह कि सीता शोध समयही आपने आधी लंका वीरोंसे खाली कर दी, कोटको तहस नहस कर दिया, फिर सेतुबंधन आपकेही बुद्धि देनेसे हुआ, संजीवनी लाकर मेघनादवधके कारण बने, जो कार्य दूसरेसे नहीं हो सकता था वह दुर्गम कार्य करके रावणवधमें सहायक हुए ।

(ख) 'रुद्र अवतार' इति । श्रीहनुमान्‌जी रुद्रावतार हैं । यथा, दोहावल्याम् '**जानि रामसेवा सरस समुझि करब अनुमान । पुरुखा ते सेवक भए हर ते मे हनुमान ॥**' '**जेहि सरीर रति राम सो सोइ आदरहिं सुजान । रुद्र देह तजि नेह बस बानर मे हनुमान ॥**' '**राम काज लगि तव अवतारा ।**' (किं), '**आर्त्तः संकुचितमुखकमलः समरसंकटे भगवतो रुद्रावतारस्य मारुतेः साशंकमुखकमलविकाशं पश्यति ।**' (ह० ना० अंक १३) श्रीरामचन्द्रजी दुःखी होते हुए मलिन मुख कमल होकर रणसंकटमें शंकासे भगवान् रुद्रावतार हनुमान्‌जीके मुखकमलकी निर्मलताको देखने लगे ।

'मेष लग्नेऽञ्जनी गर्भात्प्रादुर्भूतच्छिवः स्वयम् ।', 'ततो जाम्बवान् देव ! रुद्रावतारोऽयंमारुतिः । रुद्रस्तुतिः क्रियताम् ।' (ह० ना० अंक ६) जाम्बवान् बोले कि ये हनुमान् रुद्रावतार हैं। इनकी स्तुति कीजिये ।

कहा जाता है कि रावणने अपने दस शिरोंसे दस रुद्रोंको प्रसन्न किया। ग्यारहवें रुद्रका अवतार हनुमान्जी हैं। यह अनुमान रावणकाभी है। यथा, 'तुष्टः पिनाकी दशभिः शिरोभिस्तुष्टो न चैकादशमो हि रुद्राः। अतो हनुमान्दहतीति कोपात्पंक्तेर्हि भेदो न पुनः शिवाय ॥' (ह० ना० ६ ।२७।)

तंत्रग्रंथों, संहिताओं, सूत्रग्रन्थों और पुराणोंमें अनेक स्थलोंमें हनुमान्जीको रुद्र वा महारुद्रावतार माना है। माता श्रीजानकीजीनेभी इन्हें रुद्रावतार माना है। आख्यायिका इस प्रकार प्रसिद्ध है कि एकबार महारानीजीने प्रसन्न होकर अपने हाथोंसे विविध व्यंजनोंका निर्माण करके श्रीहनुमान्जीको खिलाना शुरु किया। श्रीहनुमान्जीके भोजनकी इति न देखकर उन्होंने उनकी पीठपर 'ॐ नमः शिवाय' लिख दिया। बस उसी समय हनुमान्जी तृप्त हो गये। ऐसा करनेका महारानीजीका आशय यही था कि उपस्थित लोग समझ जायँ कि हनुमान्जी रुद्रावतार हैं।

(ग) 'रघुबीर हित रुद्र अवतार' इति। इसका एक अर्थ उपर लिख चुके कि 'रघुवीरके हित' हैं। ह० ना० मेंभी कहा है कि लंकामें सुषेणको पहुँचाकर फिर पवनतनयने प्रार्थना की कि 'स्वामिन् ! आज्ञा दीजिये, हम सब वीर आपका हित करनेको उपस्थित हैं'। 'देवाज्ञां देहि वीरस्तव हितकरणोपस्थिताः सन्ति सर्वे ॥' दूसरा अर्थ यहभी है कि 'रघुवीरकेलिये रुद्रावतार', । यथा, 'राम काज लगि तव अवतारा।'

(घ) 'रघुवीर' इति। त्यागवीरता, पराक्रमवीरता, दयावीरता, विद्यावीरता और धर्मवीरता ये पंचवीरता युक्त होनेसे श्रीरामचन्द्रजीको रघुवीर कहते हैं। यथा, 'त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः। पराक्रम महावीरो धर्मवीरो सदास्वतः ॥ पंचवीरसमाख्यातः राम एव स पंचधा। रघुवीर इतिख्यातः सर्ववीरोपलक्षणः ॥'

(ङ) ' संसारपाता ' इति । रुद्ररूपमें तो संहार करते हैं पर ' रुद्रावतार ' संसारकी रक्षाकेलिये हुआ । ' संसारपाता ' हैं इसीसे इन्हें ऐसी देह मिली जो ' आसिषोंकी मूर्ति ' ही है ।

६ ' आसिषाकर बपुष ' इति । आपका शरीर क्या है मानों समस्त विप्र, सुर, सिद्ध और मुनियोंके आशीर्वादसमूहकी मूर्तिही है । आशीर्वादोंने मिलकर यह शरीर धारण किया है । इसीसे ये 'संसारपाता' हुए । आसिषोंकी कथा इस प्रकार है । अगस्त्यजी कहते हैं कि, ' जब अपने पुत्रको वज्रके आघातसे विह्वल हो गिरते देख वायुदेवने उनको गोदमें लेकर गुफ़ामें घुसकर समस्त प्रजाके भीतरसे अपनी गति समेट ली और सबको प्राणान्त कष्ट होने लगा तब देवताओंको लेकर ब्रह्माजी पवनदेवके पास गये । चरणोंपर गिरते देख वायुको उन्होंने उठाया और बालक हनुमान्‌परभी हाथ फेरा । वे स्वस्थ हो गये और वायुदेवभी प्रसन्न हो पूर्ववत् सब प्राणियोंमें संचार करने लगे । तब वायुका प्रिय करनेकी इच्छासे ब्रह्माजी बोले, ' इंद्र, अग्नि, वरुण, महेश्वर और कुबेर ! आप सब लोग यद्यपि जानते हैं, तोभी मैं आपके हितकी बात कहता हूँ । इस बालकके द्वारा आपके बहुतसे कार्य होंगे । अतः वायुदेवकी प्रसन्नताकेलिये आप सब इसे वर दें । तब इन्द्रने इनके गलेमें सुनहरे कमलोंकी माला डालकर कहा, ' मेरे वज्रसे इसकी हनु टूट गयी थी, इसलिये इस कपिश्रेष्ठका नाम हनुमान् होगा । इसके अतिरिक्त मैं इसको वर देता हूँ कि आजसे यह मेरे वज्रकेद्वाराभी नहीं मारा जा सकेगा । ' सूर्यभगवान् बोले कि ' मैं इसे अपने तेजका शतांश देता हूँ और मैं इसे शास्त्रोंका ज्ञान कराऊँगा । ' वरुणने वर दिया कि हमारे पाश या जलसे इसकी मृत्यु कभीभी न होगी । यमने अपने दण्डसे अभय किया और निरोगताका वर दिया । कुबेरने वर दिया कि इसे युद्धमें कभी विषाद न होगा और मेरी गदा इसका वध न करेगी । महादेवने वर दिया कि ' यह मेरे और मेरे आयुधोंकेद्वाराभी अवध्य होगा । विश्वकर्माने अपने बनाये समस्त दिव्यास्त्रोंसे अवध्य होने और चिरकालतक जीवित रहनेका वर दिया । अन्तमें ब्रह्माजीने कहा कि ' यह

दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकारके ब्रह्मदण्डोंसे अवध्य होगा।' फिर पवनदेवसे बोले कि 'तुम्हारा पुत्र शत्रुओंकेलिये भयंकर होगा। इसे कोई न जीत सकेगा। यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा और जहां चाहेगा जा सकेगा। इसकी अव्याहत गति होगी। यह बड़ा यशस्वी होगा।'

'इस प्रकार अनेकों वर पाकर उनके प्रभावसे ये बड़े बली हो गये हैं। अपने निजी वेगसे ये साक्षात् समुद्रके समान पूर्ण थे और निर्भय होकर ऋषियोंके स्थानपर उपद्रव किया करते थे। ये शान्तचित्त मुनियोंके यज्ञोपयोगी पात्र फोड़ डालते थे। इसपर भृगु और अंगिरा-वंशीय मुनियोंने इन्हें यह शाप दिया कि, 'अरे वानर! जिस बलके घमंडसे तू हमें कष्ट पहुँचाता है, उसे हमारे शापके प्रभावसे, तू बहुत समयतक भूला रहेगा। जिस समय कोई तुझे तेरे यशका स्मरण दिला-येगा, उसी समय तेरा बल बढ़ेगा। (वाल्मी० रा० उ. ३५)

७ 'विमल गुन बुद्धि बारिधि बिधाता' इति। वाल्मी० उ० में अगस्त्यजी कहते हैं, 'संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीतिअनीतिके विवेक, गंभीरता, चतुरता, शूरवीरता और धैर्यमें हनुमान्से बढ़कर हो। ये अतुलित शक्तिसंपन्न कपिराज व्याकरणका अध्ययन करनेकेलिये सूर्यकी ओर मुख रखकर उनके आगे आगे उदयाचलसे अस्ताचल तक जाते थे। इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, भाष्य और संग्रह सभीका अच्छी तरह संग्रह किया है। अन्यान्य शास्त्रोंके ज्ञान तथा छन्द शास्त्रमेंभी इनकी जोड़का कोई दूसरा विद्वान् नहीं है। ये सभी विद्याओंमें और तपस्यामेंभी देवगुरु बृहस्पतिकी बराबरी करते हैं। संग्राममें प्रलयकालीन कालके समान इन हनुमान्जीके सामने ठहरनेकी ताब किसमें है?' गुन बारिधि और बुद्धि बिधाता इस तरह अन्वय करनेसे रूपक और यथासंख्यालंकार होता है।

८ 'सुग्रीव सिक्षादि रक्षन निपुन' इति। (क) श्रीरामलक्ष्मण-जीको पंपासरकी ओरसे आते देखकर जब सुग्रीव अत्यन्त भयभीत हुए 'अति सभीत कह सुनु हनुमाना।' तब उनके अन्य तीन मंत्रीभी जो वहाँ उपस्थित थे भयभीत हो गये। सभी भयभीत होकर भागने

लगे। भगदड़ मच गयी। उस अवस्थामें केवल हनुमान्‌जी निर्भय रहे। वालिके कुचक्रसे शंकित और भयभीत देख बोलनेमें कुशल श्रीहनुमान्‌जीने उनको समझाया, 'आप सब लोग बालिद्वारा अनिष्टकी आशंका न करें'। इस मलय पर्वतपर बाली नहीं आ सकता। अतएव मैं आपके भयका कोई कारण नहीं देखता। आश्चर्य है कि आपका चित्त इतना चंचल हो रहा है जिसके कारण आप अपनेको विचारमार्गपर स्थिर नहीं रख पाते। बुद्धि और विज्ञानसे संपन्न होकर आप दूसरोंकी चेष्टाओंद्वारा उनका मनोभाव समझें और तदनुसार सभी आवश्यक कार्य करें। जो राजा बुद्धिका त्याग कर देता है वह प्रजाका शासन नहीं कर सकता।'* यह 'शिक्षा' है।

इसी तरह जब चतुर्मासा बीत गया, श्रीसुग्रीवजी तारामें आसक्त हो रामकार्यको भूल गये तब फिर हनुमान्‌जीने उनको शिक्षा दी है। यथा, '**इहां पवनसुत हृदय बिचारा। रामकाज सुग्रीव बिसारा॥ निकट जाइ चरनन्ह सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा॥**' वाल्मीकीय कि० सर्ग २९ में शिक्षाका विस्तृत वर्णन है। सर्ग ३२ मेंभी शिक्षा है। पाठक वहां देख लें।

(ख) 'रक्षा निपुन' इति। श्रीहनुमान्‌जी बराबर बालीसे इनकी रक्षाका उपाय करते रहे। हनुमान्‌जीही तो श्रीरघुनाथजीको सुग्रीवके पास लाये और उन्हींने तो दोनोंमें मित्रता करायी। यथा, '**नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥ तेहि सन नाथ मइत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥**' '**तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ। पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥**' (कि०) इसीसे इन्हें 'बालि बलसाली बध मुख्य हेतू' कहा। न ये सुग्रीवकी श्रीरामजीसे मित्रता कराते, न बालीका वध होता।

* 'उवाच हनूमान् वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः ॥१३॥ संभ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्वालिकृते महान्। मलयोऽयं गिरिवरो भयं नेहास्ति बालिनः ॥१४॥ 'लघुचित्ततयाऽऽत्मानं न स्थापयसि यो मतौ ॥१७॥ बुद्धिविज्ञानसंपन्न इंगितैः सर्वमाचर। नह्यबुद्धिं गतोराजा सर्वभूतानि शास्ति हि ॥१८॥' (वाल्मी० रा० कि० सर्ग २)

(ग) ' बालि बलसालि ' इति । बालीके बलकी कथा सुग्रीवने श्रीरामजीसे स्वयं कही है । वह यह कि, " दुंदुभी राक्षस जो विशाल पर्वताकार भैंसेका रूप धरकर बालीसे लड़ने आया था, उसे बालीने हाथोंपर उठाकर पृथ्वीपर दे मारा और उसके निष्प्राण शरीरको (जिसके समस्त छिद्रोंसे बहुत खून गिरा था) हाथोंपर उठाकर बड़े वेगसे चार कोसपर फेंक दिया । उसकी सूखी हड्डियोंका ढेर पर्वतशिखरके समान जान पड़ता है । मोटे मोटे सालके सात वृक्ष हैं । पूर्वकालमें बालीने सालके इन सातों वृक्षोंको एकएक करके कई बार बींध डाला है । वह बड़े बड़े बलवानोंसेभी बली है । देवताभी उसे नहीं जीत सकते । " मानसमेंभी कहा है **'बालि महाबल अति रनधीरा ।'** हनु० ना० अंक ५ श्लोक ४८ में लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीसे बताया है कि ' इन सातों ताल वृक्षोंका एक बाणसे नाश कर देना योग्य है, नहीं तो ये फिर मारनेवालेकोही मार डालते हैं । ' **' एकदैव शरेणैकेनैव भिन्नकलेवराः । म्रियन्ते सप्ततालास्तं घ्नन्ति हन्तारमन्यथा ।'**

ऐसाभी कहा जाता है कि उसको वर था कि जो कोई उसके सामने आवेगा तो उसका आधा बल बालीमें आ जावेगा । अतः ' बलशालि ' विशेषण दिया गया ।

(घ) ' सिंहिका मद मथन ' इति । इसे मायाबलसे छायाग्राही हो गगनचारीका काम तमाम करनेका घमंड था । इसने ज्योंही हनुमान्‌जीकी छाया पकड़ी त्योंही हनुमान्‌जीको मालूम हुआ कि उन्हें सहसा किसने पकड़ लिया है । फिर नीचे जलमें एक विकृत मुखवाली राक्षसीको देखकर वे समझ गये कि यह वह अद्‌भुत छायाग्राही प्राणी है जिसे सुग्रीवने चलते समय बताया था । हनुमान्‌जी उसके मर्मस्थानोंको देखकर उसके मुँहमें घुसे और तीखे नखोंने उसके मर्मस्थानोंको फाड़कर बड़ी शीघ्रतासे बाहर निकलकर पुन: चल दिये । (वाल्मी०) । अध्यात्म रा० में पैरसे मारना लिखा है । मदभेद होनेसे कविने यहां 'मदमथन' कहा ।

'मद मथन' को दीपदेहलीन्यायसे 'रजनिचर' के साथभी ले सकते हैं।

क्योंकि रावण समझता था कि किसीकी मजाल नहीं जो लंकाकी ओर दृष्टि डाल सके। वहाँ पहुँचना और आग लगाना तो स्वप्नमेंभी दूर था।

(ङ) 'रजनिचर नगर उत्पाद केतू' इति। केतू और राहुका संबंध है। यह एक पुच्छलतारा है। इसका उदय जहां होता है वहां उत्पाद, उपद्रव, घोर घटनाएँ, राजाकी मृत्यु, अवर्षण, अकाल और महामारी इत्यादिसे प्रजाको क्लेश इत्यादि अरिष्ट होते हैं। यथा, 'दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥' (उ० १२०) 'उदय सम केतु हित सबहीके।' (बा०) हनुमान्‌जी उपमेय और केतु उपमानमें पूर्णरूपसे एकरूपता कथन 'समअभेदरूपक' है।

९ 'भूनंदिनीसोचमोन' इति। (क) श्रीजानकीजीको सोच था कि यथा 'जहं तहं गईं सकल मिलि सीताके मन सोच। मास दिवस बीते जो मोहि मारिहि निसिचर पोच॥' (सुं०) अर्थात् अभी एक मास तक विरह और सहना पड़ेगा। फिरभी एक अधम राक्षसके हाथों मरण होगा। स्वयं जल मरना चाहती हैं तो अग्निभी नहीं मिलती। शूलसमान वाणी सुनना पड़ेगी। उनके इस सोचको हनुमान्‌जीने मुद्रिका देकर, अपना परिचय और विश्वास कराकर, प्रभुका संदेसा देकर, अपना विशाल रूप दिखाकर और लंका जलाकर मिटाया। यथा, 'बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भएउ तात मो कहुं जलजाना।' 'प्रभु संदेस सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।' (सुं० १४-१६) 'मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी।' लंकासे चलते समय उन्होंने 'जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरज दीन्ह।' और फिर प्रभुसे इनका समाचार कह उनको तुरंत लंका ले आये।

(ख) 'सोचमोचन' के साथ 'भूनंदिनी' शब्द देनेमें भाव यह है कि पृथ्वीको सोच था कि भू भार कैसे उतरेगा, रावणादिका वध कैसे होगा? यथा, 'अतिसय देखि धरम कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥ निज संताप सुनायेसि रोई। काहू ते कछु काज न होई॥ संग गोतनधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका।'

श्रीजानकीजी ‘ भूमिजा ’ हैं, अतः उनको अपनी माताके कष्टका, भूभार-हरणमें विलंब होनेका ‘ सोच ’ होना उचितही है।

(ग) ‘ सोचमोचन ’ के बाद ‘ बिपिनदलन ’ इत्यादि सब चरित क्रमसे जैसे जैसे वे हुए, कहे गये। जोभी चरित इस चरणमें कहे गये वे सभी ‘ सोच ’ के छुड़ानेवाले कहे। इनसे बताया है कि किस प्रकार ‘ सोच ’ मोचन किया।

(घ) ‘ घननाद बस बिगत संका ’ इति। यह इशारा सुन्दरकांडमें कहे हुए नागपाशवाली कथाकी ओर है। जब मेघनाद छल बल मायासेभी हनुमान्‌जीको न जीत सका और उसे अपने प्राणोंका भय हुआ तब “ **ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा कपि मन कीन्ह बिचार। जो न ब्रह्मसर मानिहौं महिमा मिटै अपार॥** ” ब्रह्मास्त्र एवं ब्रह्माके वरदानकी महिमा मिट जायगी, इस विचारसे श्रीहनुमान्‌जी स्वयं मूर्च्छित बन गये। नहीं तो ब्रह्मास्त्र उनका कुछभी न कर सकता था। यथा, “ **प्रभु कारज लगि कपिहि बँधावा।** ” और अपनी पूँछमें आग लगवानेके बाद वे अपने शरीरको छोटा करके पाशसे बाहर निकल आये। इसीसे मेघनादद्वारा बंधन होनेसे इनको भय न हुआ।

(ङ) ‘ बिगत संका ’ इति। जो बाँधा जाता है उसे चित्तमें अनिष्टकी शंका रहती है। इसीसे ‘ घननादबस ’ कहकर ‘ बिगत संका ’ कहा। यथा, ‘ **देखि प्रताप न कपि मन संका। जिमि अहिगन महँ गरुड़ असंका॥** ’ निःशंक होनेका कारण इस अर्धालीसे स्पष्ट है। इनको बिलकुल भय नहीं था, यह बात रावणके ‘ **देखउँ अति असंक सठ तोही।** ’ इस वाक्यसेभी प्रगट है।

‘ बिगत ’ यह शब्द जब यौगिक अवस्थामें किसी संज्ञाके पहले आता है तब इसका अर्थ होता है ‘ जिसका नष्ट हो गया है ’। जैसे बिगतज्वर, बिगतनयन, बिगतत्रास।

१० (क) ‘लूम लीला’ इति। यथा, ‘ **बालधी बिसाल बिकराल ज्वाला जरत ज्यों लंक लीलबे को काल रसना पसारी है। कैधों चली मेरु ते कृसानु सरि भारी है।** ’ (क० सुं०)

(ख) 'होलिका करन लंकेस लंका' इति। लंकेस लंका' का भाव कि रावणके विद्यमान् रहते लंका होलीकी तरह जला डाली। यह उसकी राजधानी थी जिससे देवतातक भयभीत रहते थे। मिलान कीजिये, 'देखत तोहि नगर जेहि जारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा॥'

पुनः भाव कि जिस रावणको अपने बल पौरुषका अभिमान था उसकी लंका थी। मानस सुंदरकांडमें हनुमान् रावण संवादमें प्रारंभमें कविने 'लंकेस' पद दिया है। वही शब्द यहां देकर जनाया है कि जिस लंकेशने ऐसी ऐसी गर्वीली बातें की थीं उसीकी यह 'लंका' है।

(ग) 'होलिका करन' इति। यथा 'गोपद पयोधि करि होलिका ज्यों लाई लंक निपट निसंक पर पुर गलबल भो।' (बाहुक) 'उलटिपलटि लंका सब जारी।' 'होलीका करन' में यहभी ध्वनि है कि रावणका संवत्सर अब जल गया और श्रीरघुनाथजीका संवत्सर प्रारंभ हुआ।

अनुसंधान [२५]

जयति सौमित्रिरघुनंदनानंदकर रिक्ष कपि कटक संघट विधाई।
बद्ध सागर[६] सेतु अमरमंगलहेतु भानुकुलकेतु रनबिजयदायी॥
जयति[७] बज्र तनु दसन नख[८] मुख बिकट चंड भुजदंड तरु सैल पानी।
समर तैलिकजंत्र तिल तमीचर निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी॥
जयति दसकंठ घटकर्ण बारिदनाद कदनकारन कालनेमि हंता।
अघट घटना सुघट सुघट बिघटन बिकट भूमिपातालजलगगन गंता॥
जयति विश्वबिख्यात बानैत बिरुदावली बिदुष बरनत बेदबिमल बानी।
दास तुलसी त्रासममन सीतारमन संग सोहत[९] राम राजधानी॥

---

६ बद्ध सागर—६६। बद्ध बारिध—रा०, भा०, बे०, ५१, आ०। बाँधि बारिधि—ह०, ७४, ज०। बंधि बारिधि—१५। ७ जयति बज्र—६६, रा०। जयति जय बज्र—भा०, बे०, ह०, ५१, ७४, आ०। जयति बर बज्र—ज०। ८ मुख नख—७४। ९ सोहत—६६। सोभित—औरोंमें।

शब्दार्थ—संघट बिधाई=टि० ११ (ग) देखिये। बद्ध = जिससे बाँधा गया हो। (श० सा०) बद्ध सागर सेतु = जिसके द्वारा सागरमें सेतु बाँधा गया, सेतुबंधनमें सहायक वा सेतुबंधनके करनेवाले। अमर = जिन्होंने अमृत पान किया है, देवता। केतु = पताका, झंडा। लकड़ी आदिके डंडेके एक सिरेपर पहना हुआ तिकोना या चौकोना कपड़ा जिसपर कभीकभी राजा या संस्थाका चिन्ह या संकेत चित्रित रहता है। श्रेष्ठ। विजय = जीत। दसन (दशन) = दाँत। बिकट = भयंकर। यथा '**बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयेउ बिसेषा।**' (बा०) चंड = बल और साहस भरे हुए, पुष्ट। (वै०) प्रबल एवं दुर्दमनीय। भुजदंड = हाथके ऊपरका भाग जो डंडाकार होता है। पानी (सं० पाणि) = हाथ। तैलिक जंत्र = तिल, सरसों आदिसे तेल निकालनेवाली कल, कोल्हू। तिल इसे सभी जानते हैं। यह दो प्रकारका होता है। एक काला दूसरा सफ़ेद। यह खानेके काममेंभी आता है और इसका तेलभी निकालकर खाने और लगाने दोनों कामोंमें आता है। निकर = समूह। पेरना = दो भारी तथा बड़ी वस्तुओंके बीचमें डालकर किसी तीसरी वस्तुको इस प्रकारका दबाना कि उसका रस निकल आवे। कोल्हूमें तिल डालकर उसका तेल निकालनेकी क्रिया। यथा, '**भूली सूल कर्मकोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरो।**' (वि०) पेरि डारे = पेर डाला, कचूमड निकाल दिया; हाड़मास सब निकाल दिया। घालि = डालकर। यथा, '**स्यंदन घालि तुरत घर आवा**' (लं०) '**सो भुज बल राखेउ उर घालि**' (लं०), '**गएउ तुम्हारेहि कोछे घाली**' (उ०)। घानी=उतनी वस्तु जितनी एक बारमें कोल्हू या चक्कीमें डालकर पेरी या पीसी जाय। यथा, '**सुकृत सुमन तिल मोद बास बिधि जतन जंत्र भरि घानी।**' दसकंठ = दशग्रीव, रावण। घटकर्ण = कुंभकर्ण। बारिदनाद = मेघनाद। कदन=विनाश। कालनेमि = यह वह मायावी राक्षस था जो रावणकी आज्ञासे तपस्वीका वेष धारणकर द्रोणाचलके मार्गमें संजीवनी लेने जाते समय हनुमानजीको छल करके रोकनेकेलिये बैठा था। इसका कपट जाननेपर

हनुमान्‌जीने इसे लांगूलमें लपेटकर पटककर मार डाला। अघट, घटना, सुघट, विघटन = ये चारों शब्द सं० घट् (होना) से बने हैं। घटना =होना; उपस्थित होना। संज्ञाका अर्थ होगा 'कोई बात जो हो जाय, वाक़या, वारदात'। अघट = न हो सकने वाली; कठिन; असंभव। सुघट=सुंदर रीतिसे अर्थात् भलीभाँति बना देनेवाले; सहजही कर देनेवाले, अच्छा बना हुआ। बिघटन=संयोजक अंगोंको अलग अलग करना। तोड़ना, फोड़ना, नष्ट करना। यहां 'वि' उपसर्ग निषेध वा वैपरीत्यका अर्थ दे रहा है। बिघट = नष्ट करनेवाले, न होने-सरीखा कर देनेवाले, बिगाड़ डालनेवाले। गंता=जानेवाले। इसका प्रयोग विशेषतः समस्त पदके अंतमें होता है। जैसे अग्रगंता, गगनगंता। बिख्यात=प्रसिद्ध। बानैत (बाना + ऐत) = बाना धारण करनेवाले, बिरदवाले, यशस्वी योद्धा। बिरुद=बिरद, सुयश, सुकार्योंकी प्रशंसा। बाना = अंगीकार किया हुआ स्वभाव या धर्म। एक हथियार जिसे बानाइत पकड़कर बड़ी फुर्तीसे घुमाते हैं। विदुष=पंडित।

पद्यार्थ—श्रीसुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी और श्रीरघुनन्दन रामचन्द्रजीको आनंदित करनेवाले, रीछ और वानरोंकी सेनाको एकत्र करने तथा उसके विधानमें पंडित, समुद्रमें सेतु बाँधनेवाले, देवताओंके मंगलके कारणभूत और रघुकुलमें पताकारूप श्रीरामचन्द्रजीको रणमें विजय दिलानेवाले! आपकी जय हो।६। वज्र (समान दृढ़, कठोर, कड़ी और पुष्ट) शरीर, विकराल दाँतों, नखों और मुखवाले, दुर्दमनीय भुजदंडोंवाले और हाथोंमें वृक्ष और पर्वत धारण करनेवाले! आपकी जय हो। आपने संग्रामरूपी कोल्हूमें निशाचरसमूहरूपी तिलोंकी सुभटरूपी घानी डाल डालकर पेर डाला अर्थात् लंकामें जितने राक्षस थे उनमेंसे जितने उत्तम उत्तम भट थे उनको संग्राममें मार डाला।७। रावण, कुंभकर्ण और मेघनादके नाशके कारण स्वरूप, कालनेमिके मारनेवाले, असंभव कार्यको सहजही कर दिखानेवाले, खूब बने हुएको बिगाड़ डालनेमें, बड़े विकट एवं बने हुए-को बिगाड़नेवाले और विकरालरूप! पृथ्वी, पाताल, जल और आकाशमें (अप्रतिहत, बेरोक) जानेवाले! आपकी जय हो।८। हे जगत्प्रसिद्ध बानावाले!

आपकी जय हो। पंडित और वेद निर्मल वाणीसे आपकी यशावली वर्णन करते हैं। आप श्रीजानकीपति रघुनाथजीकेसाथ श्रीरामराजधानी (श्रीअयोध्याजी) में सुशोभित हो रहे हैं और मुझ तुलसीदासके त्रासके नाशक हैं।

टिप्पणी—११ (क) 'सौमित्रिरघुनन्दनानन्दकर' इति। यथा, "सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी॥ प्रति उपकार करउँ का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥ सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउ करि बिचार मन माहीं॥ पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥" (सुं०)। पुनश्च "कपिसेवा बस भए कनोड़े कहेउ पवनसुत आउ। देबे को न कछू रिनियां हौं धनिक तू पत्र लिखाउ॥" (वि०)

श्रीरघुनाथजीके इन उपर्युक्त बचनोंसेही प्रकट है कि कितना आनन्द हुआ होगा यह कोई कहही नहीं सकता।

स्मरण रहे कि यहां अभी क्रमसे चरित्रका उल्लेख हो रहा है। श्रीजानकीजीका (मुद्रिका देकर) सोच छुड़ाना, अशोकवन उजाड़ना, मेघनादद्वारा नागपाशमें बाँधा जाना और लंकाका जलाना कहे गये। सीताजीका सन्देस देकर आनन्द देना अब कह रहे हैं।

(ख) यहाँ 'सौमित्रि' को प्रथम कहा, यहभी क्रमसे है और साभिप्राय है। समाचार पाकर एवं 'अनुज समेत गहेहु प्रभुचरना' इन बचनोंको सुनकर इनको अतिशय आनन्द हुआ। इस आनन्दका परिचय हमें समुद्रतटपर, बिभीषणजीके सलाह देनेपर कि समुद्रसे विनय कीजिये, मिलता है। उनको देर करना न भाया। जैसा पूज्य कवि स्वयं कहते हैं, 'मंत्र न यह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥' दूसरे अधिक आनन्दका कारण यहभी है कि सीताहरणमें ये स्वयं अपनेको कारण समझते थे। जैसा कि श्रीरामजीने इनसे कहा है, यथा, 'आयेहु तात बचन मम पेली'। इत्यादि कारणोंसे इनको प्रथम कहा।

(ग) 'कटक संघट बिधाई' इति। 'संघट' शब्द यहाँ 'संगठन' से बना हुआ जान पड़ता है। 'इधर उधर बिखरे, फैले हुएको मिलाकर उपयोगी बनानेकी व्यवस्था' को कटक संघट विधान कहेंगे। पं० रामकुमारजीने 'संघट बिधाई' का अर्थ 'एकत्र करनेमें पंडित' लिखा है। प्रायः टीकाकारोंने भावार्थ करके छोड़ दिया है। बिधाई=विधान करनेवाले, विधि या रीति जाननेवाले। विधान=प्रबंध।

(घ) 'बद्धसागरसेतु अमरमंगलहेतु' इति। सेतुबंधन कहकर अमरमंगलहेतु कहनेका भाव कि देवताओंको सेतुबंधन होनेसे आनन्द हुआ। क्योंकि उनको सन्देह था कि सेना कैसे पार होगी! सेतुबंधन दुष्कर कार्य हुआ, जिसने रावणकोभी दहला दिया था। जैसा 'दसमुख बोलि उठा अकुलाना' (उ०) से प्रगट है। देवताओंको इस कार्यसे बड़ा हर्ष हुआ। यथा, 'लिये सैल साल ताल औ तमाल तोरि तोपे तोयनिधि सुरको समाज हरषा।' (क०)

(ङ) 'भानुकुलकेतु रन बिजयदाई' इति। इसमें वही भाव है जो मानसके 'ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समरसागर कहं बेरे।' (उ०) इस अर्धालीमें है। भाव कि रावणसंग्रामसागरको इन्होंने छोटी नदी समान बना दिया जिसपर बेड़ाद्वाराही पार हो सकें। श्रीरघुनाथजीको रावणपर विजय पाना सुगम कर दिया। वाल्मीकीय युद्धकांडमें हनुमान्‌जीने कहा है कि हमने सब दुर्गम मार्गों, दुर्गके संक्रमों आदिको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। 'शतघ्नः संक्रमाश्चैव नाशिता मे रघूत्तम।' आधीसे ज्यादा सेना तो सीताशोध समयही उन्होंने नष्ट कर दी थी। फिर कालनेमिवध, संजीविनी लाना इत्यादि कार्य करके भगवान्‌को विजय प्राप्त करनेमें सहायक हुए। अतः 'रणविजयदाई' कहा। मिलान कीजिये, "मनको अगम तन सुगम किये कपीस काज महाराजके समाज साज साजे हैं।" "तेरे बल बानर जिताए रन रावन सों तेरे घाले जातुधान भये घरघरके। तेरे बल रामराज किये सब सुरकाज सकल समाज साज साजे रघुबरके॥" (बाहुक)

१२ (क) 'बज्र तनु दसन नख मुख बिकट' इति। आदिमें

'वज्र' और अंतमें 'बिकट' को रखकर बीचके 'तनु, दसन, नख और मुख' सभीको वज्रवत्, पुष्ट और विकराल सूचित किया। यथा, **'बिकट भृकुटि बज्र दसन नख'** (२८) यहां श्रीहनुमान्‌जीके वीर विकराल पर्वताकार रूपका वर्णन है जिस रूपसे उन्होंने राक्षसोंका वध किया है। अंगमें निशाचरमर्दन करते, दाँतोंसे नाक कान काटते, नखसे शरीर विदीर्ण कर आँतें निकालते और मुखसे भेरि, निशान आदिकी ध्वनि रणभूमिमें करते। दाँतोंके वज्र समान होनेका प्रमाण पद्म० पु० पाताल-खण्डमें उग्रदंष्ट्रसे युद्धके समय मिलता है। हनुमान्‌जीने उसके त्रिशूलको अपने दाँतोंसे चूर चूर कर डाला था।

(ख) 'बज्र तनु' इति। वज्रांग और बजरंग आपका नाम है। 'राम' नाम शरणागतकेलिये 'पबिपंजर' कहा गया है। यथा **'सरनागत पबिपंजर नाऊं'**। इनका शरीर 'राम' नामकी मूर्तिही है। आपके रोमरोममें 'रामनाम रमणीय' देदीप्यमान् है और हृदयमें स्वयं श्रीसीतारामजी धनुषबाण लिये हुए सदा विराजमान् रहते हैं। अतः शरीरभर वज्रसमान है जिसमें किसीकेभी अस्त्रशस्त्र कुछभी कारगर नहीं हो सकते। यहां वाचकधर्मलुप्ता अलंकार है।

(ग) 'तरु सैल पानी' इति। राक्षसवधमें तत्पर, एक हाथमें वृक्ष और एकमें पर्वत, मारनेकेलिये वृक्ष और सेना व रथ आदि कुचलने-केलिये पर्वत येही दो आयुध इस युद्धमें आप विशेष काममें लाये हैं। यथा '**गिरि तरु नख आयुध सब बीरा।**' सीताशोधसमय भुजदंड और वृक्षोंसेही आपने सबका काम तमाम किया। यथा, '**रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे।**', '**गहि गहि कपि मरदइ निज अंगा।**', '**आवत देखि बिटप गहि तर्जा।**', '**अति बिसाल तरु एक उपारा।**' दूसरे, अशोकवनमें वृक्षकी बहुतायत थी इससेभी पहले 'तरु' कहा, तब 'सैल'।

(घ) 'समर तैलिक जंत्र तिल तमीचर' इति। यहां परंपरित-रूपक अलंकार है। संग्राम (संग्रामभूमि) कोल्हू है, समस्त राक्षस तिल हैं, उसमेंसे जितने सुभट हैं वे घानी हैं। कोल्हूमें तिलकी घानी

पड़नेपर वह उसे पेरकर तेल निकालता है, खली अलग रह जाती है। यहाँ पेर डालनेमात्रका रूपक है। वैजनाथजी कहते हैं कि "तेल निकालना जीवका शुद्ध होकर परधाम जाना है। मृतक देह खलीके समान है जिसे गृध्रादि खाकर तृप्त हुए।"

प्रायः सभी टीकाकारोंने "सुभट रजनीचर तिल हैं" ऐसा अर्थ किया है। परन्तु पदमें 'तमीचरनिकर' को तिल कहकर केवल सुभट-घानीको पेर डालना कहा है। भाव कि ये सुभटोंसे भिड़ते थे, भटोंके-लिये और सेना काफी थी और जो रणमें नहीं आये वे नहीं मारे गये।

१३ (क) 'दसकंठ घटकर्ण बारिदनाद कंदन कारन' इति। यहां किसीके शुद्ध नाम न देनेमें भाव यह है कि आपने प्रथम सबको बिरूप कर दिया, तत्पश्चात् वे सब मारे गये। आपने तीनोंके बलगर्वको चूर्ण कर दिया, सबका तेज और प्रताप हत हो गया, नाम जाता रहा। अतः बिगड़ा हुआ नाम रह गया। कालनेमिको हनुमान्‌जीने स्वयं मारा; इसीसे उसका नाम वैसाही दिया। मिलान किजिये, 'कुंभकर्न रावन पयोदनाद ईंधन को तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो।' (बाहुक)

(ख) 'अघट घटना सुघट' इति। समुद्रलंघन, लंकादहन, संजीविनीप्राप्ति इत्यादि असंभव कार्य समझे जाते थे जिसके अनेक प्रमाण वाल्मीकीय और कवितावली इत्यादिमें मिलते हैं। 'सुघट बिघटन' इति। बाली, सिंहिका, मेघनाद, रावण आदिके बल, तेज, प्रतापकी धाक संसारमें जमी हुई थी। उनके नाशको इन्होंने सुलभ कर दिया।

(ग) 'दसकंठ कंदनकारन' कहकर 'कालनेमिहंता' कहनेका भाव कि कालनेमिका वध इनके नाशमें सहायक हुआ। कालनेमिहंतासे संजीविनीप्राप्तिका पूरा प्रसंग जनाया है। यह कामभी बड़ाही दुष्कर (अघट) था। यथा, "संकट समाज असमंजसमें रामराज काज जुग पूगनि को करतल पल भो।" (बाहुक) बिना इसके मेघनादवध न हो सकता और मेघनादके रहते निशिचरनाश और बिभीषणराज्य असंभव थे। यही असमंजस श्रीरामजीको था। 'कालने-

मिटंता ' कहकर ' अघट घटना सुघट ' कहा, क्योंकि ये सब कार्य दुर्घट थे ।

(घ) ' भूमि पाताल गगनगंता ' इति । रावण जहाँ यज्ञ करने गया था वह पातालगुफ़ा कहलाती थी । उसमें आप घुस गये । अहिरावण और महिरावण पातालमें रहते थे उनको वहां जाकर मारा । सिंहिका समुद्रमें रहती थी, वहां जाकर उसको मारा । समुद्रलंघन आकाशमार्गसेही हुआ और पृथ्वीपर तो हैंही । बालकेलिसे छलाँग मारकर सूर्यको लेने लपके, राहु और इंद्रपर झपटे । सूर्यसे विद्या पढ़ते समय बराबर उनके सम्मुख आकाशमें चलते रहे, । यथा ' **पाछिले पगनि श्रम गगन मन क्रम को न भ्रम कपि बालक बिहार सो** । ' (बाहुक) और द्रोणाचल लाये इत्यादि कार्योंसे जो आकाशमेंही हुए, इनको ' गगनगंता ' कहा ।

नोट—' अघटघटनासुघटसुघटबिघटन भूमिपातालगगनगंता ' से हनुमन्नाटक अंक १३ और गीतावली लंकाकांड पद ८ में कहे हुए श्रीहनुमद्वाक्यका मिलान करनेसे इनके भाव स्पष्ट हो जाते हैं । अतः वे यहां उद्धृत किये जाते हैं । " **हनुमतिकृत प्रतिज्ञे दैवमदैवं यमोप्ययमः । पुनर्देव पश्य । पातालतः सुधारसमानयामि निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि ॥ उद्दण्डचण्डकिरणं ननु वारयामि कीनाशपाशमनिशं कीमु चूर्णयामि ॥१६॥** " पुनश्च " **सप्ताम्भोनिधयो दशैव च दिशः सप्तैवगोत्राचलाः पृथ्व्यादीनि चतुर्दशैव भुवनान्येकं नभोमण्डलम् । एतावत्परिमाणमात्रकटके ब्रह्माण्डभाण्डोदरे क्वासौ यास्यति राक्षसो रघुपते किं कार्मुकं त्यज्यते ॥१२॥** " " **लक्षणां षष्टिरास्ते द्रुहिणगिरिरितो योजनानां हनूमांस्तैलाग्नेः सर्षपस्य स्फुट नख परस्तत्र गत्वाऽत्रचैमि ।२०।** " अर्थात् हनुमान्जी श्रीरामचंदजीसे बोले, " हनुमान्के प्रतिज्ञा करनेपर दैव अदैव हो जाता है और यमभी अयम हो जाता है । स्वामिन् ! और देखिये । क्या मैं पातालसे अमृतसरको ले आऊँ ? अथवा चन्द्रमाको निचोड़कर अमृत ले आऊँ ? या प्रचण्ड किरणमाली सूर्यनारायणको वारण कर दूँ ? वा, निरन्तर पाशधारी यमराजकोही चूरचूर कर डालू ? ।१६।

सात समुद्र, दश दिशा, सप्तपर्वत, पृथ्वी आदिके चौदहो भुवन और एक आकाशमण्डल, इतने परिमाणवाले ब्रह्माण्डके उदरमें वह राक्षस रावण कहाँ जायगा? इतने स्थानोंमें तो जाकर वह बच नहीं सकता। तो फिर, हे रामचन्द्रजी! आप धनुष क्यों त्यागते हैं? । १२ । महाराज! यहांसे द्रुहिणपर्वत साठ लाख योजन है, जितनी देरमें अग्निपर धरे हुए तेलकी ज्वालामें डाले हुए सरसोंके फूलनेकी आवाज़ होती है, उतनीही देरमें मैं वहाँतक जाकर फिर यहाँ आ जाऊंगा।२०।" इसी तरह हनु० ना० अंक ६ सीता खोजके प्रसंगमें हनुमान्‌जीके ऐसेही वाक्य हैं। यथा "वाज्ञापय किं करोमि सहसा लंकामिहैवानये। जम्बूद्वीपमितो नये किमथवा वारान्निधिं शोषये॥ हेलोत्पाटित विन्ध्यमन्दरगिरिः स्वर्णत्रिनेत्राचल। क्षेपक्षुण्णविवर्तमानसलिलं बध्नामि वारान्निधिम्॥ देवज्ञां देहि राज्ञात्वमपि कुलगुरुः शोषये किं पयोधिं। किंवा लंकां सलंकाधिपतिमुपनये जानकीं मानकीर्णाम्। सेतुं बध्नामि मत्तः स्फुटित गिरितटी भूत भंगात्तरंगादुद्भ्राम्यन्नक्रचक्रोऽपिच मकरकुल ग्राह चीत्कार घोरम्॥५॥ किं प्राकारविहारतोरणवतीं लङ्कामिहैवानये किंवा सैन्य समुद्धतंच सकलं तत्रैव संपादये। हेलान्दोलित पर्वतोच्चशिखरैर्बध्नामि वारान्निधिं देवाज्ञापय किं करोमि सकलं दोर्दण्डसाध्यं मम॥६॥"

"स्वामिन्! आप मुझे आज्ञा दें, मैं क्या करूँ? क्या जल्दीसे लंकाको यहाँ ले आऊँ या जम्बूद्वीपको वहाँ ले जाऊँ? अथवा समुद्रको सोख लूँ? लीलाहीसे उखाड़े हुए विन्ध्याचल, मंदराचल, सुमेरु तथा कैलास पर्वतादिके फेंकनेसे खंडित और मंथित जलवाले समुद्रको बाँध दूँ?४। हे महाराज रामचन्द्रजी! मुझे आज्ञा दीजिये कि क्या मैं समुद्रको शोषण कर जाऊँ? लंकापतिसहित लंकापुरीको यहाँ ले आऊँ? या पतिव्रता-धर्मोन्नतिको प्राप्त सीताजीहीको ले आऊँ? अथवा जिस समुद्रमें मेरे उखाड़े हुये पर्वतोंके गिरनेसे जीवोंका नाश है और जिसमें तरंगोंकेद्वारा ऊपरको उछलते हुए नक्र, मकर और ग्राह आदि चित्कार मार रहे हैं उसपर सेतु बाँध दूँ? ५। क्या मैं प्राकार (शहरपनाह) के विहार और

ध्वजा तोरणोंवाली लंकाको यहाँ ले आऊँ ? अथवा लंकाहीमें वहाँकी संपूर्ण सेना नष्ट कर दूँ ? क्रीड़ासे हिलाये हुए पर्वतोंके शिखरोंसे समुद्रको बाँध दूँ ? देव ! आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ? मेरे भुजदण्डोंको सभी कुछ साध्य है ।६। ”

गीतावलीमेंभी जाम्बवान्‌के प्रचारनेपर श्रीहनुमान्‌जीने ऐसाही कहा है, “ **तुलसी सुनि प्रभु बचन भालु कपि सकल बिकल हिय हारे। जामवँत हनुमंत बोलि तब अवसर जानि प्रचारे** ।। लं० पद ७ ।।” “ **जो हौं अब अनुसासन पावउँ। तौ चंद्रमहिं निचोरि चैल जिमि आनि अमी सिर नावौं ।। कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृतकुंड महि लावौं। भेदि भुवन करि भानु बाहिरहि तुरत राहु दै तावौं ।। बिबुधवैद्य बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं। पटकौं नीच मीच मूषक जिमि सबहि पाप को बहावौं ।। तुम्हरी कृपा प्रताप तिहारे नेकु बिलंब न लावौं। दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं** ” ॥ ८ ॥

१४ (क) ‘विश्वविख्यात बानैत’ इति । ‘बानैत’ अर्थात् बाँके वीर होनेका बाना धारण करनेवाले। यथा, ‘ **जाकी बांकी बीरता सुनत सहमत सुर जाकी आँच अजहूं लसत लंक लाहसी। सोई हनुमान बलवान बाँके बानाइत जोहि जातुधान सेना चले लेत थाहसी** ।’ (क०), ‘**बांकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली बेद बंदी बदत पैजपूरो**।’ (बाहुक) ‘विश्वविख्यात’ का भाव कि जो हमने उनकी बाँकी बीरता कही है यह सब सत्य है, विश्वमात्रमें प्रसिद्ध है, सब जानते हैं। यथा बाहुके, ‘ **को है जगजाल जो न मानत इताति है** ।’

(ख) ‘ बिरुदावली बिदुष बरनत ’ इति । विश्वविख्यात बानैते, अर्थात् महाभटशिरोमणि हैं, बंदीछोर बाना है, बांके वीर हैं इत्यादि बिरुदावली है जो वेद गाते हैं। यथा, ‘**बंदीछोर बिरुदावली निगमागम गाई** ।’ (३५), ‘**जयति रुद्राग्रणी बिश्वविद्याग्रणी विश्वविख्यात भट चक्रवर्त्ती** ।’ (२७), ‘**अघटितघटन सुघट बिघटन ऐसी बिरुदावली नहिं आनकी** ।’ (३०), ‘**बेद पुरान प्रगट पुरुषारथ सकल सुभट सिरमोर को**’ (३१),यह बिरुदावली और बाना है ।

विश्व कैसे जानता है ? यह 'बरनत बेद' से बताया । यह वेदोंमें वर्णित है। यह पंडितों, वेदज्ञोंद्वारा जगत्में प्रसिद्ध हुआ। अथर्ववेदमें कहा है 'ततस्ततारं हनुमानब्धिं लंकां समाययौ। सीतां दृष्ट्वाऽसुरान्हत्वा पुरंदग्ध्वा तथा स्वयमागत्य रामेण सह न्यवेदयत्तत्वतः ॥' (श्रीरामतापनीयोपनिषद् ।४४।) 'बिदुष बरनत' इति। यथा, कवित्तरामायणे, 'दासतुलसीके बिरुद बरनत बिदुष बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके। नाक नर लोक पाताल कोउ कहत किन कहां हनुमानसे बीर बांके॥'

(ग) 'बिमल बानी' इति । भाव कि वेद भगवान्की वाणी है । यथा, 'जाकी सहज स्वास श्रुतिचारी ।' यह कभी असत्य नहीं हो सकती। यह सदा पवित्र और सत्य है। साधारण देवताओंकी वाणी असत्य नहीं होती तब भला वेद वाक्य कब असत्य हो सकते हैं ! यहां शब्दप्रमाण अलंकार है।

(घ) 'सीतारमन संग सोहत रामराजधानी।' इति। यहांतक श्रीहनुमान्जीका जन्म, बालकेलि, अवतार और आशिषोंका हेतु, अवतार लेनेपर रामकार्यके पूर्वके चरित, सूर्यसे विद्याध्ययन और गुरुदक्षिणामें सुग्रीवकी शिक्षा रक्षा कहकर रामायणके मुख्य चरित्र बालिवधहेतु, सिंधुलंघन इत्यादिसे रावणवधपर्यन्त सब क्रमशः कहे। 'सीतारमन संग' से लंकासे अवधतक साथ आना और फिर यहीं सेवामें रह जाना कहते हुए यह सूचित कर रहे हैं की अबभी आप यहां श्रीसीतारामजीसहित बिराजमान् हैं और भक्तोंके त्रास शमन करते रहते हैं। यह 'सोहत' वर्तमान्कालिक क्रिया देकर जनाया।

नोट—लाला भगवान्दीनजी कहते हैं कि 'श्रीशिवजी और हनुमान्जीके यशकी प्रशंसा श्रीरघुनाथजीको अतिप्रिय है। इसी हेतु गोस्वामीजीने इनकी स्तुतिमें अधिक रूपक लिखे हैं।' शिवजी कहते हैं, 'गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज गुन गाई।' भक्तमात्रका यश भगवान्को प्रिय है। यथा, 'अगर अनुग गुन बरनते सीतापति नित होयँ बस। हरिसयश प्रीति हरिदासकै त्यों भावै हरि दास यश।' (भक्तमाल) और ये तो भक्ताग्रण्य हैं।

२६ [१५]

जयति[१] मर्क्कटाधीस मृगराज बिक्रम महादेव मुदमंगलालय कपाली।
मोहमदकोह[२] कामादि खल संकुला घोर संसारनिसि किरणमाली ॥
जयति लसदंजनादितिज कपिकेसरीकस्यपप्रभव जगदार्त्तिहारी[३]।
लोक लोकप कोक कोकनद सोकहर हंस हनुमान कल्यानकारी[४] ॥
जयति सुबिसाल बिकराल बिग्रह बज्रसार सर्वांग भुजदंड भारी।
कुलिसनख दसन बल[५] बसति बालधि बृहद्[६] बैरि शस्त्रास्त्रधरकुधरधारी॥
जयति जानकीसोचसंतापमोचन रामलक्ष्मणनंद वारिज बिकासी।
कीस कौतुक केलि लूम लंका दहन दलन कानन तरुन तेजरासी ॥

शब्दार्थ—मर्क्कटाधीस=(मर्क्कट+अधीस) वानरराजा। मृगराज=पशुओंका राजा, सिंह। विक्रम=शक्ति, शौर्य या बलकी अधिकता, पराक्रम। यथा, 'बिपुलबलमूल सार्दुलविक्रम जलदनादमर्दन महाबीर भारी।' आलय=घर, ताक, स्थान। कपाली = कपाल (खोपड़ी) को हाथमें धारण करनेवाले। †संकुला=भरी हुई, घनी। किरणमाली=सूर्य। 'करमाली' पद २ देखिये। लसदंजनादितिज (लसत्+अंजना+अदितिज) = सुन्दर अंजनारूपी अदितिसे जायमान। ज = जात, उत्पन्न। यह प्रत्यय प्रायः तत्पुरुष समासके पदोंके अंतमें आता है। पंचमी तत्पुरुष आदिमें पंचम्यंत पदोंकी विभक्ति लुप्त हो जाती है। जैसे पादज, द्विज इत्यादि। पर सप्तमी तत्पुरुष 'प्रावृट', 'शरत्', 'काल'

---

१ मु०, ७४ में नहीं है। २ लोभ–शि०। ३ हर्त्ता। ४ कर्त्ता–भा०, बें०, प्र०, ज०, १५, इ०, ७४, शि०, आ०। हरता करता–रा०। हारी, कारी–६६। ५ बल बसति–६६, रा०, ज०, ५१, भ०, बें०। बर लसति–इ०, प्र०, मु०। बर लसत–डु०, वै०, ७४, १५, भ०, दी०, वि०। ६ बृहद्वैरि–६६, रा०; आ०। बृहद्बीर–भा०, बें०, प्र०, इ०, ज०, ५१, १५, मु०, ७४।

† 'संकुला घोर' का पदच्छेद किसी किसीने 'संकुल + आघोर' वा 'संकुला+आघोर' करके 'अघोर' का अर्थ 'परम भयावह' किया है।

और 'द्यु' इन चार शब्दोंके अतिरिक्त शेष स्थलोंमें विभक्तिका लोप विवक्षित होता है। जैसे मनसिज, मनोज, सरसिज, सरोज इत्यादि। अदिति ये दक्ष प्रजाप्रतिकी कन्या और महर्षि कश्यपकी पत्नी हैं। सूर्य आदि देवता इन्हींके पुत्र हैं। ये देवताओंकी माता हैं। कश्यप ये वैदिककालीन ऋषि हैं। ऋग्वेदमें इनसे दर्शित 'ऋषयोमन्त्रद्रष्टारः' इत्यादि अनेक मंत्र हैं। ब्रह्माके पुत्र मरीचिके पुत्र होनेसे ये ब्रह्माके पौत्र हैं। ये प्रजापति और सप्तर्षियोंमेंसेभी एक हैं। भगवान् राम प्रायः इनके पुत्र होते हैं जब ये दशरथ होते हैं। एक कल्पमें इन्हींकी १३ स्त्रियोंसे संपूर्ण सृष्टि हुई। यथा 'कश्यपते भइ सृष्टि सकल श्रुति ऐसे गावत।' (विश्रामसागर)।* प्रभव = उत्पन्न। यथा 'प्रकर्षेण भवः उत्पन्नः प्रभवः'। जगदार्तिहारी = (जगत् + आर्ति + हारी) जगत्के दुःखके हरवानेले। कोक कोकनद लोक=पद २ देखिये। हंस=सूर्य। यथा 'हंस बंस दसरथ जनक रामलखन से भाई।' (अ०)। वज्रसार = हीरा। सर्वांग = सर्व अंग। कुलिस = वज्र (वत्)। बालधि (सं०) = पूँछ। यथा, 'कानन दलि होली रचि बनाई। हठि तेल बसन बालधि बँधाई॥' बृहद्बैरि = बृहत् बैरि। बृहत् (सं०) = बहुत बड़ी, भारी, दृढ और बलिष्ठ। शस्त्रास्त्र = शस्त्र अस्त्र। कुधर (सं० कुध्र) = पर्वत। बारिज = कमल।

पद्यार्थ—वानरोंके स्वामी, सिंहसमान पराक्रमवाले, मुदमंगलके स्थान, मुंडकरडारी, (साक्षात्) महादेव, मोहमदकोह कामादि

---

*कश्यपजीने अपने नामकी व्याख्या इस प्रकार की है कि 'कश्य' नाम है शरीरका। जो उसका पालन करता है उसे कश्यप कहते हैं। मैं प्रत्येक कुल (शरीर) में अन्तर्यामी रूपसे प्रवेश करके उसकी रक्षा करता हूँ, इसलिये कश्यप हूँ। 'कु' अर्थात् पृथ्वीपर 'वम' यानी वर्षा करनेवाले सूर्यभी मेराही स्वरूप हैं। इसलिये मुझे 'कुवम' भी कहते हैं। मेरे देहका रंग काशके फूलकी भाँति उज्वल है। अतः मैं काश्य नामसेभी प्रसिद्ध हूँ।' (महाभा० अनुशासनपर्व वृषादर्भि और सप्तर्षियोंकी कथाके अंतर्गत यातुधानी सप्तर्षिसंवादमें।)

खलोंसे भरी हुई घोर संसाररूपी रात्रिकेलिये सूर्य रूप! आपकी जय हो। १। सुन्दर अंजनारूपी अदितिसे जायमान होकर शोभित, केसरीवानररूपी कश्यपके यहाँ उत्पन्न, जगत्के दुःखके हरनेवाले, लोक और लोकपालोंरूपी चकवा चकई और कमलोंके शोकके मिटानेवाले, (सबका) कल्याण करनेवाले, श्रीहनुमान्रूपी सूर्य! आपकी जय हो। २। अत्यन्त विशाल, विकराल (भयंकर) मूर्ति, वज्रसाररूप सर्वांग और भारी भुजदंडवाले, वज्रसमान नखों और दाँतोंवाले! जिनकी बड़ी पूँछमें बलका निवास है, और शस्त्रास्त्रधारी शत्रुओंके (नाशके) लिये पर्वतको (हाथमें) धारण करनेवाले! आपकी जय हो। ३। श्रीजानकीजीके सोच और संतापके मिटानेवाले, श्रीरामलक्ष्मणजीके आनंदरूपी कमलके खिलानेवाले, वानरीक्रीड़ासे खेलहीमें पूँछसे लंकाको जलानेवाले, अशोक वनको उजाड़नेवाले, तरुण तेजकी राशि! आपकी जय हो।४।

नोट—पूर्व पद २५ में चंद्रमाका रूपक देकर हनुमान्जीका गुण गान किया गया। इस पदमें सूर्यका रूपक देकर उनका प्रताप वर्णन करते हैं। सूर्यका जन्म कश्यप अदितिसे हुआ। उसीका रूपक यहाँ कहेंगे।

टिप्पणी—१ 'जयति मर्कटाधीस मृगराज विक्रम' इति। (क) 'मर्कटाधीस' इति। श्रीहनुमान्जीको सभीने वानरोंका अधीश कहा है। यथा '**वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि।**' (सुं०), '**वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ।**' (बा०), '**कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लंका भयंकरम्।**' (मूलरामायण) (ख) 'मुदमंगलालय' इति। आप मुदमंगलके निवासस्थान हैं, मुदमंगलकी प्राप्ति आपकी कृपाकटाक्षसे होती है। (ग) 'कपाली' इति। रुद्रावतार होनेसे शिवजीसे अभेद मानकर 'कपाली' कहा। शिवजी कपाली हैं। ब्रह्माका सिर काटकर हाथमेंलिये रहनेसे शिवजीका नाम 'कपाली' हुआ। यथा '**ततः क्रोधपरीतेन संरक्तनयनेनच। वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण शिरश्छिन्नं तदामय॥**' ब्रह्मोवाच '**यस्मादनपरधमे शिरश्छिन्नं त्वयामम। तस्माच्छाप समायुक्तः कपाली**

त्वंभविष्यसि ।' ब्रह्माण्डपुराणे । युद्धमें राक्षसोंके कपालोंको हाथमें धारण करनेसेभी 'कपाली' कहे जा सकते हैं। (घ) 'मोद-मंगलालय कपाली' का भाव कि कपाली होते हुएभी आनंदमंगलके धाम हैं। (ङ) 'मोहमद कोह कामादि खल' इति। मोहमदादिको खल कहा है। श्रीमुखवचनभी है, 'तात तीन अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ। मुनिबिज्ञानधाम मन करहिं निमिष महं छोभ।' (आ०)। मुनियोंके मनमेंभी क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं, इसीसे इन्हें खल कहा। सज्जनोंके हृदयपर डाका डालते हैं। जप तप भजन चुरा लेते हैं। यथा, 'मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहं बसे आइ बहु चोरा॥ अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा॥ तम मोह लोभ अहंकारा। मद क्रोध बोधरिपु मारा॥ अति करहिं उपद्रव नाथा। मर्दहिं मोहि जानि अनाथा॥ मैं एक अमित बटपार। कोउ सुनै न मोरि पुकार॥ कह तुलसीदास सुनि रामा। लूटहिं तसकर तव धामा॥' (१२५) इस उद्धृत पदके बटपार, चोर, तसकर, आदि सब भाव 'खल' शब्दमें है। (च) 'घोर संसार निसी किरणमाली' इति। चोरोंको घोर अँधेरी रात्रि प्रिय है। इसीसे संसारको रात्रि कहा और रात्रिका अंधकार सूर्यसे दूर होता है इससे हनुमान्‌जीको सूर्य कहा। यह परंपरित रूपक है। किरणमालीरूप कहकर सहजही मोहमदादिका नाशक जनाया। यहां हनुमान्‌जीका 'प्रताप' गुण कहा। शत्रु आगमन समझकर पहलेही भाग जाय, यह प्रताप है। भाव कि आपके स्मरणमात्रसे मोहमदादि नष्ट हो जाते हैं।

२ 'जयति लसदंजनादितिज' इति। ऊपर हनुमान्‌जीको किरण-माली अर्थात् सूर्यरूप कहा है। अब उसीका रूपक देते हैं। सूर्यका जन्म कश्यपजीके यहां अदितिके गर्भसे हुआ वैसेही केसरीके घरमें अंजनाजीके गर्भसे ये पैदा हुए। सूर्योदयसे संसारका दुःख दूर होकर कल्याण होता है। यथा, 'जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन।' (बा०), 'दहन दोष दुख दुरित रुजाली॥ कोक कोकनद लोक प्रकासी। तेज प्रताप रूप रस रासी॥' (२) हनुमान्‌जीभी

जगत्के आर्त्तिके हर्त्ता हैं। देवादि सभीके संकट इन्होंने छुड़ाये हैं। सूर्य कोक कोकनदका प्रकाशी है और हनुमान्‌जी लोक लोकपरूपी कोक कोकनदका शोक हरकर उनको प्रफुल्लित करनेवाले हैं।

यथासंख्यसे लोक कोक और लोकप कोकनद हैं। कोका कोकी आर्त्त वैसेही लोक राक्षसोंद्वारा पीड़ित होनेसे आर्त्त। यथा, '**जहं जहं बिप्र धेनु सुर पावहिं। नगर गाउ पुर आगि लगावहिं॥**' लोकपाल कमलवत् संपुटित थे, संपत्तिहीन और सशंकित रहते थे। यथा, '**रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥ किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा॥** (बा०) लोक और कोकनद दोनों जड, लोकप और कोक दोनों चेतन उपमेय उपमान हैं। दोनों 'कल्याणकारी' हैं। तमके नाशसे खलोंका भय गया, लोक सुखी हुए और हनुमान्‌जीद्वारा देवताओंको पुनः ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। यथा, '**बिबुध बंदीछोरको**'। 'लसदंजना' में परंपरितरूपकालंकार है।

यहां 'अदितिज' भी कहा और 'कश्यपप्रभव' भी। यह क्यों? इसपर किसीभी टीकाकारने प्रकाश नहीं डाला है। वैजनाथजीने अर्थ किया है कि, 'अंजनीसे उत्पन्न हुए और केसरीरूपी कश्यपसे उपजाये गये।' शब्द-सागरमें 'प्रभव' के अर्थ ये दिये हुए हैं। 'उत्पत्तिस्थान, आकर, जन्म, उत्पत्तिकारण।' अमरकोशमें 'स्याजनाहेतु प्रभवः' अर्थात् 'जन्मका हेतु वा आदिकारण' यह अर्थभी है। एक अर्थ 'पराक्रम' भी है।

केसरीके वीर्यसे तो हनुमान्‌जीका जन्म हुआ नहीं है। ये तो पवनदेवके प्रसादसे उत्पन्न हुए हैं। संभवतः इसी विचारसे उधर 'अंजनादितिज' और इधर 'कपिकेसरीकस्यपप्रभव' कहा। अंजनाके गर्भसे केसरीके घरमें उत्पन्न हुए। प्रभव=उत्पत्तिस्थान। इसी प्रकार पूर्व पदमें '**केसरी चारु लोचन सुखद**' कहा था, उनसे उत्पन्न नहीं कहा।

३ 'जयति सुबिसाल बिग्रह बज्रसार सर्वांग' इति। (क) पद २५ '**बज्र तन दसन नख मुख बिकट चंड भुजदंड**' टि० १२ देखिये। वही भाव यहां हैं। (ख) 'बज्रसारसर्वांग' इति। जैसे वज्रपर घनकी चोट कुछभी

असर नहीं करती वैसेही आपके किसी अंगपर किसीभी अस्त्रशस्त्रका किंचित्भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। (ग) 'बल बसति बालधि बृहत्' इति। यथा, **'सिर लंगूर लपेटि पछारा'** (कालनेमि प्रसंग। लं०) **'प्रबल प्रचंड बीरबंड बाहुदंड बीर धाए जातुधान हनुमान लियो घेरिकै। महाबलपुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट जहां तहां पटके लँगूर फेरि फेरिकै ॥** (क०), **'लूम लपेटि अकास निहारिकै हाँकि हठी हनुमान चलाए। सूखिगे गात चले नभ जात परे भ्रम बात न भूतल आए॥** (क० लं० ६७) बड़े बड़े राक्षसोंको पूँछमें लपेटकर पटककर मार डालते या आकाशमें वायुमण्डलसे परे फेंक देते थे। इससे समझ लीजिये कि पूँछ कितनी बड़ी और कैसी बलिष्ठ होगी ? (घ) 'बैरिशस्त्रास्त्रधर कुधरधारी।' इति। तुलसीग्रन्थावलीमें कहीं हनुमात्जीका शस्त्रास्त्र धारण करनेका उल्लेख नहीं मिलता। अतएव 'शस्त्रास्त्रधर' बैरिका विशेषण है। नख, दशन, भुजदंड, वृक्ष और पर्वतही वानरोंके आयुध थे और निशाचर शस्त्रास्त्रधर थे। इसके प्रमाण सर्वत्र मिलते हैं। यथा, **'सर तोमर सेल समूह पबारत मारत बीर निसाचर के। इत तें तरु ताल तमाल चले खर खंड प्रचंड महीधर के॥ नख दंतन्ह सों भुजदंड बिहंडत रुंड सो मुंड परे झर के॥'** (क० लं०), **'गहि मंदर बंदर भालु चले'** भुजदंडके काम, यथा, **'दबकि दबोरे एक बारिधिमें बोरे एक मगन महीमें एक गगन उड़ात हैं। पकरि पछारे कर चरन उखारे एक चीरि फारि डारे एक मींजि मारे लात है॥'** (क० लं०) पूर्वार्धमें 'बिकराल बिग्रह' कहकर नख, दशनादिकोभी बिकराल जना दिया है।

४ 'जयति जानकीसोचसंतापमोचन' इति। (क) 'भूनन्दिनी सोच मोचन' पद २५ टि० ९ देखिये। (ख) 'रामलक्ष्मणानन्दवारिज बिकासी' इति। 'सौमित्रि रघुनन्दनानन्दकर' पद २५ टि० ११ देखिये। (ग) यहां समअभेदरूपक अलंकार है। (घ) श्रीरामलक्ष्मणानन्दको बारिज (कमल) कहकर उपर्युक्त रूपक 'किरणमाली हंस हनुमान' का निर्वाह यहांतक किया गया। एकही पंक्तिमें 'जानकी सोचसंतापमोचन' और 'रामलक्ष्मणानन्द' कहकर श्रीजानकीशोचमोचन प्रसंगद्वारा आनन्द

देना सूचित किया। हनुमान्‌जीको सूर्य कहा है। उसके संबंधसे 'जानकीसोचसंताप' को अंधकार बनाया जिसे हनुमान्‌रूपी सूर्यने नष्ट कर दिया। ह० नाटक अंक १३।३२ मेंभी ऐसाही कहा है। यथा, **'सीतातंक महान्धकार हरणे प्रद्योतनोऽयं हरिः, संप्राप्तः पवनात्मजः पटु महः श्रीकण्ठ वैकुण्ठयोः** ॥ श्रीजानकीजीके भयरूप महा अन्धकारके हरण करनेमें सूर्यके समान, श्रीकण्ठ (महादेवजी) और वैकुण्ठ भगवान् श्रीरामचंद्रजीको महा आनन्द देनेवाले पवनकुमार वानरराज हनुमान्‌जी प्राप्त हुए।

भावार्थान्तर—(१) " रामविरहसे उत्पन्न सोच और रावणके आधीन होनेका सन्ताप ! कुशल समाचार देकर सोच मिटाया और रावणवध कराकर सन्ताप मिटाया।" (डु०) (२) "पतिवियोगदुःखसे तर्कना इति सोच, विरहाग्नि, शत्रुवश, कुवचनादि साँसति इत्यादि संपूर्ण प्रकारके ताप, सोचको मुद्रिका और सन्देसा देकर छुड़ाया और संतापको धीरज देकर। भाव कि जानकीजी चकवीवत् वियोगिनी थीं। उनकेलिये सूर्यवत् उदय हो आनन्द दिया और चूड़ामणिसहित खबर देकर रामलक्ष्मणको आनन्द दिया।" (वै०) । (३) " जानकीसोचमोचन, रामसंतापमोचन, लक्ष्मणानंदवारिज विकासी " (वीर)।

५ ' कीसकौतुक केलि लूम लंका दहन ' इति। यथा, **'देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर ते मंदिर चढ़ि धाई॥ जरइ नगर भा लोग बिहाला। लपट झपट बहु कोटि कराला॥ जारा नगरु निमिष एक माहीं।** (सुं०) सहजही क्षणभरमें कौतुकसा कर दिखाया। यथा, **" हाट बाट कोट ओट अट्टनि अगार पौरि खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है। बालधी फिरावै बार बार झहरावै झरैं बूँदियाँ सीलंक पघिलाइ पाग पागि है ॥"** (क०)

'लंका दहन' और 'दलन कानन' को एक पंक्तिमें कहकर जनाया कि, १ रावणको जितनी लंका प्यारी थी उससे अधिक नहीं तो कमसे कम उतना तो अवश्यही 'अशोकबन' प्यारा था। २ दोनो कामोंके करनेमें

हनुमान्‌जीका मुख तेजोमय और क्रोधसे लाल था। ३ लंकाभी जली और कानन भी जला। ये दोनों काम रावणके रहते किये गये। मिलान कीजिये, "माली मेघमाल बनपाल बिकराल भट नीके सब काल सींचे सुधासार नीरको। मेघनाद ते दुलारो प्रान ते पियारो बाग अति अनुराग जिय जातुधान धीरको। विद्यमान देखत दसाननको कानन सो तहस नहस कियो साहसी समीरको॥" (क०); एवं "बेगि जीत्यो मारुत प्रताप मार्तंड कोटि कालऊ करालता बड़ाई जीत्यो बावनो।" (क०)

६ 'तरुन तेजरासी' इति। सूर्य तेजराशि है। यथा, 'तेज प्रताप रूप रस रासी।' (पद २) हनुमान्‌जीको यहां सूर्य कहाही है, अतः 'तरुण तेजरासी' भी कहा। वे तेजकी राशि हैंही। यथा, 'कनकबरन तन तेज बिराजा। मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा।' हनुमान्‌जी ऐसे तेजस्वी थे कि इनका तेज देखकर रवि, राहु एवं इन्द्रतक घबडा गये और भीमसेनभी डर गये। यथा, 'कौनके तेज बलसीम भट भीमसे भीमता निरखि कर नयन ढाँके।' काननदलन और लंका-दहनके साथ 'तरुन तेजरासी' पद देकर जनाया कि इनको जलानेकेलिये प्रलयाग्निसरीखा वा प्रलयके सूर्यके समान इनमें तेज था। यथा, तेजको निधान मानों कोटिक कृसानु भानु नख बिकराल मुख तैसो लाल है।' (क०)

अनुसंधान [२६]

जयति पाथोधि पाषान जल जानकर जातुधानप्रचुरहर्षहाता।
रुष्ट[७] रावण कुंभकर्ण पाकारीजित् मर्मभित्कर्म[८] परिपाकदाता॥
जयति भुवनैकभूषन बिभीषन बरद बिहित कृति[९] रामसंग्राम साका।
पुष्पकारूढ़ सौमित्रि सीतासहित भानुकुलभानु कीरति पताका॥

७ रुष्ट–६६, रा०, ज०, ५१। दुष्ट–भा०, बे०, ७४, ह०, आ०। ८ भित्कर्म–६६, ह०, ७४, डु०, बे०। भित कर्म–रा०, भा०, बे०, ज०; मु०, वि०। ९ कृति–६६, रा, ५१, मु०। कृत–

जयति परजंत्रमंत्राभिचार[१०] ग्रसन कार्मन[११] कूट कृत्यादि हंता।
साकिनी[१२] डाकिनी पूतना प्रेत बैताल भूत प्रमथ जूथ जंता॥
जयति बेदांतबिदबिबिधबिद्या[१३] बिसद बेद बेदांगबिद्ब्रह्मवादी[१४]।
ज्ञान बैराग बिज्ञान भाजन बिभो[१५] बिमल गुन गनत सुकनारदादी॥
जयति काल गुन कर्म मायामथन निश्चल ब्रत[१६] सत्य धर्म चारी।
सिद्ध सुर बृंद योगेंद्र[१७] सेवित सदा दासतुलसी प्रणतभयतमारी॥

शब्दार्थ—पाथोधि = समुद्र। पाषाण = पत्थर। जलजान (जलयान)= जलरथ, जलपरकी सवारी, नाव, जहाज़ इत्यादि। जातुधान (सं०) = निशाचर। प्रचुर = बहुत अधिक; समूह। हाता (सं० हत, हंता)=नष्ट वा चौपट करनेवाले। रुष्ट = क्रुद्ध। पाकारिजित् = पाक दैत्यके शत्रु इंद्रको जीतनेवाले, इन्द्रजित्, मेघनाद। पाक = 'देवासुरसंग्राममें जंभासुरके मारे जानेपर उसके भाईबंधु नमुचि, बल और पाक झटपट रणभूमिमें आ पहुँचे थे। पाकने अपने बाणोंसे मातलि (सारथि) और उसके रथके एक एक अंगको छेद डाला। इंद्रकी सेना रौंद डाली। तब इंद्रने अपने आठ धारवाले बज्रसे बल और पाकका सिर काट डाला।' भा० ८।११। तभीसे इंद्रका नाम 'पाकारि' पड़ा। मर्म=

ह०, ज०, १५, ७४, आ०। १० परजंत्रमंत्राभिचार–६६, रा, आ०, ७४, ५१, बे०। पर मंत्रायंत्राभिचार–ह०। परमंत्रजंत्राभिचारक–भा०, बे०। (हरताल देकर यह पाठ बनाया है।) ११ कार्मन–६६, रा०, ५१, ७४, आ०। कर्मना–भा०, बे०, ह०, प्र०, ज०। १२ साकिनी डाकिनी–६६, रा०, ७४, ५१, आ०। डाकिनी साकिनी–भा०, बे०, ह०, प्र०, ज०। १३–बिद्वि–६६, रा०। बिदबि–बे०, दी०, वि०। बित बि–ह०। बिधि बि–ज०, बे०, मु०, डु०, ७४। बिद (बुद्धि)–भा०। १४ विद्ब्रह्म–६६। बिद ब्रह्म ह०, ५१, ज०, ७४, आ०, रा०। १५ बिभव–५१, ७४। १६–यहां पाठमें बड़ी धींगाधाँगी है। ब्रत सत्य–६६। ज्ञान ब्रत सत्य रत–भा०, बे०, ह०, ७४, आ०। ब्रत सत्य रत–शि०। ब्रत तप सत्य–ज०। ज्ञान ब्रत सदा सदा रत–रा०। १७–योगेंद्र–६६, रा०। योगींद्र–ह०, ५१, भा०, बे०, ७४, आ०।

प्राणियोंके शरीरमें वह स्थान जहां आघात पहुँचनेसे अधिक वेदना या मृत्यु होती है। वैद्यकमें मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधिके सन्निपात स्थानको मर्म माना गया है और वहां प्राणोंका निवासस्थान लिखा गया है। प्रकृति, स्थान और परिणाम भेदसे मर्म पाँच प्रकारके होते हैं और कुल मर्मोंकी संख्या १०७ मानी गयी है। परिणामके विचारसे सद्यः प्राणहार मर्म १९, कालान्तरमारक ३३, वैकल्यकारक ४४, रुजाकारक ८ और विशल्यघ्न ३ माने गये हैं। मर्मभित् = मर्मभेदी (मर्मस्थानोंको भेदन करने वा छेदनेवाले।) कर्म परिपाक = कर्मका फल। भुवनैक = (भुवन + एक) लोकोंमें एकही। भूषण = वह जिससे किसीकी शोभा बढ़े; अलंकार, गहना। बरद = वर देनेवाले। विहित = जिसका विधान किया गया हो, किये हुए। विदित; उचित। (ढु०) कृति = कार्य। साका (शाका) = कीर्तिका स्मारक। कोई ऐसा बड़ा काम जो सब लोग न कर सकें और जिसके कारण कर्ताकी कीर्ति हो। यथा, '**गीध मान्यो गुरु कपिभालु मान्यो मीत कै पुनीत गीत साके सब साहब समत्थके।**' विजय=यश। (दी०, वै०) पुष्पक = यह एक दिव्य विमानका नाम है जो कुबेरका यान था जिसे रावण छीन ले गया था। रावणवध होनेपर बिभीषणने इसे श्रीरामजीको अर्पण किया। इसमें घटने बढ़नेकी शक्ति थी। सब सेनापति और मंत्रियों सहित बिभीषण इत्यादि सब इसपर सवार होकर श्रीरघुनाथजीके साथ श्रीअवध आये थे। नगरके बाहरही उतरकर श्री रघुनाथजीने इसे कुबेरके पास जानेकी आज्ञा दी। यह विमान इच्छाके अनुसार स्वयं चलता था। कुबेरने ब्रह्माजीकी बहुत सेवा की जिससे पितामह उनपर बहुत प्रसन्न रहते थे। इसीसे उन्होंने कुबेरको अमरत्व प्रदान किया, धनका स्वामी और लोकपाल बना दिया, महादेवजीसे इनकी मित्रता करा दी, यक्षोंका राजा बना दिया, 'राज राज' की उपाधि दी और यह विमानभी उन्होंनेही दिया था। (महा० वनपर्व) रावणने कुबेरसे जब यह विमान छीन लिया तब कुबेरने उसे शाप दे दिया कि 'यह विमान तुम्हारी सवारीमें नहीं आ सकता। जो युद्धमें तुम्हें मार डालेगा उसीको यह वहन करेगा।'

(वनपर्व) आरूढ़ = चढ़े हुए, सवार। सौमित्रि = सुमित्राजीके पुत्र श्रीलक्ष्मणजी और श्रीशत्रुघ्नजी। दोनों सुमित्राजीके पुत्र हैं। परन्तु 'सौमित्रि' शब्द प्रायः लक्ष्मणजीकेलिये रूढ हो गया है। तुलसीग्रंथोंमें यही अर्थ प्रायः लिया गया है। कीरतिपताका = कीर्तिकी ध्वजाको फहरानेवाले। पर = शत्रु। यंत्र = पद ११ देखिये। मंत्राभिचार = (मंत्र + अभिचार) अथर्ववेदोक्त मंत्रयंत्रद्वारा मारण और उच्चाटन आदि हिंसा कर्म, पुरश्चरण। तंत्रके प्रयोग छः प्रकारके होते हैं। मारण, मोहन, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन और वशीकरण। स्मृतिमें इन कर्मोंको उपपातकोंमें माना है। ग्रसन = ग्रास करनेवाले। बुरी तरह पकड़ लेनेवाले कि फिर छूट न सके। कार्मन (कार्मण) = मूल कर्म जिनमें मंत्र और औषध आदिसे मारण, मोहन, वशीकरणादि किया जाता है। मंत्रतंत्रादिका प्रयोग जिससे शत्रुको मारते हैं। कूट = गुप्त बैर, गुप्त प्रयोग। Fallon's New Hindustani Dictionary 1879 में 'कूट' का अर्थ A magic circle traced with sand or ashes भी है। अर्थात् 'बालू या राखसे बनाया हुआ गोल रेखायंत्र वा तंत्र प्रयोग।' यही अर्थ हमें यहाँ संगत जान पड़ता है। कृत्या = तंत्रके अनुसार एक राक्षसी जिसे तांत्रिक लोग अपने अनुष्ठानसे उत्पन्न करके किसी शत्रुको विनष्ट करनेको भेजते हैं। यह बहुत भयंकर मानी जाती है। इसका वर्णन वेदोंमेंभी आया है। दुर्वासाजीने कृत्याको उत्पन्न कर अम्बरीषजीको भस्म करना चाहा था। यही यातुधानीरूपसे सप्तर्षिको खाने आयी थी। (महाभारत वनपर्व) जंता = यातनादंड देनेवाले, जीतनेवाले। (डु०) यदि इसे 'यंत्री' का अपभ्रंश मानें तो अर्थ होगा 'नियंत्रण करने वा बाँधनेवाले। पूतना, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी, वेताल, भूत = पद १६ देखिये। प्रमथ=पद ११ देखिये। जूथ = यूथ, झुंड। वेदांत, उपनिषद् और आरण्यक आदि वेदके अंतिम भाग जिनमें आत्मा, परमात्मा और जगत् आदिके संबंधमें निरूपण है। प्रत्येक वेदका अन्तिम अध्याय जिसमें ब्रह्मका प्रतिपादन रहता है। वेदांग=छः शास्त्र वेदोंके अंग माने गये हैं। वह ये हैं, शिक्षा (नासिका

अंग), कल्प (हाथ), व्याकरण (मुख), निरुक्त (श्रवण), ज्योतिष (नेत्र), और छन्द (चरण) । वेदांतविद = वेदान्तके जाननेवाले, वेदान्ती । विविधविद्या = यथा, "**द्वे विद्ये वेदितव्ये इति हस्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति पराचैवापरा च । तत्रा परा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दं ज्योतिषमिति । अथ परा ययतदक्षरमधिगम्यते ॥** ' मु० उ० १।१।५। पुनश्च, "**पुराणं न्याय मीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः । वेदाः स्थानानि विद्यानि धर्मस्य च चतुर्दश ॥** याज्ञ. स्मृ. १।३ ।" ब्रह्म = "**सर्वत्र बृहत्वगुणयोगेन हि ब्रह्मशब्दः । बृहत्वंच स्वरूपेण गुणैः यत्रानवधिकातिशयं सोऽस्य मुख्योर्थः ।** इति ब्रह्मसूत्रभाष्ये ।" स्थूल, सूक्ष्म, व्यक्त, अव्यक्त आदि संपूर्ण जीवोंको अपने कल्याणगुणोंसे नित्य बढ़ानेसे और अपने स्वरूप रूप गुण वैभवसे सदा बढ़नेसे श्रीसरकार श्रीरामचन्द्रजीका नाम ब्रह्म है । ब्रह्मवादी = व्यापक ब्रह्म श्रीरामजीके स्वरूपको मनन करनेवाले और गुण रूपको वर्णन करनेवाले । '**रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते ।**' (रामतापनीयोपनिषद्) भाजन = पात्र, अधिकारी । यथा, '**लखन कहा जसभाजन सोई । नाथकृपा तव जापर होई ॥**' गनत = गिनते हैं, गाते हैं, प्रशंसा करते है, मान प्रतिष्ठा करते हैं । **शुक = शुकदेवजी ।** ये कृष्णद्वैपायन व्यासके पुत्र थे । इन्होंने राजा परीक्षितको भागवत सुनायी थी । योगेंद्र = योगके प्रवर्तकोंमें श्रेष्ठ, योगिशिरोमणि ।

पद्यार्थ—समुद्रपर पत्थरोंको जहाज़ बनानेवाले, (पत्थरोंको जलपर तैराकर सेतु बँधवाकर सेनाको समुद्रपार लंकामें उतारनेवाले) निशाचरके बहुत बढ़े हुए समूहहर्षको चौपट कर देनेवाले, कुपित रावण, कुंभकर्ण और इंद्रजित् मेघनादके मर्मस्थानोंको भेदन करके उनको कर्मोंका परिपूर्ण फल देनेवाले ! आपकी जय हो । ५ । समस्त लोकोंके अनुपम भूषण, बिभीषणजीको वर देनेवाले, अपने किये हुए कर्मोंसे श्रीरामसंग्रामको शाका* (कीर्तिका स्मारक) बनानेवाले, श्रीलक्ष्मण

*अर्थान्तर—' श्रीरामचन्द्रजीके साथ संग्राममें बड़े बड़े यशपूर्ण काम करनेवाले हो । ' (वि०)

सीतासहित पुष्पक विमानपर सवार सूर्यवंशके सूर्य श्रीरघुनाथजीकी कीर्तिके (फहरानेवाले) पताका (रूप)! आपकी जय हो। ६। शत्रुओंके यंत्र, मंत्र और प्रयोगोंको ग्रसनेवाले, कार्मण, कूट† और कृत्या आदिके नाश करनेवाले, शाकिनी, डाकिनी, पूतना, प्रेत, वेताल, भूत और प्रमथगणोंको जीतनेवाले वा यातनादंड देनेकेलिये यंत्ररूप! आपकी जय हो। ७। वेदान्तके पंडित, अनेक प्रकारकी निर्मल (सतोगुणी) विद्याओं और वेदवेदाङ्गोंके ज्ञाता, ब्रह्मवेत्ता, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञानके सत्पात्र, विभो (समर्थ)! आपकी जय हो। आपके निर्मल गुणोंकी प्रशंसा शुकदेवजी, नारदजी आदि (बड़े बड़े महर्षि, देवर्षि) करते रहते हैं। (गुणानुवाद करते रहते हैं। तब औरोंकी क्या कही जाय?)। ८। काल, (सत्व, रज, तम) गुण, (शुभाशुभ, कायिक वाचिक और मानसिक, संचित, प्रारब्ध और क्रियमान) कर्म और मायाके मथन करनेवाले, सत्य धर्मका अटल व्रत धारण करनेवाले, सिद्धों, देववृन्दों और योगेन्द्रोंसे सदा सेवित और शरणागत तुलसीदासके भयरूपी अंधकारके नाश करनेको सूर्यरूप श्रीहनुमान्‌जी! आपकी जय हो। ९।

टिप्पणी—७ (क) 'पाषान जलजानकर' इति। गोस्वामीजीका मत यह जान पड़ता है कि श्रीहनुमान्‌जीही सेतुबन्धनमें प्रधान थे। पद २५ मेंभी कहा है, '**बद्ध सागर सेतु अमर मंगल हेतु**'। पद २५ टि० ११ (घ) देखिये।

(ख) 'पाषान जल जानकर' के साथ 'जातुधान प्रचुर हर्ष हाता' उसी पंक्तिमें देकर जनाया कि यह बड़ा दुष्कर कार्य था। इस कार्यके संपन्न होनेसे रावणादि समस्त राक्षसोंका सारा हर्ष जाता रहा। यथा, "**सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना।। बाँधेउ बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।**

† प्रायः और लोगोंने 'कूट' का अर्थ 'गुप्त' या 'गुप्तरीतिसे प्रेरित' करके इसे 'कार्मन' का विशेषण माना है।

सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ॥ निज व्याकुलता समुझि बहोरी । बिहँसी गयेउ गृह करि मति भोरी ॥ " पुनः प्रहस्तवचन, यथा " जेहि बारीस बँधायेउ हेला ।" "सो भनु मनुज खाब हम भाई ।" तथा मंदोदरी वचन, यथा 'जेहि जलनाथ बँधाएउ हेला । '

उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि यह कार्य असंभव था । इसके हो जानेसे सभी राक्षस भयभीत हो रहे हैं और रावण तो सुनकर ऐसा डर गया कि उसके दशों मुखोंसे समुद्रके दश पर्याय शब्द एकसाथ निकल पड़े ।

कई कारणोंसे हर्ष 'प्रचुर' था । अमित परिवार और अमित सेना होनेसे, एक एक सारे जगत्को जीत सकता था । ऐसे अमित सुभटोंके होनेसे तथा चारों ओर समुद्ररूपी खांईसे घिरी लंका शत्रुकेलिये स्वाभाविक अगम होनेसे सब प्रकार सुरक्षित होनेका हर्ष था । सब यही समझते थे कि वानरी सेना इस पार आही नहीं सकती ।

(ग) 'रावण कुंभकर्ण पाकारिजित् मर्मभित्' इति । श्रीहनुमान्जी इन सबोंके मर्मस्थलोंके भेदी थे । क्रमसे तीनोंके मर्मभेदनके प्रमाण, यथा
'मुठिका एक ताहि कपि मारा । परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ॥'
'तब मारुतसुत मुठिका हनेऊ । परेउ धरनि व्याकुल सिर धुनेऊ ॥'
'बार बार प्रचार हनुमाना । निकट न आव मरम सो जाना ॥'

(घ) 'कर्म परिपाकदाता' इति । भाव कि इसे मर्मभेदन न समझिये । हनुमान्जीने मर्मभेदन जो किया यह वास्तवमें मर्मभेदन न था, वरंच उन राक्षसोंके दुष्टकर्मोंका फल था जो उनको दिया गया । यथा, 'भजहु न रामहिं सो फल लेहू ।', 'परद्रोहरत अति दुष्ट । पायो सो फल पापिष्ट ॥ (लं०) ॥', 'खीझत मँदोवै सविषाद देखि मेघनाद बयो लुनियत सब याही दाढ़ी जार को ।' (क० सुं०) । तात्पर्य कि इन दुष्टोंके मर्मभेदनमें आपका कोई दोष नहीं । आप तो परम विशुद्ध विज्ञानी हैं । आपको किसीसे द्वेष नहीं ।

८ (क) 'जयति भुवनैक भूषन बिभीषन वरद' इति । 'भुवनैक

भूषन ' हनुमानजी एवं बिभीषणजी दोनोंका विशेषण हो सकता है। बिभीषणजी भक्तशिरोमणि माने गये हैं। क्योंकि ये एक तो राक्षस थे, दूसरे राक्षसकुलमेंही रहते हुए सब प्रतिकूल सामग्रियोंसे घिरे हुए होतेभी इन्होंने भगवद्भजन किया था। यथा ' **खलमंडली बसहु दिन राती। सखा धर्मनिबहै केहि भांती ॥ मैं जानौं तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती ॥ बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देहि बिधाता ॥** ' (सुं०), ' **सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्ह महं जीभ बिचारी ॥** ' ' **धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयउ तात निसिचर कुलभूषन।** ' (कुंभकर्णवाक्य)

(ख) ' बिभीषन बरद ' इति। सीताशोधसमय बिभीषणजीसे भेंट होनेपर उनके ' **तात कबहुं मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुलनाथा ॥** ' इस प्रश्नपर श्रीहनुमान्‌जीने उनसे कहा था कि ' **सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥ कहहु कवन मैं परम कुलीना।** ' येही वचन बिभीषणजीकेलिये वर-दानरूप हैं। जैसा कि इन वचनोंसे सिद्ध होता है, '**श्रवन सुजस सुनि आयेउँ प्रभु भंजन भवभीर।** ' हनुमान्‌जीसेही तो सुना था कि ' **करहिं सदा सेवक पर प्रीती।** ' इन वचनोंमें वरदान यह है कि वे तुमपर प्रेम रखते हैं; अवश्य कृपा करेंगे। यहीं आकर तुमको दर्शन देंगे।

(ग) ' बिहित कृति राम संग्राम साका ' इति। ' बिहित ' के जो अर्थ शब्दार्थमें लिखे गये वे सभी यहां लग सकते हैं। जब जो दुष्कर कार्य आ पड़ा आपने उसे उचित रीतिसे कर दिया। वे सब प्रसिद्ध कर्म रामसंग्रामकीर्तिके स्मारक हुए। पुनः 'शाका' कथनका भाव कि सूर्य संवत्सरकी शाका चलाते हैं। हनुमान्‌रूपी सूर्य रामसंग्रामरूपी संवत्सरकी शाका चलाते हैं।

(घ) ' परजंत्रमंत्राभिचारग्रसन कार्मन कूट कृत्यादि हंता ' इति। यथा, ' **पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम रामदूत की रजाय माथे मानि लेतु हैं। घोर जंत्रमंत्र कूट कपट कुजोग रोग हनुमान आन सुनि छाँड़त निकेत है ॥**', '**कर्मण कूट की कि जंत्रमंत्र बूट**

की पराहि जाहि पापिनी मलीन मन मांह की। पाइहै समाय नतु कहत बजाइ तोहि बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की। आन हनुमान की दुहाइ बलवान की सपथ महाबीर की जो रहै पीर बांह की ॥'

(ङ) 'जंता' इति। दासकी समझमें 'जंता' यंत्रका अपभ्रंश है। भक्तिरसबोधिनीमें 'जंत' शब्द यंत्रके अर्थमें आया है। यथा, "संतपति बोले मैं अनंत अपराध किये जिये अब कही सेवो सीत मानि जंत हैं। ३२४।" भाव यह है कि जैसे टोना आदिके लगनेपर यंत्र बाँधनेसे टोना आदिका प्रभाव नष्ट हो जाता है वैसेही श्रीहनुमान्‌जीका नाम शाकिनी आदिसे रक्षाकेलिये यंत्ररूप है। नाम लेतेही, शपथ वा दुहाई सुनतेही ये भाग जाते हैं।

वैजनाथजीने 'यंतासूत: इत्यमर:' इस प्रमाणको लेकर यंताका अर्थ 'सारथी' किया है और यह भाव लिखा है कि "ये सब हनुमान्‌जीके पीछे चलते हैं। प्रतिकूलता नहीं कर सकते।" बाबू शिवप्रकाश और वीरकविजीने 'जीतनेवाला' और भट्टजीने 'दण्ड देनेवाला' अर्थ किया है।

९ (क) 'विज्ञान भाजन' अर्थात् विशुद्ध विज्ञानी हैं। श्रीसीताराम-गुणग्राममें सदा विहार करनेसे इनको विज्ञान भाजन कहा है। यथा, 'सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ। वंदे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ॥' (बा०)

(ख) 'विविधविद्या बिसदवेद वेदांगविद्' इति। वाल्मीकीय कीष्किंधाकांड अ० ३ में इसका प्रमाण मिलता है जब सुग्रीवके भेजे हुए ये बटुरूपसे श्रीरघुनाथजीके समीप गये थे। यथा "नानृग्वेद विनीतस्य ना यजुर्वेद धारिणः। ना सामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥ नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधाश्रुतम्। बहुव्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥ २९ ॥ ना मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा। अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥ ३० ॥ अविस्तरमसंदिग्धमवलंबित मव्ययम्। उरस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ॥ ३१ ॥ संस्कारक्रमसंपन्नामद्रुतामविलंबिताम्। उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदय हर्षिणीम् ॥ ३२ ॥"

श्रीहनुमान्‌जीका वाक्य समाप्त होनेपर श्रीरघुनाथजीने श्रीलक्ष्मणजीसे, यह कहते हुए कि तुम इनसे स्नेहपूर्वक मीठी वाणीमें बातचीत करो। इनके विद्या वेद वेदाङ्गविद् होनेकी प्रशंसा इस प्रकार की है 'जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं, जिसे यजुर्वेदका ज्ञान नहीं और जो सामवेदका विद्वान् पंडित नहीं वह ऐसा वार्तालाप नहीं कर सकता'। २८। निश्चयही इन्होंने समस्त व्याकरणका कई बार स्वाध्याय किया है, क्योंकि बहुत बोलनेपरभी इन्होंने कोई ग़लती नहीं की है। २९। मुंह, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य प्रसंगोंसे बोलनेके समय इनका कोई दोष प्रकट नहीं हुआ है। ३०। इन्होंने जो कुछ कहा है संक्षेपमें कहा है। इनकी कोई बात ऐसी नहीं हुई है जिसमें संदेह हो। रुक रुककर अथवा शब्दोंको तोड़ मरोड़कर इन्होंने उच्चारण नहीं किया है। न तो बहुत ऊँचे न तो बहुत नीचे किन्तु मध्यम स्वरमें इन्होंने अपना अभिप्राय प्रकट किया है। ३१। संस्कार तथा उच्चारणकी शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार किया हुआ वचन हृदयको प्रसन्न करता है। ३२। महर्षि अगस्त्यजीनेभी कहा है कि "इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्त्तिक, भाष्य और संग्रह सभीका अच्छीतरह अध्ययन किया है। अन्यान्य शास्त्रोंके ज्ञान तथा छन्दः शास्त्रमेंभी इनकी जोड़का कोई दूसरा विद्वान् नहीं है। ये सभी विद्याओं और तपस्यामेंभी देवगुरुकी जोड़के हैं। (वाल्मी० उ०) विमल गुण— पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति अनीतिका विवेक, गंभीरता, चतुरता, धैर्य और शूरवीरता इत्यादि।

१० (क) 'काल गुन कर्म माया मथन' इति। भाव कि कालादि सभीको संतप्त करते हैं। परन्तु हनुमान्‌जीकी शरण होतेही इनका प्रभाव नष्ट हो जाता है। दूसरोंके कालगुणकर्मादिको सुधार देनेको समर्थ हैं। तब भला इनपर स्वयं इनका प्रभाव कब पड़ सकता है? बाहुकमें कहा है कि

"माया जीव कालके करमके सुभावके करैया राम बेद कहैं साँची मन गुनिये। तुम्हते कहा न होइ हा हा सो बुझैये मोहि हौंहूँ रहौं मौनही बयो सो जानि लुनिये॥"

(ख) 'निश्चल व्रत सत्य धर्मचारी' इति। भाव कि प्राकृत धर्मकर्मको सामान्य मानकर आप 'सत्यधर्म' अर्थात् भागवतधर्मका अटल व्रत धारण किये हुए हैं। आप 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।' इस परम धर्मके अनुयायी हैं। पद २६ के 'बचन मानस कर्म सत्य धर्म व्रती जानकीनाथ चरणानुरागी' इस वाक्यमें जो भाव है ठीक वही भाव 'निश्चल व्रत सत्य धर्म चारी' का है। वहांके 'बचन मानस कर्म व्रती' का भाव यहाँ 'निश्चल व्रत' शब्दोंसे प्रकट किया है। श्रीजानकीनाथचरणानुरागी होनाही 'सत्य धर्म व्रत' है और सब धर्म असत्य हैं। क्योंकि वे संसारसंबधी हैं, मायिक हैं।

(ग) 'सिद्ध सुरवृंद योगेंद्र सेवितसदा' इति। हनुमान्‌जीको सूर्य कहा है। सुर मुनि आदि सूर्यकी सेवा करते हैं। यथा, 'करैं मुनि मनुज सुरासुर सेवा॥' (पद २) उसी संबंधसे यहा 'सिद्ध सेवित' कहा।

(घ) 'प्रनत भय तमारी' इति। तमारी=सूर्य। आदिमें 'संसारनिसिकिरणमाली' और अंतमें 'भयतमारी' अर्थात् आदि और अंत दोनोंमें सूर्य रूप जनाया। भयतमारीमें परंपरितरूपक अलंकार है। भय तमारी विशेषण देकर विनय करनेमें भाव कि हमारे त्रासको हरिये।

२७ [१६]

जयति* मंगलागार संसारभारापहर वानराकार विग्रह पुरारी।
रामरोषानल ज्वाल मालामिष ध्वांतचरसलभ संहारकारी[1]॥१॥
जयति मरुदंजनामोदमंदिर नतग्रीव सुग्रीव दुःखैकबंधो।
जातुधानोद्धत क्रुद्ध कालाग्नि हर सिद्ध सुर सज्जनानंदसिंधो॥२॥
जयति रुद्राग्रणी विश्ववंद्याग्रणी[2] विश्वविख्यात भट चक्रवर्त्ती।
सामगाताग्रणी कामजेताग्रणी रामहित रामभक्तानुवर्त्ती॥३॥

---

* मु० में नहीं है। १ संघार–रा०, । ज०, । २ विश्वविद्याग्रणी–रा०, भा०, बे०, ५१, ७४, आ०। १५ में 'वंद्या' का विद्या बनाया गया है। विश्ववंदाग्रणी–ज०। विश्ववंद्याग्रणी–६६, ह०, भ०।

जयति संग्राम जय रामसंदेसहर[3] कोसला कुसल कल्यानभाषी ।
रामबिरहार्क संतप्त भरतादि नरनारि सीतलकरन कल्प साखी ॥४॥
जयति सिंहासनासीन[4] सीतारमन निरखी निर्भर हरष नृत्यकारी ।
राम सम्राज[5] सोभा सहित सर्वदा तुलसि मानस रामपुर बिहारी ॥५॥

शब्दार्थ—मंगलागार=मंगल+आगार (घर) । भारापहर=भार+अपहर । अपहर=पूर्णतया हर लेनेवाले, नाश करनेवाले । 'अप' उपसर्ग जिस शब्दके पहले आता है उसके अर्थमें विशेषताएँ उत्पन्न कर देता है । १ निषेध (अपकार, अपमान), २ दूषण (अपकीर्ति), ३ विकृति (अपांग), ४ विशेषता (अपहरण), ५ 'आप' का संक्षिप्तरूप जो यौगिक शब्दोंमें आता है (अपस्वार्थि) । वानराकार=वानर (बंदर) +आकार (रूप, शक्ल) । रोषानल=रोष(क्रोध)+ अनल(अग्नि) । मिष=बहाना, व्याज । ध्वांतचर=अंधःकारमें चलनेवाले, निशाचर । सलभ (शलभ)=पतङ्गे, पतिंगे । मरुदंजना=(मरुत्+अंजना) पवनदेव और अंजना माता । मरुत=एक देवगणका नाम है । वेदोंमें इन्हें रुद्र और वृश्निका पुत्र लिखा है और इनकी संख्या १८० मानी गयी है । पर पुराणोंमें इन्हें कश्यप और दितिका पुत्र लिखा गया है जिसे उसके वैमात्रिक भाई इंद्रने गर्भ काटकर एकसे उनचास टुकड़े कर डाले थे । वही उनचास मरुत हुए । यथा, '**हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास ।**' (सुं०) वेदोंमें मरुद्गणका स्थान अन्तरिक्ष लिखा है । उनके घोड़ेका नाम पृशित बतलाया है तथा उन्हें इन्द्रका सखा लिखा है । पुराणोंमें इन्हें वायुकोणका दिक्पाल माना गया है । पद्म पु० सृष्टिखण्डमें बताया है कि मरुत्वतीने मरुत्वान्नामक देवताओंको उत्पन्न किया जिनके नाम हैं, अग्नि, चक्षु, ज्योति, सावित्र, मित्र, अमर, शरणवृष्टि, सुवर्ष, महाभुज, विराज, राज, विश्वायु, सुमति, अश्वगंध, चित्ररश्मि, निषध,

---

३ संदेसहर—६६, रा०, भा०, ज०, आ० । संदेहहर—बे०, ह०, ७४, ५१, १५, प्र० । ४ सिंघासन—रा० । ५ सम्राज ६६, ह०, प्र०, ७४, १५, भ०, दी०, वि० । संभ्राज—रा०, भा०, बे०, ज०, ५१, छु०, मु०, वे० ।

आत्मविधि, चारित्र, पादमात्रग, बृहत् और विष्णुसनाभिग। ये सब मरुद्गण कहलाते हैं। मोद=मानसी आनंद। मंदिर= घर। नत= नम्र वा झुकी हुई। नतग्रीव=शोक और चिंतासे जिसकी ग्रीवा झुक गयी हो, चिंतातुर। ग्रीव (ग्रीवा)=सिर और धड़को जोड़नेवाला अंग, गर्दन। समस्त होनेपर 'ग्रीवा'का 'ग्रीव' रह जाता है। दुःखैक=दुखमें एकमात्र। बंधो=सहायक। यह बंधुका संबोधन हैं। जातुधानोद्धत=जातुधान+उद्धत। उद्धत=उग्र, उद्दण्ड, ऐश्वर्य और वरदान पाकर गर्वित। कालाग्नि=प्रलय कालकी अग्नि। प्राकृतिक प्रलयमें अग्नि ऐसी प्रचंड होती है की जलकी सूक्ष्म तन्मात्रा जो रस है उसे वह सब अपनेमें विलीन कर लेती है। स्थूलरुपसे पृथ्वी और जलका नामनिशान नहीं रह जाता। उस कालाग्निको वायुतत्त्व हरण कर लेता है अर्थात् वह अग्नितत्त्व अपने कारण वायुमें लीन हो जाता है। रुद्राग्रणी=(रुद्र+अग्रणी) रुद्रोंमें श्रेष्ठ। विश्ववंद्याग्रणी= विश्व+वंद्य+अग्रणी। वंद्य=पूजनीय, वंदना करनेयोग्य। चक्रवर्त्ती= सर्वश्रेष्ठ, सम्राट्। सामगाताग्रणी = सामवेदकी ऋचाएँ प्रायः गायत्री छंदमें हैं। यज्ञोंके समय जो उद्गाथादि स्तोत्रादि गाये जाते हैं उन्हीं स्तोत्रोंका इसमें संग्रह है। भारतीय संगीतशास्त्रका आरंभ इन्ही स्त्रोत्रोंसे हुआ। इसका उपवेद गंधर्ववेद है। गाता=गानेवालो (में)। कामजेताग्रणी= (काम+जेता) जीतनेवालोंमें अग्रणी। भक्तानुवर्ती= (भक्त+अनुवर्ती) अनुयायी, अनुगामी, पीछे पीछे चलनेवाले, अनुकूल बर्ताव करनेवाले। हर=ले जाने वा पहुँचानेवाले। हरकारा शब्द इसीसे बना हुआ जान पड़ता है। कोसला=अयोध्याजी। बिराहार्क= (विरह+अर्क) सूर्य। संतप्त=अत्यंत तापको प्राप्त। साखी (शाखी)=वृक्ष। यथा, 'तुलसी दलि रँग्यो चहै सट साखि सिहो रे।' (पद ८ देखिये) सिंहासनासीन= (सिंहासन+आसीन) बैठे हुए, विराजमान्। सिंहासन=राजाओं या देवताओंके बैठनेका आसन या चौकी। यह प्रायः काठ, सोने, चाँदी, पीतल आदिका बना होता है। इसके हत्थोंपर सिंहका आकार बना होता है। निरखना (सं० निरीक्षण)=देखना। यथा, '' बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान।' (उ०) नृत्यकारी = नाचनेवाले।

सम्राज=(सं०) सम्राट्, चक्रवर्ती राजा जिसके अधीन बहुतसे राजा महाराजा हों। सर्वदा = सदा। रामपुर = श्रीअयोध्याजी। विहारी = आनंदसे रमने, विचरने वा विहार करनेवाले।

पदार्थ :—मंगलभवन संसारभारके विनाशक, वानररूप (में साक्षात्) शरीरधारी त्रिपुरारि शिवजी, श्रीरामचन्द्रजीकी क्रोधाग्निकी ज्वालासमूहके बहाने निशाचररूपी पतिंगोंका संहार करनेवाले (श्री हनुमान्जी!) आपकी जय हो ।१। पवनदेव और श्रीअंजनाजीके आनंदके घर (अर्थात् दोनोंको आनंद प्रदान करनेवाले एकमात्र आपही हैं।) दुःखसे नमित, ग्रीवावाले, सुग्रीवके दुःखमें एकमात्र सहायक, उद्धत राक्षसोंके (नाशके) लिये कुपित प्रलयाग्निरूप, * सिद्ध, सुर और सज्जनोंके आनंदसमुद्र अर्थात् उनको अगाध और अपार आनंद देनेवाले, हर! आपकी जय हो।२। समस्त रुद्रोंमें अग्रगण्य, संसारके (समस्त) वन्दनीय प्राणियोंमें सबसे श्रेष्ठ, विश्वविख्यात् योद्धाओंमें चक्रवर्तीरूप, सामवेदके गायकों और कामदेवके जीतनेवालोंमें अग्रगण्य अर्थात् सामवेदके गायनाचार्य और सदा उर्द्धरेता, श्रीरामजीके हितकर्ता, और रामभक्तोंके अनुगामी! † आपकी जय हो।३। श्रीरामजीका समरविजय संदेश ले जानेवाले और श्रीअयोध्याजीमें कुशल

---

*अर्थान्तर:—१ भारी निशाचरोंका क्रोध करके उनके लिये कालाग्नि हो और हर अर्थात् 'शिवरूप हो'। (पं० रा० कु०) २ हु०, बै०, भ०, वीर०, दी०, वि० ने 'क्रुद्ध' का अर्थ 'क्रोध' किया है। इन महानुभावोंने अर्थ किया है कि 'उद्दण्ड राक्षसोंके' अथवा 'राक्षसोंके प्रचण्ड' क्रोधरूपी कालाग्निके नाश करनेवाले हो। 'क्रुद्ध' का अर्थ 'क्रोधित' 'कुपित' है। इस तरह यह विशेषणही हो सकता है। अर्थ यहभी हो सकता है कि 'उद्धत राक्षसोंके कुपित कालाग्निके हरनेवाले।', यथा, 'रावन क्रोध अनल निज श्वास समीर प्रचंड' (सुं०) परन्तु विचारनेपर अपर्युक्त अर्थही हमें ठीक जंचता है।

†अर्थान्तर— सब रामभक्त आपके अनुवर्ती हैं अर्थात् आपके आचरण सुन सुनकर वैसाही वर्तते हैं। (हु०)

मंगलसमाचारके कहनेवाले, रामविरहरूपी सूर्य (के ताप) से संतप्त, भरतादि (समस्त अयोध्यावासी) स्त्रीपुरुषोंको शीतल करनेमें कल्पवृक्षरूप! आपकी जय हो। ४। श्रीसीतापति रामचन्द्रजीको राजसिंहासनपर विराजमान् देखकर निर्भर हर्षके मारे नाचने लग जानेवाले (इतना हर्ष हुआ कि हृदयमें समा न सका। बाहर उमड़कर नृत्यमें परिणत हो गया।) श्रीरामजीके चक्रवर्ती महाराज होनेपरकी शोभासहित सदा मुझ तुलसीदासके मनरूपी श्रीअवधपुरीमें विहार करनेवाले श्रीहनुमान्‌जी! आपकी जय हो। ५।

टिप्पणी—१ 'जयति मंगलागार संसार भारापहर' इति। (क) वानर मंगलरूप नहीं है। यथा, 'असुभ होइ जिन्हके सुमिरे ते बानर रीछ बिकारी', 'प्रात लेइ जो नाम हमारा। ता दिन ताहि न मिलै अहारा।' (सुं०) अतएव कहा कि आप साक्षात् शिवही हैं जो रामसेवा तथा संसारभारापहरणके निमित्त वानरशरीरधारी हुए हैं। अतएव मंगलकारी हैं। (ख) 'संसारभारापहर' इति। परद्रोही निशाचर जिनके पापोंसे पृथ्वी बोझल हो रही थी संसारका भार हैं। यथा, 'जय हरन धरनीभार' (लं०), 'गिरि सर सिंधुभार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥' (बा०), 'हरिहौं सकल भूमि गरुआई।' (बा०)। संसारको निशाचररहित करना 'संसारभार हरना' है। पुनः संसारभार = भवभार, आवागमन। जीवोंपर जन्ममरणरूपी भार रहता है। उसे हर लेते हैं अर्थात् शरणागत जीवोंका जन्ममरण छुड़ा देते हैं। अतः 'संसारभारापहर' कहा। (ग) 'बानराकार बिग्रह पुरारी' इति। पद २५ टि० ५ देखिये। (घ) 'रामरोषानलज्वालमाला' इति। गृध्रराज श्रीजटायुजीने रावणसे ऐसाही कहा है और माल्यवान्‌नेभी। यथा, "तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहि त अस होइहि बहुबाहू॥ रामरोषपावक अति घोरा। होइहि सलभ सकल कुल तोरा॥" पुनः यथा, "भूमि भूमिपाल ब्यालपालक पताल नाकपाल लोकपाल जेते सुभटसमाज हैं। कहै

मालवान जातुधानपति रावरेको मनहुं अकाज आनं ऐसे कौन आजु है ॥ रामकोह पावक समीरसीयस्वास कीस ईस बामता विलोकु वानरको ब्याजु है। जारत प्रचारि फेरिफेरि सो निसंक लंक जहां बांको बीर तोसों सूर सिरताजु है ॥ क० ॥" यहां परंपरितके ढंगमें समअभेदरूपक है। रामक्रोधाग्निसे राक्षस भस्म हुए। इस बातको 'मिष' में डालकर श्रीहनुमान्‌जीका पुरुषार्थवर्णन 'कैतवापह्नुति अलंकार' है।

क० सुं० के उपर्युक्त उद्धरणसे 'रामरोषानल' का भाव खूब स्पष्ट हो जाता है। वहां माल्यवान् कह रहा है कि 'वानर लंका जला रहा है, ऐसा न समझो। यह तो रामरोषानल है जो सीताजीकी विरह-श्वासरूपी उनचासो पवनोंसे प्रचंड होकर लंकाको जला रहा है, वानरका बहाना है। इसीसे तो वानर ललकार ललकारकर लंकाको जला रहा है।' यहां 'रामरोषानल' को बहाना कहा है। कपिका उत्कर्ष सिद्ध करनेकेलिये ऐसा कहा गया है। मूल रामायणमेंभी कहा है 'यः शोकवह्नि जनकात्मजायाः आदायते नैव ददाह लंका।'

नोट—पूर्व पदों (२५, २६) में हनुमान्‌जीको चन्द्रमा और सूर्य कहा और यहां 'रामरोषानलज्वालमालामिष' से उनको अग्निरूप कहा गया। तेजका उदाहरण सूर्य, चन्द्र और अग्नि इन्हीं तीनसे दिया जाता है। तीनोंका रूपक देकर हनुमान्‌जीमें तीनोंका सामुहिक तेज एकत्रित दिखाया।

२ (क) 'जयति मरुदंजना मोद मंदिर' इति। दोनों आपके चरित देख देखकर एवं सुन सुनकर आनंदमें भरे रहते हैं। उनके 'मोद मंदिर' कहकर जनाया कि उनके बड़े यशस्वी पुत्र हैं।

(ख) 'नतग्रीव सुग्रीव' इति। भाव कि वास्तवमें वे 'सुग्रीव' हैं। उनकी ग्रीव सुंदर (ऊँची और मांसभरी) थी, परन्तु शोकसे वे नतग्रीव हो गये। यथा, 'बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तनु बहु व्रन चिंता जर छाती।' 'दुःखैक बंधो' इति। विपत्तिमें

बराबर उचित शिक्षा देकर रक्षा की। श्रीरघुनाथजीसे मित्रता कराके उनके सब शोक दूर कर दिये। मिलान कीजिये, '**सुग्रीव सिक्षादि रक्षा निपुण बालि बलसालि बध मुख्य हेतू।**' पद २५ देखिये। 'बंधो' का भाव कि सगे भाईके समान सहायक हुए। यथा, '**होहिं कुठाय सुबंधु सहाए।**'

(ग) 'जातुधानोद्धत क्रुद्ध कालाग्नि हर' इति। 'क्रुद्ध' विशेषण है। इसका अर्थ 'कोपित', 'क्रोधमें भरा हुआ' होता है। इसीके अनुसार पदार्थमें अर्थ दिया गया है। 'क्रुद्ध' का अर्थ 'क्रोध' है। ऐसा प्रयोग हमें कहीं मिला नहीं। यदि ऐसा अर्थ होता तोभी भाव सुंदर निकल आता। परन्तु इस अर्थका प्रमाण न मिलनेसे हमने टीका-कारोंका मत स्वीकार नहीं किया।

३ (क) 'सिद्ध सुर सज्जनानंदसिंधो' इति। ये सब रावणसे पीड़ित थे। इसीसे इन सबोंको आपके चरित्रोंसे आनंद मिला। पुनः, अष्टसिद्धियोंके दाता होनेसे सिद्धोंको, देवबंदीछोर होनेसे देवताओंको और भक्ति देकर सज्जनोंको आनंददाता हुए।

(ख) 'विश्ववंद्याग्रणी' इति। यथा बाहुके, '**सेवक सेवकाई जानि जानकीस मानै कानि सानुकूल सूलपानि नवै नाथ नाक को। देवीदेव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ बापुरे बराँक और राजा राना राँक को।**', '**करतार भरतार हरतार कर्मकाल को है जगजाल जो न मानत इताति है।**', '**तेरे गुनगान सुनि गीरवान पुलकत सजल बिलोचन बिरंचि हरि हर के।**'

(ग) 'कामजेताग्रणी' इति। ऐसे कि रावणकी परम सुंदरी स्त्रियोंको नंगी देखकरभी ऊर्द्ध्वरेता बनेही रहे। उनके मनमेंभी किंचित् विकार न उत्पन्न हुआ। यथा, '**नहि मे परदाराणां दृष्टिर्विषय-वर्तिनी। कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणास्त्रियाः॥ न तु मे मनसा किंचिद्वैकृत्यमुपपद्यते॥** सुं० ११। ४१॥'

(घ) 'भट चक्रवर्ती' इति। जैसे राजाओंमें चक्रवर्ती राजाधिराज होता है वैसेही योद्धाओंमें ये महायोद्धा हैं। समस्त योद्धाओंके सिरताज हैं। यथा, 'सकल सुभट सिरमोर को' (३१), 'पंचमुख छमुख भृगुमुख्यभट असुर सुर सर्ब सरि समर समरत्थ सूरो'। (बाहुक) अकेलेही शिवजी, कार्तिकेयजी, परशुरामजी और समस्त सुरासुरसे लड़नेको समर्थ हैं। पुनः यथा, 'भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान सारिखो त्रिकाल न तिलोक महाबल भो।' (बाहुक) पद २८ टि० १ (ग) 'बल बिपुल' देखिये।

(ङ) 'भक्तानुवर्ती' इति। भक्तोंके पीछे पीछे उनकी रक्षामें तत्पर सदा साथ रहते और उनकी रुचि पालते हैं। यथा, 'रामके गुलामनि को कामतरु रामदूत'। (बाहुक) इस तुकमें उत्तरोत्तर उत्कर्षका वर्णन होनेसे 'सार अलंकार' है।

४ 'जयति संग्राम जय राम संदेस हर' इति। (क) 'संग्राम जय' का अर्थ टीकाकारोंने यह किया है। १ 'संग्राममें सदा जय होती है जिनकी ऐसे हनुमान्‌जी'। (वै०) २ 'तुम युद्धके जीतनेवाले हो'। (भ०) ३ 'संग्राममें जीत कराकर'। (वीर)

किसीने इसे 'हनुमान्‌जी' का और किसीने 'राम' का विशेषण माना है। 'संग्राम जय' का अर्थ हमने 'संग्राममें जय' अर्थात् 'समरविजय' किया है। यथा, 'समर विजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान'। (लं०) यही संदेसा उन्होंने कहाभी है। यथा, 'रिपु रन जीति सुजस सुर गावत।' (ख) 'संदेस हर' इति। आगेके 'कोसला' शब्दके संबंधसे यहां 'संदेस हर' से 'अयोध्यामें श्रीभरतजीके पास संदेसा ले जाना' अर्थ विशेष संगत है। तोभी 'संग्राम जय राम संदेश हर' इतने शब्दोंका अर्थ अलगभी हो सकता है। क्योंकि संग्रामके पश्चात् तुरन्त श्रीजानकीजीके पास संग्रामविजयका संदेसा गया है। यथा, 'पुनि प्रभु बोलि लियेउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥ समाचार जानकिहि सुनावहु।'। (लं०)

और हनुमान्‌जीने जाकर यही कहा है। यथा, 'सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा।' दूसरा संदेसा अवधपुरकेलिये है। यथा 'प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बटुरूप अवधपुर जाई॥ भरतहि कुसल हमारि सुनायेहु। समाचार लै तुम्ह चलि आयेहु॥' (लं०) अन्य रामायणोंमें निषादराजकोभी संदेसा कहना पाया जाता है। इस तरह इतने शब्दोंको अलग करनेसे तीनोंको समरविजयका संदेसा पहुँचानेका भाव आ सकता है। (ग) 'कोसला कुसल कल्यान भाषी' इति। अयोध्यावासियोंसे श्रीरघुनाथजीका कुसल कहा। इसी तरह लौटकर भरतादिका कुसल रघुनाथजीसे कहा है। यथा, 'कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि।' यद्यपि दासकी समझमें मुख्य अर्थ वही है जो पद्यार्थमें दिया गया है तथापि दोनों भाव इन शब्दोंसे निकल सकते हैं।*

५ 'रामबिरहार्कसंतप्त भरतादि कल्पसाखी' इति। (क) सूर्यकी कड़ी धूपसे तपे हुए लोग वृक्षके नीचे पहुँचनेसे शीतल होते हैं। भरतादि रामविरहरूपी सूर्यके तापसे संतप्त थे। उनको शीतल किया। इसीसे हनुमान्‌जीको कल्पवृक्ष कहा। यथा, "रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग। जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग॥ रहा एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भएउ अपारा॥ बीते अवधि रहे जो प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥", "रामबिरहसागर महँ भरत मगन मन होत।", "जासु बिरह सोचहु दिनराती।" (ख) 'शीतलकरन कल्पसाखी' इति। यथा, "रघुकुलतिलक सुजन सुखदाता। आयेउ कुसल देव मुनि त्राता॥ रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥', 'सुनत बचन बिसरे सब दूषा। तृषावंत जिमि

*बैजनाथजी 'हर कोसलाकुसल' का अन्वय 'हर कोसला अकुसल' करके अर्थ करते हैं कि 'अयोध्यामें जो अकल्याण था उसको संदेसा देकर हरनेवाले'।

पाइ पियूषा ॥ " कुशल मंगल कहकर विरह मिटाया। इस संदेशमें 'समर विजय' और 'कुशल' दोनों है। विरह संताप दूर होना कल्पवृक्षकी छायातले शीतल होना है। भरतजीका शीतल होना उपर्युक्त उद्धरणसे सिद्ध हो गया। पुरनरनारिभी शीतल हुए। यथा, 'समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥' शीतलता तो किसीभी हरेभरे वृक्षकी छायामें प्राप्त हो सकती है। यहाँ कल्पवृक्षकी उपमा दी। यह क्यों? इसलिये कि हनुमान्‌जीने भरतादिको उनके मनोनुकूल परमप्रिय वचन सुनाकर शीतल किया। यथा 'कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ। आयउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ ॥', 'मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई ॥ को तुम्ह तात कहां ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ॥' (उ.) मिलान कीजिये, 'रामके गुलामनि को कामतरु रामदूत मोसे दीन दूबरेको तकिया तिहारियै।' (बाहुक)

श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि "प्रभुका आगमन मात्र वचन छाया है जिससे विरह ताप हरा और रणमें विजय पाकर श्रीसीतालक्ष्मणसहित प्रभु प्रसन्न आ रहे हैं इत्यादि वचन अनेक वांछितफलदायक हैं। अतएव कल्पवृक्ष हुए।"

६ 'जयति सिंहासनासीन सीतारमन निरखि' इति। (क) रावणवध करके बिभीषणका राज्याभिषेक कर श्रीसीतालक्ष्मणसहित श्रीअवधपुरीमें आनेपर राज्याभिषेक होनेके समय श्रीसीतासंयुक्त दिव्य राज्यसिंहासनपर विराजमान समयका यह ध्यान है। (ख) 'निरखि निर्भर हरष नृत्य कारी' इति। लंकाविजयपरही श्रीहनुमान्‌जीके हर्षका पारावार न था जैसा कि वे स्वयं कह रहे हैं, 'सुनु मातु मैं पायउँ अखिल जग राज आजु न संसयं। रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं ॥' (लं०) राज्याभिषेक होनेपर वह हर्ष अत्यधिक हो गया जिससे वे फूले न समाये, नाचने लगे और श्रीरघुनाथ-

जीका प्रताप वर्णन करने लगे*। जो वचन आपने अंबा श्रीजानकीजीसे कहे हैं उनसे स्पष्ट है कि आपके हृदयमें बराबर यह मनोरथ रहा है कि कब हम रावणपर विजय प्राप्त कराके दोनोंको राज्यसिंहासनासीन देखें।

७ 'राम सम्राज सोभा सहित' इति। इस शोभाका वर्णन रामचरितमानस उत्तरकांड 'करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग देखि सत लाजे॥' से लेकर 'अंभोजनयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंतिजे।' तक है। इसके आगे वक्ता स्वयं कहते हैं कि वह 'सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।'

नोट—१ श्रीवियोगीहरिजी लिखते हैं कि 'रामराज्याभिषेककी शोभा सहित हृदयमें विहार करो।' कथनका भाव यह है कि 'मुझे तुम्हारे ऐश्वर्यसे कोई प्रयोजन नहीं। मैं तो राममाधुर्योपासक हूँ। मुझे वही छवि, छटा चाहिये।' 'तुलसी मानस रामपुर बिहारी' में 'सम अभेद रूपक अलंकार' है।

२ "कैलासो निलयस्तुषार शिखरी विन्दिर्गिरीश. सखा। स्वर्गङ्गा गृहदीर्धिका हिमरुचिश्चन्द्रोपलो दर्पणः॥ क्षीराब्धिर्नवपूर्तकं किमपरः शेषस्तु शेषतिविषा। यस्याः स्यादिह राघव क्षितिपते कीर्तैस्तटाकस्तव॥ ७८॥" हे पृथ्वीपति राघव! कैलास जिसका स्थान है, हिमालय जिसके उपवेशका स्थान है, महादेव जिसके

---

* 'कूर्मः पादोऽङ्गयष्टिर्भुजगपतिरसौ भाजनं भूतधात्री। तैला पूराः समुद्राः कनकगिरिरयं वृत्त वर्ति प्ररोहः॥ अर्चिश्चण्डांशुरोचिर्गगनमलिनिमा कज्जलं दह्यमाना। शत्रु श्रेणी पतंगा ज्वलति रघुपते त्वत्प्रताप प्रदीपः॥ ७७॥' श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं कि हे श्रीरामचन्द्रजी! कूर्मराज जिसके पाद (फतीलसोज़के नीचेकी थाली) है, शेष जिसका दण्ड है, पृथ्वी जिसका पात्र है, समुद्र जिसका तेल है, हिमालय गोलबत्ती और सूर्यकी किरणें जिसकी किरणें हैं, आकाशकी श्यामता जिसका कज्जल है और शत्रुओंकी पंक्ति जिसमें जल मरनेवाले पतिंगे हैं ऐसा आपके प्रतापका दीपक प्रज्वलित हो रहा है।

मित्र हैं, आकाशगंगा जिसके घरकी बावड़ी है, निर्मल कान्तिवाला चंद्रकान्तमणि जिसका दर्पण है, क्षीरसागर जिसका नवीन जलयुक्त खानित देश है और शेषजीकी किरणें जिसकी अंगदीप्तियां हैं ऐसा आपकी कीर्तिका विस्तार है ।

३ " लक्ष्मी तिष्ठति ते गेहे वाचि भाति सरस्वती । कीर्तिः किं कुपिता राम येन देशान्तरं गता ॥ ८१ ॥ " हे राम ! लक्ष्मी तो आपके घरमें स्थित है और वाणीमें सरस्वती सुशोभित है । परंतु आपकी कीर्ति न जाने क्यों कुपित होकर देशान्तरोंमें चली गयी ?

४ हनु० ना० अंक १४ के श्लोक ७७ से लेकर ८८ तक श्रीहनुमान्‌जी-द्वारा श्रीरामकीर्ति और प्रतापका वर्णन है । पाठक वहाँ देख सकते हैं । (व्रजरत्नभट्टाचार्यकृत टीकासे ।)

२८ [१७]

जयति[१] बात संजात बिख्यात बिक्रम
बृहद्बाहुबल बिपुल बालधि बिसाला ।
जातरूपाचलाकार* बिग्रह लसल्लोम[२]
बिद्युलता ज्वालमाला ॥ १ ॥
जयति बालार्क बर बदन पिंगल नयन
कपिस कर्कस जटाजूटधारी ।
बिकट भ्रुकुटी[३] बज्र दसन नख बैरि
मद मत्त कुंजरपुंज कुंजरारी ॥ २ ॥
जयति भीमार्जुन ब्यालसूदन गर्बहर
धनंजय रथ त्रान केतू ।
भीषण द्रोण कर्णादि पालित
कालहक सुजोधनचमू निधन हेतू ॥ ३ ॥

---

१ मु०, ७४ में नहीं है । *जातरूपांचलाकार—६६ । २ लसल्लोम—६६, रा०, भ० । लसत लोम—भा, बे०, डु०, वै०, मु०, ५१, इ०, ७४, दी०, वि० । लसत् लूम—१५ । ३ भ्रुकुटी—६६, ५१, भ०, दी० । भृकुटी—रा०, इ०, डु०, ७४, वि० ।

शब्दार्थ—बात (वात) = पवनदेव। वैद्यकके अनुसार वात शरीरके अंदर पक्वाशय स्थानपरकी वायुका नाम है जिसके कुपित होनेसे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शरीरकी सब धातुओं और मल आदिका परिचालन और श्वास, प्रश्वास, चेष्टा, वेग आदि इंद्रियोंके कार्योंकाभी यही मूल है। पवनके अभिमानी देवता। संजात = उत्पन्न। जातरूपा-चलाकार = जातरूप (स्वर्ण) + अचल (पर्वत) + आकार (रूप), सुमेरुपर्वतके आकारका। लसल्लोम = लसत् + लोम। लोम = रोम, रोएँ, शरीरपरके छोटे छोटे बाल। विद्युल्लता (सं०) = बिजली। विद्युल्लता= (विद्युत्+लता) बिजली समूह (डु०), बिजलीकी लताएँ (वैं०)। ज्वालमाला = समूह प्रकाश, लहरसमूह (डु०)। कपिश = काला और पीला रंग मिलनेसे जो नीला रंग बनता है। पीलाभूरा, धूम्र वा लालभूरा। 'श्यावः स्यात्कपिशो धूम्र।' इत्यमरः। कर्कस (कर्कश)=कठोर, कड़ा। यथा, 'कपिस केस कर्कस लंगूल खल दल भानन।' (बाहुक) भ्रुकुटी (भृकुटी)=भौंहें, नेत्रके ऊपर हड्डीपर जमे हुए बाल। भीमार्जुन=भीम और अर्जुन। ये दोनों पाण्डुपुत्र और युधिष्ठिरजीके सगे छोटे भाई हैं। व्याल-सूदन=सर्पनाशक गरुड़। धनंजय=अर्जुन। त्रान (त्राण)=रक्षा; रक्षाके साधन। केतु=ध्वजा। 'भीषम', 'कर्ण'=इनकी कथाएँ आगेकी टि० में दी गयी हैं। द्रोण=महाभारतके प्रसिद्ध ब्राह्मण वीर जिनसे कौरवों और पांडवोंने शस्त्रा-स्त्रकी शिक्षा पाई थी। 'द्रोण' नाम होनेका एक कारण यह है कि हरि-द्वारके पास भरद्वाज नामक एक ऋषि घृताची अप्सराको नंगी देख कामार्त हुए और उनका वीर्य पात हो गया जिसे उन्होंने द्रोण नामक यज्ञपात्रमें रख छोड़ा। उसीसे ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने परशुरामजीसे अस्त्रशस्त्रकी शिक्षा पाई थी। द्रुपद राजा पृषत्‌का (जो भरद्वाजके सखा थे।) पुत्र द्रोणके साथ खेला करता था। एक बार बालक द्रुपदका राज्य भीलोंने छीन लिया। द्रोणाचार्यने भीलोंको जीतकर राज्य इनको दे दिया। उस समय द्रुपद आधा राज्य द्रोणको देने लगा किन्तु उस समय द्रोणने राज्य न लिया। थातीवत् राजा द्रुपदकोही समर्पित करके वे वनमें चले गये। कुछ कालके बाद अपने पुत्र अश्वत्थामाकेलिये वे द्रुपदके पास गाय माँगने आये

और मित्र कहकर संबोधन किया। इस पर उसने इनका अपमान किया। तब ये हस्तिनापुर आकर अपने साले कृपाचार्यके यहां ठहरे। एक दिन युधिष्ठिरादिका गेंद कुएँमें गिरा जिसे वे निकालनेमें असफल हुए। उसी समय द्रोणाचार्यजी दैवयोगसे वहाँ पहुचे और उन्होंने (सींकके) बाणोंसे मारमारकर वह बाहर कर दिया। भीष्मजीने यह समाचार पाकर श्रीद्रोणाचार्यजीको शस्त्रास्त्रशिक्षाका गुरू नियुक्त कर दिया। गुरुदक्षिणामें "द्रुपदको बाँधकर पकड़ लाओ" यही उन्होंने माँगा। अर्जुन द्रुपदको जीतकर बाँध लाये और उसे गुरुके सामने खड़ा कर दिया। लज्जित और मानमर्दित होनेसे द्रुपदने इनके मारनेवाले पुत्रकी कामनासे पुत्रेष्टि यज्ञ किया जिससे द्रौपदी और धृष्टद्युम्न पैदा हुए। अश्वत्थामा मारा गया यह सुनतेही द्रोणाचार्यने ब्रह्माण्डमें प्राण चढ़ाये। उसी समय धृष्टद्युम्नने उनका सिर काट लिया। महाभारतमें इनके संबंधमें यह श्लोक कहा गया है। "**मुखाग्रे यस्य वै वेदाः कराग्रे वै धनुश्शराः। उभयो द्रोण सामर्थं शापादपि शरादपि ॥**" द्रोणाचार्यजीकी जिह्वापर सब वेद थे और हाथोंमें धनुष बाण। वे शाप और शर दोनोंहीमें समर्थ थे। कालदृक = कालदृष्टि, मृत्यु वा यमराजकीसी दृष्टिवाली। 'दृग्' शब्द समस्त होनेपर 'दृक्' हो जाता है। सुयोधन = दुर्योधन। गोस्वामीजीने दुर्योधनके बदले 'सुयोधन' नामकाही प्रयोग किया है। दोनोंका अर्थ एकही है। यह धृतराष्ट्रका सबसे बड़ा पुत्र और राजा था। चमू=सेना। नियत संख्याकी सेना जिसमें ७२९ हाथी, ७२९ रथ, २१८७ सस्वार और ३६४५ पैदल होते थे। निधन=नाश।

पद्यार्थ—हे पवनपुत्रजी ! आपकी जय हो। आपका पराक्रम प्रसिद्ध है। आपकी बड़ी बड़ी भुजाएँ हैं। भारी बल है और विशाल पूँछ है। सुमेरु-पर्वताकार शरीर है। बिजलीके ज्वालासमूहके समान शरीरके रोम शोभित हैं। १। बाल सूर्यके (उदयकालीन) समान सुन्दर (लाल) मुख, पीले नेत्र, पीलीभूरी कड़ी जटाओंका जूड़ा धारण करनेवाले, टेढ़ी भौंहें और वज्रसमान दाँतों और नखोंवाले, शत्रुरूपी मदोन्मत्त हस्तिसमूहकेलिये सिंहरूप, आपकी जय हो। २। भीमसेन, अर्जुन और गरुड़के गर्वको हरनेवाले, अर्जुन के रथ की रक्षा के लिये [रथ पर की] ध्वजा अर्थात् रथ की पताका पर बैठकर रथ की रक्षा करनेवाले, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और कर्ण आदि द्वारा सुरक्षित काल समान दृष्टि वाली दुर्योधन की सेना नाश के कारण स्वरूप [श्रीहनुमान् जी] ! आप की जय हो ॥३॥

टिप्पणी—१ (क) 'जयति वातसंजात बिख्यात बिक्रम' इति । इस पदमें पिताका नाम 'वात' अर्थात पवन बताया। वातजात हैं अतः इनमें पवन समान बल और पराक्रम है, यह जनाया। यथा, 'पवनतनयबल पवन समाना। बुधि बिवेक बिग्यान निधाना।' (कि०) पवनदेव शीघ्रगामि, समस्त प्राणियोंके प्राण, सर्वगत, जादू टोणा आदिके नाशक, इत्यादि गुणसंपन्न हैं। वैसाही पराक्रम आदि श्री हनुमान्जीका है। यह 'वातसंजात' से सूचित किया। (ख) बृहद्बाहु अर्थात् आजानबाहु। घुटनेतक लंबी लंबी भुजाओंवाले। (ग) 'बल बिपुल' इति। बाहुकमें कहा है कि आपके बलके संबंधमें त्रिदेवादि अचंभेमें पड़ गये और सोचने लगे कि यह बल है कि वीररस है कि धीरज है कि साहस है या कि वीररस, धैर्य और साहस सभीका सारही है। यथा, "पाछिले पगनि गम गगन मगन मन क्रम को न भ्रम कपिबालक बिहार सो। कौतुक बिलोकि लोकपाल हरिहरबिधि लोचननि चकाचौंधि चितनि खँभार सो॥ बल कैधौं बीररस धीरज कै साहस कै तुलसी सरीर धरे सबनि को सार सो।", "कह्यो द्रोण भीषम समीरसुत महाबीर बीररस बारिनिधि जाको बल जल भो।", "भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान सरीखो त्रिकाल न तिलोक महाबल भो।" पद ३१ 'सकल सुभट सिरमोर' मेंभी देखिये। (घ) 'बालधि बिसाला' इति। बिशालताका अनुमान इससे कर लें कि बड़े बड़े राक्षसोंको उसमें लपेटकर पटक देते थे। कहीं ऐसीभी कथा है कि जब ये दूत बनकर रावणके समीप गये थे तब रावणको ऊँचे सिंहासन-पर विराजमान देख इन्होंने अपने पूँछकी पिंडली ऐसी बनायी कि उतनीही ऊँचाईतक पहुँच गयी। उसीपर आप बैठ गये। भीमसेनके गर्वहरणकी कथामें पूँछकी विशालता और बलका प्रसंग आया है। 'बल बिपुल' दीपदे-हलीन्यायसे 'बाहु' और 'बालधि' दोनोंके साथ है। भुजाओं और पूँछ दोनोंमें असीम बल है। (ङ) 'जातरूपाचलाकार बिग्रह' इति। सुमेरुपर्वतके समान कनकवर्ण, तेजोमय और विशाल शरीर है। यथा, 'कनकबरन तनु तेज बिराजा। मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा॥' (कि०) इससे संग्राममें

शत्रुको भयभीत करनेवाला महाबलिष्ठ शरीर जनाया। यथा, 'कनकभूधराकार सरीरा। समर भयंकर अति बल बीरा ॥' (सुं०) (च) 'लसल्लोम विद्युल्लता ज्वालमाला' इति। शरीरमें अगणित रोम होते हैं। इसीसे ज्वालमाला कहा। अर्थात् रोमरोम ऐसा प्रकाशमान है मानों बिजलीसमूहकी ज्वालासमूह हो। ऐसा क्यों न हो? क्योंकि आपके तो रोमरोममें सबका परम प्रकाशक 'राम नाम रमणीय' विराजमान है। यहां वाचकलुप्ता अलंकार है।

२ (क) 'जटाजूटधारी' कहकर ब्रह्मचारी जनाया। बाबू शिवप्रकाशजी लिखते हैं कि, "वानरस्वरूपवर्णनमें जटा कहना असंगत है। पर शिवरूप होनेसे दोष नहीं है।" समाधान योंभी कर सकते हैं कि जब जैसा चाहें वैसा रूप बना सकते हैं।

देवदत्त शर्माजीका मत है कि 'जटा' शब्दको लेकर ब्रह्मचारी कहना या बहुरूपिया कहना दोनों असंगत है। जटाके अनेक पर्यायी हैं, जिनमें एक अर्थ 'कपिकच्छ' भी होता है। पर दासकी समझमें 'जटाजूट' अनेक स्थलोंमें जटाओंके जूड़ेके अर्थमेंही ग्रंथकारने प्रयुक्त किया है। वही अर्थ यहाँभी है।

(ख) 'वैरि मद मत्त कुंजरपुंज कुंजरारी' इति। 'मद मत्त' दीपदेहली है। रावणादि बलके मदसे मतवाले थे। यथा, 'रन मद मत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा।' (रावण), 'जेहि कहं नहिं प्रतिभट जगजाता।' (कुंभकर्ण), 'भट महं प्रथम लीक जग जासू' (मेघनाद), 'एक एक जग जीत सक ऐसे सुभट निकाय' (सुभट)। हाथीभी मदसे मतवाले हो जाते हैं। इसीसे सबको 'मद मत्त कुंजर' कहा। रावणादि बहुत हैं इसीसे 'कुंजरपुंज' कहा। यहां परंपरितरूपक अलंकार है। यहांतक वीर विक्रम स्वरूपका वर्णन हुआ।

३ 'भीमार्जुनव्यालसूदनगर्वहर' इति। भीमसेनके गर्व हरणकी कथा महाभारत वनपर्वमें इस प्रकार है। द्रौपदीजीका प्रिय करनेकेलिये भीमसेन सौगंधिकनामवाले सहस्त्रदल कमलोंके लानेकेलिये बद्रिकाश्रमसे ईशानकोणकी ओर गये। गंधमादनपर्वतपर कई योजन लंबा चौड़ा एक केलेका

वन उनको मिला। गर्जना करते हुए वे उसके भीतर घुस गये। इसीमें हनुमान्‌जी रहते थे। उनको भीमके आनेका पता लग गया था। अतः वे कदली वनसे होकर स्वर्गको जानेवाले सैंकड़े मार्गको रोककर एक मोटी शिलापर लेट गये। वहाँ लेटे लेटे जँभई लेते हुए जब वे अपनी पूँछ फटकारते थे तो उसकी प्रतिध्वनी सब ओर फैल जाती थी। इससे वह महापर्वत डगमगाने लगता था। उस शब्दको सुनकर भीमसेनके रोएँ खड़े हो जाते थे। ढूँढ़ते ढूँढ़ते वे वहांतक पहुँचे। हनुमान्‌जीको अकेले देख वे उनके पास चले गये। हनुमान्‌जीने उपेक्षापूर्वक उनकी ओर देखा और मुसकराते हुए कहा, "मैं रोगी हूँ, यहां आनंदसे सो रहा था, तुमने मुझे क्यों जगा दिया? तुम्हें जीवोंपर दया करनी चाहिये। तुम्हारी प्रवृत्ति क्रूर कर्मोंमें क्यों होती है? माल्रूम होता है तुमने विद्वानोंकी सेवा नहीं की। तुम हो कौन और यहां क्यों आये हो? आगे यह पर्वत अगम्य है। तुम यहींसे लौट जाओ।" भीमसेनके अपना परिचय देनेपर हनुमान्‌जीने कहा कि "मैं तो बंदर हूँ। तुम्हें इधर होकर नहीं जाने दूँगा। यहींसे लौट जाओ, नहीं तो मारे जाओगे।" भीमसेन बोले, "तुम्हारी बलासे मैं मरूँ या जिऊँ। मैं तुमसे इस विषयमें तो कुछ पूछता नहीं। तुम ज़रा उठकर मुझे रास्ता दे दो।" हनुमान्‌जी बोले, "मैं रोगसे पीड़ित हूँ। यदि तुम्हें जानाही है तो मुझे लाँघकर चले जाओ।" भीमसेन बोले कि "भगवान् सब शरीरोंमें व्याप्त हैं। इसलिये मैं लाँघकर उनका अपमान नहीं करूँगा। यदि मुझे यह ज्ञान न होता तो मैं तुम्हें क्या, इस पर्वतकोभी लाँघ जाता; जैसे हनुमान्‌जी समुद्रको लाँघ गये थे। मैंभी बल, पराक्रम और तेजमें उन्हींके समान हूँ। इसलिये तुम खड़े हो जाओ और मुझे रास्ता दे दो। यदि मेरी आज्ञा नहीं मानते तो मैं तुम्हें यमपुरीमें भेज दूंगा।" हनुमान्‌जी बोले कि बुढ़ापेके कारण मुझमें उठनेकी शक्ति नहीं है। इसलिये कृपा करके मेरी पूँछ हटाकर निकल जाओ। यह सुनकर भीमसेन अवज्ञापूर्वक हँसकर अपने बाएँ हाथसे पूँछ उठाने लगे, किन्तु वह टससेमस न हुई। तब उन्होंने दोनों हाथ लगाये। फिरभी उसके

उठानेमें असमर्थ रहे। तब उन्होंने लज्जासे सिर नीचा कर लिया और दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम कर अपने कटु बचनोंकेलिये क्षमाप्रार्थी हुए और कहा कि कृपा करके आप अपना परिचय दीजिये कि वानरशरीरधारी आप कौन हैं? श्रीहनुमान्‌जीका परिचय पानेपर भीमसेनने प्रार्थना की कि, "हे वीरवर! समुद्रोल्लंघन समयके आपके अनुपम रूपका मैं दर्शन करना चाहता हूँ।" हनुमान्‌जीने कहा कि 'उस रूपके देखनेको तुम समर्थ नहीं हो। कोईभी उसे देख नहीं सकता। दूसरे युग युगके अनुसार बल विक्रम घटता बढ़ता रहता है। व्यर्थ आग्रह न करो।'

भीमसेनका हठ देखकर हनुमानजीने अपना रूप बढ़ाया। वह विशाल विग्रह देखकर भीमसेन विस्मित हो गये। उनके रोंगटे खड़े हो गये। वह विग्रह तेजमें सूर्यके समान था और सोनेका पर्वतही जान पड़ता था। उसकी विशालताका क्या वर्णन किया जाय? मानों देदीप्यमान आकाशही हो। उसे देखतेही भीमसेनने आँखें बंद कर लीं। भयानक विशाल देहको देखकर वे डर गये और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि "अब आप इस अपने स्वरूपको समेट लीजिये। आप मनाकपर्वतके समान अपरिमित और दुराधर्ष जान पड़ते हैं। मैं आपकी ओर देख नहीं सकता।"

भीमसेनकी निर्भयताकी एक कथा जैमिनि भारतमें यह बतायी जाती है कि एकबार दुर्योधनने दुर्वासाको बहुत प्रसन्न किया। वर माँगनेमें यह माँगा कि हमारे भाई वनमें रहते हैं। उनपर कृपा करके उनको किसी दिन दर्शन और साधुसेवाका सुख दीजिये। मैं एक आमकी गुठली देता हूँ, यह उन्हें देकर कहियेगा कि यह आजही लगाया जाय, आजही वृक्ष हो, इसीके फल हम पावेंगे। हाँ, यहभी कहियेगा कि भूमिपर लगाया न जाय। वे गुठली लेकर गये। युधिष्ठिरने आतिथ्य स्वीकार किया, यह सोचकर कि न स्वीकार करेंगे तो ये शाप दे देंगे। दुर्वासा स्नानको गये और इन्होंने सोचा कि हम सब जलकर भस्म हो जायँ; शापसे भस्म न हों। द्रौपदीने ढाढस दिया कि क्यों मरते हो? क्या कृष्ण कहीं गये हैं?

सबने अपने अपने सुकृतोंका बल लगाकर पेड़ सफल तैयार किया। भीमने यह सुकृत बल लगाया था कि 'यदि आजतक हमको कभी किसीभी वीरकी शंका न हुई हो और कभी हमारा पेट न भरा हो तो इसमें अंकुर लग जाय'। इस प्रतिज्ञासे स्पष्ट है कि वे कैसे वीर थे। पर वेभी हनुमान्‌जीकी पूँछ न उठा सके।

श्रीरामायणाङ्कमें श्रीयुत् रामचंद्र शंकरजी टक्की महाराजने 'भीम-गर्वगंजन' की कथा इस प्रकार दी है। "कथा है कि एकबार छोटे बड़े अनेक ऋषि रत्नकी थालियोंमें देवदुर्लभ षट्रस भोजन कर रहे थे। उस समय भीमने ब्राह्मणोंसे इस प्रकार कठोर बचन कहे, 'हे ब्राह्मणो! देखिये, पात्रमें आप कुछभी उच्छिष्ठ न छोड़ सकेंगे। यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं उसे आपकी चोटियोंमें बाँध दूँगा। जितना आपके पेटमें अटे उतना माँग लें। थालीमें अधिक लेकर छोड़ देना ठीक नहीं होगा। मेरा स्वभाव आप लोग अच्छी तरह जानतेही हैं।' भीमके डरसे वे अत्यल्प आहार करने लगे, जिससे वे बिचारे दुर्बल हो गये। यह बात श्रीहरि ताड़ गये और भीमसे बोले, 'तुम शीघ्र जाकर गन्धमादनसे ऋषियोंको बुला लाओ। उनकी बड़ी आवश्यकता है। भीमके मनमें अपने बलका बड़ा गर्व था। अत: वे तेज़ीसे ऋषियोंको लाने चले। मार्गमें वृद्ध वानरके वेशमें महान् पर्वतकी तरह अपनी पूँछ मार्गमें अड़ाकर हनुमान्‌जी बैठे थे। भीमने उनसे गर्जकर कहा, 'रे वानर! रास्तेसे पूँछ हटा।' शेषकथा प्राय: महाभारतकीसीही है।

४ अर्जुनके गर्वहरणके संबन्धमेंभी भिन्न भिन्न कथाएँ सुनी जाती हैं। दो एक यहाँ दी जाती हैं। इनको अपनी बाण विद्याका, अप्रतिम धन्वी होनेका भारी अभिमान था।

एक कथा यह है कि अर्जुनने एक बार बातही बातमें श्रीकृष्णजीसे कहा कि 'तुमने रामावतारमें समुद्रपर पुल बाँधनेकेलिये इतना आयोजन क्यों किया? बाणोंसे पुल बाँध देते! बेचारे वानरोंको झूठमूठ परेशान क्यों किया?' भगवान् हँसकर बोले, 'अच्छा, तुम बाणोंसे समुद्रके एक छोटेसे अंशपर पुल बाँधो। मैं तुम्हें बताता हूँ।' अर्जुनने आनन फ़ानन

पुल बाँध दिया। भगवान्‌ने हनुमान्‌जीका स्मरण किया। वे तुरंत पहुँचे और भगवान्‌की आज्ञासे वे बाणोंके उस पुलपर चढ़े। उनके चढ़तेही वह पुल चरचराकर टूटने लगा। तब वे उसपरसे उतर आये। अर्जुनने देखा कि भगवान्‌की पीठपर खून लगा हुआ है। पूछनेपर मालूम हुआ कि यदि भगवान् अपनी पीठ लगाकर उस पुलको न रोक रखते तो वह हनुमान्‌जीको लिये हुए धँस जाता और अर्जुनकी बड़ी हँसी होती। भगवान्‌ने कहा कि वहाँ ऐसे ऐसे अनेकों वानर थे। वे बाणके पुलपरसे कैसे जाते ? इस तरह अर्जुनका गर्व भंग हो गया।

अर्जुनने भगवान्‌की आज्ञासे हनुमान्‌जीकी बड़ी आराधना की। उनके मंत्रोंके पुरश्चरण किये।* हनुमान्‌जीने वर दिया कि, 'मैं सर्वदा

---

* वह मंत्र यह है। "**ॐ हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुँ फट्।**" नदी-तीरपर, भगवान्‌के मंदिरमें, निर्जन स्थानमें अथवा किसी पर्वतपर एकाग्रचित्तसे श्रीहनुमान्‌जीका ध्यान करते हुए एक लक्ष मंत्रका जप करना चाहिये। ध्यान यह है, "**महाशैलं समुत्पाट्य धावंतं रावणं प्रति। तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट घोर रावं समुत्सृजन्। लाक्षारसारुणं रौद्रं कालांतक यमोपमम्। ज्वलदग्नि लसन्नेत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥ अंगदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्। एवं रूपं हनूमंतं ध्यात्वा यः प्रजपेन्मनुम्॥ लक्षजपात् प्रसन्नः स्यात् सत्यं ते कथितं मया॥**"

विधि—कुशासनपर बैठकर प्राणायाम, अंगन्यास करे। पुनः '**ॐ रां रामाय नमः**' इस मंत्रद्वारा आठ पुष्पांजलि सीतासहित भगवान् श्रीरामको समर्पित करे और फिर '**ॐ हं हनुमते**' उक्तमंत्र द्वारा आठ पुष्पांजलि हनुमान्‌जीको समर्पित कर ताम्रपत्रपर इसी मूलमंत्रको अष्टदल-कमलकी कर्णिकापर लिखकर हनुमान्‌जीका आवाहन पूजन करे। अष्टदल कमलके प्रत्येक दलोंपर पूर्वसे लेकर ईशानकोणतक क्रमसे सुग्रीव, लक्ष्मण, अंगद, नल, नील, जाम्बवान्, कुमुद और केशरीकी पूजा करे। कमलके दाहिनी और बाँयी ओर पवन और माता अंजनीकी पूजा करे। दलोंके अग्र भागमें वानरोंको पुष्पांजलि दे। तदनन्तर जप करे।

तुम्हारी सहायता करूंगा और भावी युद्धमें तुम्हारे रथपर बैठकर तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

दूसरी कथा यह है कि अर्जुन कर्ण युद्धमें कर्णके बाणोंसे अर्जुनका रथ जब जब कुछ पीछे हट जाता था तब तब भगवान् कृष्ण कर्णकी 'वाह वाह' कहकर भूरि भूरि प्रशंसा करते थे। शत्रुकी प्रशंसा अर्जुनसे सही न गयी। वे बोलही उठे कि, 'मेरे बाणोंसे तो कर्णका रथ बहुत पीछे हट जाता है। पर आपने मेरी प्रशंसा कभी न की और शत्रुके बाणोंसे मेरा रथ ज़रासाही हठ जानेपर आप उसकी बारंबार भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। यह क्या बात है?' भगवान्ने कहा, "अर्जुन! देखिये, तुम्हारे रथकी पताकापर हनुमान्जी बैठे हुए हैं। इनके बोझसे तुम्हारा रथ टिका हुआ है। नहीं तो कर्णके बाणोंसे यह न जाने उड़कर कहां जाता! हनुमान्जीके रथपर बैठे रहनेपरभी रथका पीछे हट जाना कर्णकी बहुत बड़ी वीरताका द्योतक है।" कहा जाता है कि भगवान्ने हनुमान्जीको एक बार रथपरसे ज़रा हट जानेका इशारा किया। वे हट गये। हटतेही इनका रथ कर्णके बाणसे बहुत दूर जा गिरा। भगवान् बोले कि जान पड़ता है कि हनुमान्जी रथसे कहीं चले गये हैं। देखते हैं तो सचमुच हनुमान्जी वानरी स्वभावसे एक छलाँग मारकर ज़रा ऊपरको उड़ गये थे। यह देखकर अर्जुनका गर्व जाता रहा।

आनंदरामायण मनोहरकांड सर्ग १८ में विष्णुदासके पूछनेपर कि 'अर्जुनका यह नाम क्यों पड़ा?' श्रीरामदासजीने यह कथा कही है कि एक बार अर्जुन अकेलेही रथपर चढ़कर शिकार खेलते हुए दक्षिण समुद्रपर पहुँच गये। वहां धनुषकोटितीर्थपर स्नान करके मध्याह्नकी क्रिया कर फिर रथपर बैठकर कुछ गर्वमें भरे हुए समुद्रतटपर घूमने लगे। इसी बीचमें वनमें पर्वतके ऊपर सामान्य वानरके रूपमें हनुमान्जीको

अन्तिम दिन महापूजा करनी चाहिये। यह साधन परम पवित्र है। साधकको पवित्र होकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके यह करना चाहिये। दर्शन होनेपर दृढ़ता धारण करे। आचरणमें त्रुटि होनेसे प्राणभयभी है।

राम राम कहते हुए देखकर पूछा कि 'हे कपि। तुम्हारा क्या नाम है?' हनुमान्‌जीने हँसकर कहा कि जिसकी सहायतासे श्रीरामजीने समुद्रमें सौ योजनतक पत्थरोंसे पुल बाँध दिया मैं वही वायुपुत्र हूँ। हनुमान्‌जीकी यह गर्वोक्ति सुनकर अर्जुनभी गर्वसे हँसकर बोल उठे कि 'रामने सेतु बाँधनेमें व्यर्थ परिश्रम किया। उन्होंने बाणसेही क्यों न पुल बाँध लिया?' इसपर हनुमान्‌जीने कहा कि 'मेरे सरीखे वानरोंके भारसे बाणका सेतु समुद्रमें डूब जाता, यही विचार कर श्रीरामचंद्रजीने समुद्रपर बाणसे पुल नहीं बाँधा।' यह सुनकर अर्जुनने कहा कि 'यदि वानरोंके भारसेही सेतु डूब जाय तो उस धनुर्धारीकी धनुर्विद्याही क्या? मैं अभी तुम्हारे सामनेही बाणोंका पुल बाँधे देता हूँ। तुम उसपर जी भरके उछलो, कूदो। आज मेरी धनुर्विद्याको देखो।' हनुमान्‌जी बोले कि 'यदि मेरे पैरके अंगूठेके भारसेही तुम्हारा सेतु जलमें डूब जाय तो तुम क्या हारते हो?' अर्जुनने कहा, 'यदि तुम्हारे भारसे मेरा बाणोंका सेतु डूब जाय तो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगा। यदि न टूटा तो तुम क्या हारते हो।' हनुमान्‌जीने कहा कि 'यदि मेरे अंगुष्ठ भारसे तुम्हारा सेतु न टूट जाय तो मैं तुम्हारी ध्वजापर रहकर तुम्हारी सहायता किया करूंगा।' अर्जुनने 'तथास्तु' कहकर अपने महान् धनुषका टङ्कार किया और क्षणमात्रमें समुद्रके ऊपर सौ योजन विस्तारवाला बड़ा दृढ़तर और सघन पुल बाँध दिया। उसे देखकर हनुमान्‌जीने अपने अंगूठेकी नोकसे उसको लीलापूर्वक दबा दिया जिससे वह क्षणमात्रमें समुद्रमें डूब गया। उसी क्षण आकाशसे देवता, गंधर्व, किन्नर, उरग, राक्षस, विद्याधर, अप्सराएँ और सिद्ध आदि हनुमान्‌जीके ऊपर पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। अर्जुन उसी समय चिता बनाकर, हनुमान्‌जीके रोकनेपरभी देह छोड़नेको तैयार हो गये। उसी समय भगवान् कृष्ण बटुरूपमें आकर उपस्थित हो गये और अर्जुनके मुखसे दोनोंकी प्रतिज्ञाएँ सुनकर बोले कि बिना साक्षीके तुम दोनोंका कर्म व्यर्थ गया। अब मैं साक्षी हूं। मेरे सामने अपना अपना करतब दिखाओ। तब मैं जानू कि कौन सच्चा है, कौन झूठा? तब अर्जुनने फिर वैसाही बाणोंका सेतु बाँध

दिया। उसी समय श्रीकृष्णजीने अपने चक्रको सेतुके नीचे रख दिया। हनुमान्‌ने अपने अंगुष्ठके भारसे सेतुको दबाया। पर अबकी बार सेतुको दृढ़ देखकर उन्होंने उसे फिर अपने पैर, घुटने और हाथके संपूर्ण बलसे दबाया। परन्तु सेतु हिलाभी नहीं। तब हनुमान्‌जी चुपचाप होकर मनमें विचार करने लगे कि पहले तो यह सेतु मेरे अंगूठेके भारसेही डूब गया था और इस समय हाथपैरके संपूर्ण भार लगानेपरभी क्यों नहीं चलायमान् होता है ? इसका कारण यह बटुही मालूम होता है। यह बटु नहीं है। स्वयं भगवान्‌ही हैं। अब मुझे पूर्वका बरदान याद पड़ता है। मेरे गर्वको हरण करनेलियेही भगवान्‌ने यह कर्म किया है। भला भगवान्‌के सामने मुझ वानरका पुरुषार्थ कितना ? ऐसा विचार कर वे अर्जुनसे बोले कि “ इस बटुकी सहायतासे तुमने मुझे जित लिया है। यह बटु नहीं है, स्वयं श्रीकृष्ण हैं जिन्होंने तुम्हारी सहायताके-लिये रूप धारण कर चक्रको सेतुके नीचे रख दिया है। इन्होंने त्रेतामें रामरूपसे मुझे बरदान दिया था कि द्वापरमें तुम्हें मैं कृष्णरूपसे दर्शन दूँगा। उसी वचनको आज उन्होंने सेतुके बहाने यहाँ आकर पूरा किया।” इतना कहतेही बटुने कृष्णरूप धाकर कर हनुमान्‌जीको आलिंगन दिया और साथही वह सेतुभी जलमें डुबा दिया। तब अर्जुनका गर्व टूट गया और वे समझ गये कि हमारे प्राणोंकी रक्षा श्रीकृष्णहीने की। उन्होंने हमें जीवनदान दिया। श्रीकृष्णजी अर्जुनसे बोले कि तुमने श्रीरामजीकी स्पर्द्धा की, इसीसे हनुमान्‌द्वारा तुम्हारी धनुर्विद्या व्यर्थ की गयी और हनुमान्‌जीसे कहा कि तुमने अपने प्रतापसे श्रीरामजीकी स्पर्द्धा की। इसलिये अर्जुनके सेतुद्वारा तुम्हारा पराजय कराया गया। अब तुम दोनों गर्वरहित होकर निरन्तर मेरा भजन करो। इसके बाद तीनोंने अपनी अपनी राह ली। तभीसे अर्जुनकी ध्वजापर हनुमान्‌जी रहकर उनकी रक्षा करने लगे।

यह कथा आनंदरामायणकी है। गोस्वामीजीके बाहुकके ‘ **कमठकी पीठि जाके गोड़निके गाड़े मानो नापके भाजनभरि जलनिधि जल भो। जातुधानदावन परावनको दुर्ग भयो महामीन बास**

तिमि तोमनि को थल भो ॥' इस छन्दसे ज्ञात होता है कि इसकी कथा आनंदरामायणकी कथासे कुछ भिन्न है और कहीं किसी पुराणमें अवश्य है। इस छन्दसे यह अनुमान होता है कि भगवान् दोनोंकी प्रतिज्ञा रखनेकेलिये कमठ रूपसे बाणोंके सेतुके नीचे स्वयं विराजमान हुए थे। हनुमान्‌जीके पुलको पैरके अँगूठेसे दबानेपर कच्छप भगवान्‌के कठोर पीठपर बड़ा भारी गड्ढा पड़ गया था और रक्त इतना निकला था कि समुद्रका जल लाल हो गया था। हनुमान्‌जी यह देखकर उतर पड़े थे। भगवान् प्रकट हो गये थे।

५ 'ब्यालसूदन (गरुड़) गर्वहर' इति। गरुड़गर्वहरणकीभी कथाएँ कल्पभेदसे कई प्रकारकी कही जाती हैं। दो एक कथाएँ यहाँ दी जाती हैं। श्रीयुत् रामचन्द्र शंकरजी टक्कीमहाराज लिखते हैं कि गरुड़को अपने परम पराक्रमी होनेका महान् गर्व था। यह जानकर भगवान्‌ने उनको आज्ञा दी कि "शीघ्र जाकर बंदरको पकड़ ले आओ। (जो द्वारकाके वनको उजाड़ रहा था।) तुम बड़े पुरुषार्थी हो। त्रैलोक्यमें तुम्हारे समान कोई नहीं है। अकेलेही जाओगे या कुछ सेनाभी ले जाओगे?" ये वचन सुनकर गरुड़ बड़े आवेशमें आकर बोले, 'मैं तो गिरते हुए आकाशकोभी अपने बलसे धारण कर सकता हूँ। मुझे यही आश्चर्य है कि आप मुझे एक साधारण बंदर पकड़नेकेलिये न जाने क्यों भेज रहे हैं?' अच्छा, मैं अभी उसे पकड़े लाता हूँ। यह कहकर वे शीघ्र वनमें पहुँचे और वहां बंदरको (हनुमान्‌जी) अपनी ओर पीठ किये बैठे कौतुकसे फल खाते और रामनामका कीर्तन करते देख बोले, 'रे बंदर! तूने सारा वन नष्ट कर डाला, सारे बनचरोंको भगा दिया और सब फलभी खा डाले। तू बड़ा अन्यायी है। मैं तुझे दंड दूँगा।' हनुमान्‌जीने मुस्कराकर पूछा कि तुम कौन हो, तुम्हारा क्या नाम है और तुमको किसने भेजा है? तब गरुड़ने अपनेको कश्यपपुत्र, श्रीहरिदूत पक्षिराज गरुड़ बताया और कहा कि 'मैंने समस्त देवताओंको परास्त कर अपने पुरुषार्थसे अमृत प्राप्त किया। मेरे भयसे नागराज पृथ्वीके नीचे जा छिपे हैं।' इसपर हनुमान्‌जीने कहा कि 'जो अपने मुँह अपनी प्रशंसा करता

है वह सैकड़ों मूर्खोंसेभी अज्ञानी हैं। अपनी प्रशंसा करनेवाला वस्तुतः वैसा नहीं होता। ' क्रोधमें आकर गरुड़ने कहा कि ' रे बंदर, मालूम होता है कि तू अब मरणहार है। इसीसे मरते समय तेरी तूती बोलने लगी है। हनुमान्‌जीनेभी वैसाही उत्तर दिया। तब गरुड़ सहसा आकाशमें उड़कर गरजकर एकदमसे हनुमान्‌जीपर टूट पड़े और उन्हें चोंचसे मारने लगे। परन्तु हनुमान्‌जीको उनकी चोटें और उनका भार ऐसा मालूम होता था जैसे पर्वतपर भ्रमरका, बड़े पेड़पर मक्खीका या हाथीके कंधेपर च्यूँटीका भार हो। क्षणभर यह लीला करके हनुमान्‌जीने गरुड़को पैरोंमें दबा कर गर्दन पकड़कर उठाया (जिससे गरुड़ घबड़ा गये, उनकी आँखें निकलने लगीं।) और द्वारकासे साठ हज़ार योजनपर समुद्रमें फेंक दिया जहाँ वे छटपटाकर डूबने लगे। किसी तरह वे ऊपर आये। उन्हें दिशाका भ्रम हो गया। वे इतने भयभीत हो गये कि वे यह सोचकर कि यदि मैं उस वनकी ओरसे जाऊँगा तो वह वानर मुझे फिर पकड़ लेगा, दूसरे मार्गसे द्वारकाके महाद्वारपर पहुँचतेही मूर्छित हो गये। (रामायणांक)

गीताप्रेसके ' आदर्श चरित माला ' के प्रथम पुष्पमें ' भक्तराज हनुमान् ' में जिसके लेखक ' शान्तनुविहारी द्विवेदीजी ' हैं, यही चरित कुछ परिवर्तित रूपमें ' सत्यभामा, चक्र और गरुड़ ' गर्वहरणके संबंधमें लिखा हुआ मिलता है। वे लिखते हैं कि हनुमान्‌जीने गरुड़को अपनी पूँछमें लपेटकर तनिकसा कस दिया। वे छटपटाने लगे। तब उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका नाम बताकर कहा कि उनकी आज्ञासे मैं आया हूँ। उन्होंने तुम्हें बुलाया है। हनुमान्‌जीने गरुड़को छोड़कर कहा कि मैं सीतानाथ श्रीरामका उपासक हूँ। मैं श्रीकृष्णके पास क्यों जाऊँ ? ऐसा कहकर मानों उन्होंने भगवान्‌की लीलामें सहयोग दिया।

अभी गरुड़का गर्व टूटा नहीं था। वे सोचते थे कि अगर मैं पकड़ न गया होता तो हनुमान्‌को बलात् ले चल सकता। उन्होंने दुबारा आक्रमण किया। अभिमान अंधा बना देता है। श्रीकृष्णका दूत

समझकर हनुमान्‌जीने उनपर ज़ोरसे आघात नहीं किया पर हल्के हाथसे पकड़ समुद्रकी ओर फेंक दिया। वे श्रीकृष्णके पास आये। सब बात सुनकर श्रीकृष्ण बहुत हँसे। अभी गरुड़के मनमें तेज़ीसे उड़नेका गर्व बाकीही था। वे सोचते थे कि 'उड़नेमें मेरा मुकाबिला वायुभी नहीं कर सकता। भलेही हनुमान् बलमें मुझसे बड़े हों।' भगवान्‌ने उनको फिर भेजा और कहा कि 'इस बार जाकर कहो कि तुम्हारे इष्टदेव भगवान् श्रीराम तुम्हें बुला रहे हैं। शीघ्रही चलो। उन्हें अपने साथही ले आना। अब वे तुम्हें कुछ न कहेंगे, तुम्हारा बड़ा आदर करेंगे।' गरुड़ने जाकर संदेसा कहकर यह भी कहा कि 'यदि मेरे साथही आप चल सकें तो चलें, नहीं तो मेरे कंधोंपर बैठ लें। मैं लेता चलूं।' हनुमान्‌जीने कहा, 'तुम चलो, मैं आता हूँ।' गरुड़को अपने वेगका गर्व तो बहुत था, पर हनुमान्‌जीकी बात काटनेका साहस डरके मारे उनको न हुआ। वे चले गये।

इधर भगवान्‌ने चक्रको फाटकपर पहरा देनेको आज्ञा दी जिसमें कोई भीतर न आ सके। हनुमान्‌जी गरुड़से बहुत पहले द्वारकामें पहुँच गये। उनकी दृष्टिमें वह द्वारका न थी, अयोध्या थी। फाटकपर चक्रने उन्हें जानेसे रोका। तब हनुमान्‌जीने यह कहते हुए कि 'तू भगवान्‌के दर्शनमें विघ्न डालता है, उसे पकड़ कर मुँहमें डाल लिया और जाकर भगवान्‌के दर्शन किये। गरुड़जी बहुत पीछे पहुँचे तो देखते क्या हैं कि हनुमान्‌जी पहलेसेही उपस्थित हैं। इस तरह गरुड़का गर्व नष्ट कर भगवान्‌ने हनुमान्‌जीको द्वारकाके पूर्वद्वारपर पुरीकी रक्षाकेलिये नियुक्त कर दिया।

इस कथामें यह बताया गया है कि गरुड़को यह गर्व हुआ था कि श्रीकृष्णने मेरीही सहायतासे स्वर्गसे पारिजातका हरण किया और इंद्रपर विजय प्राप्त की।'

६ 'धनंजय रथ त्रान केतू' इति। इसके भाव भीम और अर्जुनकी कथाओंमें आ गये हैं। श्रीहनुमान्‌जी भीमकी गर्जनमें अपना गर्जन मिला

देते थे जिससे कौरव सेनापतियोंके हाथसे अस्त्र शस्त्र गिर जाते थे। उनके कलेजे दहल जाते थे जिससे पाण्डव सेना प्रबल पड़ जाती थी। यथा, '**भारथमें पारथ के रथकेतु कपिराज गाज्यो सुनि कुरुराजदल हलबल भो।**' (बाहुक) ये पताकापर दिव्य चित्ररूपसे बैठे रथकी रक्षा करते थे। भीष्म द्रोण कर्णादिके बाणोंके प्रहारसे वह रथ चलायमान नहीं होने पाता था। द्रोण और कर्णके दिव्यास्त्रोंका प्रभावभी इस रथपर इनके सदा बैठे रहनेसे न पड़ सकता था। नहीं तो वह तो कबका भस्म हो गया होता। शल्यपर्वमें बताया गया है कि "दुर्योधन वध हो जानेपर सब पाण्डव दुर्योधनकी छावनीमें जाकर अपने अपने रथोंसे उतर गये। अंतमें श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे कहा, 'तुम स्वयं उतरकर अपने अक्षय तरकश और धनुषकोभी रथसे उतार लो। इसके बाद मैं उतरूँगा। ऐसा करनेमेंही तुम्हारी भलाई है।' अर्जुनने वैसाही किया। फिर भगवान्‌ने घोड़ोंकी बागडोरि छोड़ दी और स्वयंभी रथसे उतर पड़े। उनके उतरनेपर उस रथपर बैठा हुआ दिव्य कपि अन्तर्धान हो गया। तब तो वह विशाल दिव्य रथ, जो द्रोणाचार्य और कर्णके दिव्यास्त्रोंसे दग्धसाही हो चुका था, विना आग लगायेही प्रज्वलित हो उठा। उसके सारे उपकरण, जूआ, धुरी, लगाम और घोड़े सबके सब जलकर राख हो गये। वह राखकी ढेर होकर धरतीपर बिखर गया।" यह उद्धरणभी हमारे कथनको पुष्ट करता है कि वह रथ तो ब्रह्मास्त्रके तेजसे पहलेही दग्ध हो चुका था, केवल इनके पताकापर सदा विराजमान रहनेके कारण भस्म नहीं हुआ था।

७ 'भीष्मद्रोणकर्णादि पालित' इति। यहाँ दुर्योधनकी सेनाको 'कालहक' कहते हुए उसे भीष्म द्रोण कर्ण आदिसे पालित कहकर उसकी दुर्धर्षता इत्यादि दिखायी। दूसरी (पाण्डवोंकी) ओर इनकी जोड़के केवल हनुमान्‌जीको ('निधन हेतु' शब्दोंसे) इनके नाशका कारण कहकर जनाते हैं कि पाण्डवसेनामें भीष्मादिका मुकाबला करनेवाला एकभी वीर न था। यदि हनुमान्‌जी न होते तो कौरवोंका पराजय, कौरवसेना और सेनापतियोंका युद्धमें नाश एक स्वप्नकीसी

बात होतीं। हनुमान्‌जीनेही तो भीष्मादिसे भीम और अर्जुनकी रक्षा बराबर की थी। भीष्मादि कैसे सेनापति थे, कैसे दुधर्ष वीर थे, सो सुनिये। उद्योगपर्वमें कहा है कि जब भीष्मपितामहको अपना सेनाध्यक्ष बनानेकेलिये दुर्योधन उनके पास गया तब भीष्मपितामहने स्वयं कहा है कि 'मैं अपनी शस्त्रशक्तिसे एक क्षणमेंही देवता और असुरोंसे युक्त इस सारे संसारको मनुष्यहीन कर सकता हूँ। मैं नित्यप्रति पांडवोंके पक्षके दस हजार योद्धाओंका संहार कर दिया करूँगा। पांडव जब नौ दिनके युद्धके पश्चात् भीष्मपितामहके पास गये और उनसे पूछा कि हम आपको किस प्रकार जीत सकते हैं और किस प्रकार अपना राज्य पा सकते हैं? तब उन्होंने उत्तर दिया था कि, 'कुंतीनंदन! मैं सत्य कहता हूँ, जबतक मैं जीवित हूँ तबतक तुम विजय नहीं पा सकते। यदि वास्तवमें जीतनेकी इच्छा है तो जितनी जल्दी हो सके मुझे मार डालो। मेरे मर जानेपर सबको मरा हुआ जानो।' युधिष्ठिरजीने कहा है, "जब आप रणमें कोपयुक्त होते हैं तब दंडधारी यमराजके समान जान पड़ते हैं। आपको इन्द्रादि देवता और असुरभी नहीं जीत सकते।"

भीष्मपितामहके पश्चात् द्रोणाचार्यजी दुर्योधनकी सेनाके अध्यक्ष हुए। द्रोणाचार्यजीने स्वयं कहा है कि मैं छहों अंगयुक्त वेद, मनुकथित अर्थशास्त्र, शङ्करप्रदत्त बाणविद्या और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र जानता हूँ। इन्होंने दुर्योधनसे कहा कि 'जो काम कहो वह मैं करूं। जो वर मांगो, मैं दूँगा।' दुर्योधनने कहा कि 'युधिष्ठिरको जीता पकड़कर मेरे पास ला दीजिये। उसकी दुरात्माका भाव जानकर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि 'यदि अर्जुनने युधिष्ठिरकी रक्षा न की तो युधिष्ठिरको अपने वशमें आया हुआ ही समझो।' द्रोणाचार्यजी कौरवों और पाण्डवोंके शस्त्रास्त्रविद्याके आचार्य ही थे। इन्होंने पाण्डवोंकी सेनाका बड़ा संहार किया।

कर्ण अर्जुनसे किसी प्रकार कम न थे। उनके बाणसे अर्जुनका रथ उड़ जाता यदि उसकी पताकापर श्रीहनुमान्‌जी न होते। श्रीहनुमान्‌जीके रहते हुएभी रथ कुछ हट जाताही था। इनका पराक्रमभी भीष्मके

समान था। ये अपनेको भीष्मपितामहसे कम नहीं समझते थे। इन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'जबतक भीष्म जीवित रहेंगे, मैं युद्ध न करूँगा। उनके मरनेपरही अर्जुनके साथ मेरा युद्ध होगा।' कर्णने शल्यसे कहा है, 'कर्ण दो बार निशाना नहीं साधता। मेरे जैसे वीर कपट पूर्वक युद्ध नहीं करते।' इसी तरह उसने तक्षकके पुत्र अश्वसेनसे कहा था, 'नाग! आज कर्ण दूसरेके बलका आश्रय लेकर विजय पाना नहीं चाहता। यदि तुम्हारा संधान करनेसे मैं सैकड़ों अर्जुनोंको मार सकूं तोभी मैं एक बाणका दो बार संधान नहीं कर सकता। मेरे पास सर्प बाण है, उत्तम प्रयत्न है और मनमें रोषभी है।' उसमें बल ऐसा था कि जब इसके रथका पहिया धरतीमें धस गया तब उसने अपनी दोनों भुजाओंसे पहियेको पकड़ ऊपर उठानेका उद्योग करनेमें सप्तद्विपवाली इस पृथ्वीको पर्वत और वनसहित चार अँगुल ऊपर उठा दिया था।

द्रोणपर्वमें द्रोणाचार्यके वधके उपरांत व्यासजी स्वयं अर्जुनसे शंकरजी-महिमाका वर्णन करते हैं कि "अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कर्ण जैसे धनुर्धर जिस सेनाकी रक्षा करते हैं उसे नानारूपधारी भगवान् महेश्वरके-सिवा कौन रक्षा कर सकता है? भगवान् शंकरही कृपा करके तुम्हारे आगे आगे चला करते हैं। तुम उनको नमस्कार किया करो।" इससे कर्णद्वारा सुरक्षित सेनाकाभी कालरूप संहारिणी कहा जाना युक्तियुक्तही है।

भीष्मपितामह और द्रोणाचार्यको जीतने या मारनेवाला संसारमें कोई न था और न हाथमें शस्त्र रहते हुए उन्हें किसीने माराही। कर्णभी ऐसीही अवस्थामें मारे गये। अर्जुन उसके मुकाबलेके न थे। भीष्मपिता-महने दस दिनमें एक अरब सेनाका संहार किया था।

'आदि' में अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य आदि आ गये। अश्व-त्थामानेही तो पांडववंशको अपनी जानमें निर्मूल कर दिया था। उत्तराके गर्भकी रक्षा तो भगवान्‌ने की। ब्रह्मास्त्रने तो अपना काम कियाही, पर श्रीकृष्ण कृपासे वह जीवित हो गया। इसीसे तो 'परीक्षित' नाम पड़ा।

७ 'कालदृक् सुयोधन चमू' इति। इससे जनाया कि दुर्योधनकी सारी सेना 'कालदृष्टि' के समान संहारकारिणी थी। 'कालदृक्' का भाव कि जिसपर कालकी दृष्टि पड़ती है वह कहींभी जाय बच नहीं सकता। काल दुर्धर्ष और दुरतिक्रम है। यथा, 'तुम्हहिं न व्यापत काल अति कराल कारन कवन।'

अनुसंधान [२८]

जयति गतराज्यदातार हंतार[४] संसार संकट दनुज दर्पहारी।
ईति[५] भीति ग्रह प्रेत चौरानल व्याधि बाधा समन घोर मारी ॥४॥
जयति निगमागमव्याकरणकरणलिपि काव्यकौतुक कला कोटि सिंधो
सामगायक भक्तकामदायक बामदेव (श्री)[६] राम प्रिय प्रेम बंधो ॥५॥
जयति धर्मांशु संदग्ध संपाति नव पक्ष लोचन दिव्य देह दाता।
काल कलि पाप संताप संकुल सदा प्रनत तुलसीदास तात माता ॥६॥

शब्दार्थ—गतराज्य=गया हुआ राज्य। दातार=देनेवाले। यथा, 'राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार।' (अ०) हंतार=नाशक। यथा, 'कपीशमक्षहंतारे वंदेऽनिलात्मजम्'। संकट (संकष्ट)=भारी कष्ट, बड़ी विपत्ति। दर्प=घमंड, गर्व, अक्खड़पन। यथा, 'कंदर्प दर्प दुर्गम दवन उमारमन गुनभवन हर।', 'अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषका शलभा शुकाः। स्वचक्रं परचक्रं सप्तैते ईतयः स्मृताः॥' अत्यंत वर्षा, अवर्षा, मूसों, टीड़ियों, तोतोंके उपद्रव, स्वराज्य और परराज्यकी बाधाएँ हैं। चौरानल=चौर (चोर)+अनल (अग्नि)। चौरा (देवी देवता, मृत महात्मा, वा भूत प्रेतादिका स्थान जहां वेदी या चौरा बना रहता है।)+अनल। व्याधि=रोग। बाधा=विघ्न, भय, संकट। यथा, 'छुधा व्याधि बाधा भइ भारी। बेदन नहिं जानै महतारी॥'

४ हंतार—६६, भा०, बे०, वै०, ज०, १५, वि०। हरतार—ह०, ५१, मु०, भ०, ७४, दी०। ५ ईति भीति—६६, रा०, भा०, बे०, भ०। ईति अति भीति—ह०, शि०, प्र०, ज०, १५, ५१, ७४, आ०। ६ श्री—५१, ज०, ७४, शि०, आ०। ६६, रा०, भा०, बे०, ह० में 'श्री' नहीं है।

'कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा।' (सुं०) मारी (सं०)=प्लेग, हैजा, चेचक, कालाज्वर इत्यादि छूतकी बीमारियाँ जिनके कारण बहुत लोग (जो रोगीसे संसर्ग रखते हैं।) एक साथ मरते चले जाते हैं। मरी वबाई बिमारी। एक प्रकारका भूत जिसके विषयमें लोगोंका विश्वास है कि यह किसी ऐसी दुष्ट स्वभाववाली स्त्रीकी प्रेतात्मा होती है जो किसी रोग, आघात अथवा किसी अन्य कारणवश पूर्णायुको न पहुँचकर अल्पायुमें मरी हो। यह बड़ी उपद्रवी होती है। व्याकरण=वह विद्या या शास्त्र जिसमें किसी भाषाके शब्दोंके शुद्ध रूपों और वाक्योंके प्रयोगके नियमों आदिका निरूपण होता है। हमारे यहां संस्कृत व्याकरणकी गणना वेदोंमें की गयी है। करण=करनेवाले। लिपि=लिखावट। लिपिकरण=लेखबद्ध करनेवाले, लेखक। काव्य=वह वाक्यरचना जिससे चित्त किसी रस वा मनोवेगसे पूर्ण हो। काव्यभी ६४ कालाओंमेंसे एक कला है। इस कलामें चुने हुए शब्दोंद्वारा कल्पना और मनोवेगोंपर प्रभाव डाला जाता है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथके अनुसार रसात्मक वाक्यही काव्य है। रस अर्थात् मनोवेगोंका सुखद संचारही काव्यकी आत्मा है। कौतुक=रहस्य। काव्यकौतुक=काव्यके अनेक रहस्य, चित्रकाव्य। (दी०) काव्यके दशांग (वि०)। काव्यके कुतूहल (वीर)। सामगायक='सामगाताग्रणी' पद २७ देखिये। घर्मांशु=घर्म (सूर्यातप, घाम)+अंशु(किरण), तप्त किरणवाला सूर्य। संदग्ध=बहुत जला हुआ। संपाति (संपाती)=गृध्रराज जटायुका बड़ा भाई। दिव्य=देवताओंकासा; प्रकाशमान; सुंदर।

पद्यार्थ–गये हुए राज्यके दिलानेवाले, संसारसंकटके नाशक, (रावण आदि) राक्षसोंके दर्पको हरनेवाले, ईति भीति, (ईतिका भय वा ईति और बड़े बड़े भय) ग्रह, प्रेत, चोर, अग्नि, रोग और भयंकर मरी आदि बाधाओंके शांत करनेवाले! आपकी जय हो। ४। वेद, पंचरात्र, आदितंत्र और व्याकरणको (सूर्यसे पढ़ और अध्ययन करके) लेखबद्ध करनेवाले,*

*अर्थान्तर—१ पंक्तिकी पंक्ति लिखते चले जानेवाले। (च०) २ कानसे सुनकर उसपर टीका टिप्पणी करनेवाले। (वीर) ३ व्याकरणपर भाष्य लिखनेवाले। (दी०)

(भाव, रस, अलंकार, गणादि) काव्यके, कौतुकके (रहस्य) और करोड़ों कला-ओंके समुद्र, सामवेदके गाता, भक्तोंकी कामनाओंको पूरा करनेवाले साक्षात् शिव और श्रीरामचंद्रजीके प्रिय और प्रेमके बंधु (अर्थात् रामजीमें प्रेम होनेके कारण स्वाभाविकही निष्काम हितैषी) एवं श्रीरामप्रेमप्रिय जनोंके बंधु ! आपकी जय हो । ५ । सूर्यकी तप्त किरणोंसे जले हुए संपातीको नवीन पखने, नेत्र और दिव्य शरीर देनेवाले, कलिकालके पाप और संतापसे परिपूर्ण शरणागत तुलसीदासके सदा माता पिता (रूपसे रक्षा करनेवाले श्रीहनुमान्जी) ! आपकी जय हो । ६ ।

टिप्पणी–७(क)'गतराज्यदातार' इति । यह समझकर कि मायावीने बालीको मार डाला, मंत्रियोंने सुग्रीवको किष्कंधाका राज्य दे दिया । यथा, '**मंत्रिन्ह देखा पुर बिनु साईं । दीन्हेहु मोहि राजु बरिआईं ॥**' बाली मायावीको मारकर जब लौटा तो सुग्रीवको राजा बना बैठा देख बड़ा क्रोधित हुआ और उसने सुग्रीवको मारकर निकाल दिया । यथा, '**रिपुसम मोहि मारेसि अति भारी । हरि लीन्हेसि सरबस अरु नारी ।**' (कि०) श्रीहनुमान्जीने रघुनाथजीसे मित्रता कराके उनका राज्य उनको पुनः दिलाया । यथा, '**तेहि सन नाथ मइत्री कीजै । दीन जानि तेहि अभय करीजै ।**' और फिर '**पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ।**' बाबू शिवप्रकाश और वैजनाथजी आदि टीकाकारोंने ' गतराज्य ' से ' विभीषणका राज्य ' भी अर्थ किया है । परन्तु दासकी समझमें ' गतराज्य ' में ' गईबहोर ' का भाव है । जिसको राज्य मिलनेपर छिन गया हो वही ' गतराज्य ' है । विभीषणजी ' गतराज्य ' नहीं कहे जा सकते ।

(ख) ' हंतार संसार संकट दनुज दर्पहारी ' इति । ' दनुजदर्पहारी ' से ' संकट ' का अर्थ खुल गया कि जो संकट राक्षसोंद्वारा संसारको हो रहा था उसे मिटाया । यथा, '**सेनसहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि । कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि ॥**' (लं०), '**बारिधि नाँघि एक कपि आवा । तासु चरित मन महुं सबु गावा ।**' (प्रहस्तवाक्य), '**देखत तोहि**

अच्छ जेहि मारा । जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा ॥ कहाँ रहा बल गर्व तुम्हारा । '

८ ' जयति निगमागम व्याकरण करण लिपि ' इति । निगम वेदका और आगम पंचरात्रका नाम है । शौनकादि महर्षि तथा प्रह्लादादि रामभक्तोंके प्रति शुक्लयजुर्वेदीय रामरहस्योपनिषत्‌के वक्ता श्रीहनुमान्‌जीही हैं । श्रीरघुनाथजीने आपको अथर्ववेदीय मुक्तिकोपनिषत्‌का उपदेश किया है । मुक्तिकोपनिषत्‌के प्रवर्तक, (प्रचारक) ऋषि (आचार्य) आपही हैं और व्याकरणके आचार्य तो आप हैंही । नारद पांचरात्रान्तर्गत हनुमत्संहिता, वाल्मीकिसंहिता आदि कई संहिताओंके प्रवर्तक आपही हैं । संगीतशास्त्रमेंभी तो हनुमान प्रसिद्ध है । काव्यादि संपूर्ण विद्याओंके निधि तथा चौंसठ कलाओंके समुद्र तो आप हैंही । चित्रकाव्यके आदि आविष्कर्ताभी आपही कहे जाते हैं ।

' करण लिपि ' शब्दोंसे सूचित करते हैं कि इनपर आपने कुछ लिखा है अथवा प्रथम प्रथम लेखबद्ध आपनेही किया यह जनाया है ।

' काव्य कौतुक कला ' के अर्थान्तर ये हैं । (१) काव्यके रहस्य ओर अनेक कलाओं अर्थात् लौकिक पारलौकिक विद्याओंके समुद्र । (हु०) (२) साहित्य, रस, अलंकार, छंद, प्रबंधादि काव्यके कौतुक (अर्थात् नवीन चीज, उपमा, चित्रादि तमाशा) तथा चातुर्यताकी जो करोड़ों कलाएँ हैं उनके जलपूर्ण समुद्र हैं । (वै०) (३) काव्यकुतूहलकी कलामें असंख्यों समुद्रोंके समान । ' (वीर) (४) चित्रकाव्य और अनेक कलाओंके समुद्र । (दी०)

' काव्य कौतुक कला ' से ' महानाटक निपुण ' काभी भाव ग्रहण किया जा सकता है । पद २९ के " महानाटक निपुण कविकुल-तिलक " का सब भाव इन शब्दोंमें आ जाता है ।

९ (क) ' भक्तकामदायक ' इति । यथा, ' रामके गुलामनिको कामतरु रामदूत ', ' नाम कलि कामतरु केसरी किसोरको । ', ' खल दुख दोषिबेको जन परितोषिबेको माँगिबो मलीनता को

मोदक सुदान भो ', ' नाम लेत देत अर्थ धर्म काम निर्वाण हो '। पद २७ ' रामभक्तानुवर्ती ' भी देखिये। भाव कि मैं आपका भक्त हूँ। मेरी कामना पूर्ण कीजिये। (ख) 'वामदेव' पद ८ देखिये। (ग) ' राम प्रिय प्रेम बंधो ' इति। टीकाकारोंके भावार्थ। (१) जिसको रामजीका प्रेम अतिप्रिय है उसके हितकारी। (डु०) (२) जिनको प्रेम प्रिय है उन श्रीरघुनाथजीको बंधुसमान प्यारे हो। (वै०) (३) श्रीरामचंद्रजीके प्यारे और प्रेमी जनोंके सहायक। (वीर) (४) श्रीरामचंद्रजीके अत्यन्त प्यारे और प्रेमी बंधु। (दी०)

१० ' घर्मांशु संदग्ध संपाति दिव्य देह दाता ' इति। यह कथा रामायणोंमें है। संपातीने समुद्रतटपर यह कथा स्वयं वानरोंसे सीताशोध समय कही है। यथा, ' **कहि निज कथा सुनहु कपिबीरा॥ ' हम दोउ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गये रबि निकट उड़ाई॥ तेज न सहि सक सो फिरि आवा। मैं अभिमानी रबि नियरावा॥ जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥** '

' नवपक्ष दाता ' इति। पक्ष, नेत्र, और शरीर सभी जल गये थे। फिरसे नवीन होनेकी कथाभी उसने कही है। यथा, ' **मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥ बहु प्रकार तेहि ज्ञान सिखावा। देहजनित अभिमान छुड़ावा॥ त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिहीं। तासु नारि निसिचरपति हरिहीं॥ तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहिं मिले तैं होब पुनीता॥ जमिहहिं पंख करसि जिनि चिंता। तिन्हहिं देखाइ दिहेसु तैं सीता॥ मुनिकै गिरा सत्य भइ आजू।** ' ऋषिका उन्हें वरदान था कि रामदूत जो आवेंगे, उनके मिलनेपर शरीर दिव्य और नवीन हो जायेगा।

११ ' तुलसीदास तात माता ' इति। भाव कि मैं आपका बालक हूं। बालककी रक्षा करना मातापिताका सहज कर्तव्य है। बच्चेको मातापिताकाही भरोसा रहता है। वैसेही मुझे एकमात्र आपका भरोसा है। मैं आपसे हठ कर रहा हूँ। आप मेरा हठ रखिये। मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये। यथा, ' **मेरे माय बाप दोउ आखर हौं सिसु अरनि अर्‌यो।** ' यहां ' तृतीयतुल्ययोगिता अलंकार ' है।

२९ [१८]

जयति[1] निर्भरानंदसंदोह कपि केसरी केसरीसुवन[2] भुवनैकभर्ता ।
दिव्य भूम्यंजना मंजुलाकरमणे भक्तसंताप चिंतापहर्ता ॥
जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो ब्रह्मलोकादि वैभव बिरागी ।
बचन मानस कर्म सत्य धर्म ब्रती जानकीनाथ चरणानुरागी ॥
जयति बिहगेस बल बुद्धि बेगाति मद मथन मन्मथमथन उर्द्धरेता ।
महानाटक निपुन कोटि कबि कुल तिलक गान गुन गर्ब गंधर्ब जेता ॥
जयति मंदोदरी केस कर्षण विद्यमान दसकंठ भट मुकुट मानी ।
भूमिजा दुःख संजात रोषातकृ[3]जातना जंतु कृत जातुधानी ॥
जयति रामायण श्रवन संजात रोमांच लोचन सजल सिथिल बानी ।
रामपदपद्म मकरंद मधुकर पाहि दास तुलसी सरण सूलपानी ॥

शब्दार्थ—संदोह = समूह । यथा, 'चिदानंदसंदोह मोहापहारी' (उ०) पात्र । (डु०) भूम्यंजनाकरमणे = (भूमि + अंजना + आकर (खानिके) + मणे) अंजनारूपी पृथ्वीकी खानिके मणि । चिंतापहर्ता = (चिन्ता + अपहर्त्ता) पूर्ण रूपसे हर लेनेवाले । धर्मार्थ-कामापवर्गद = धर्म + अर्थ + काम + अपवर्ग (मोक्ष) + द (देनेवाले)। बिरागी = लौकिक विषयोंका त्याग करनेवाला, अर्थ धर्म काम मोक्षकी भी जिसको चाह नहीं । यथा, 'कहिय तात सो परम बिरागी । तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥' (आ०) त्रैलोक्यकी विभूतिमें भी राग न होना वैराग्य है । यथा, 'तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥ रमा बिलास राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़ भागी ॥' (अ०) बिहगेस = (बिहग + ईश) पक्षिराज गरुड़ । बेगाति = वेग (शीघ्र गतिका) + अति । मन्मथ = मनको मथनेवाला । कामदेव मनमें बैठकर प्रपंच रचता है । कामोद्दीपन करता है । कामका विकार मनसेही उत्पन्न होता है । यथा, 'उर बसि

१ ७४ में नहीं हैं । २ सुअन—रा०, ह०, ५१, बि० । ३ कृजा-तना—६६, रा०, ह०, ५१, ७४ । कृतजातना—भा०, बे०, प्र०, ज०, १५, आ० ।

प्रपंच रचै पंचबान।' इसीसे कामदेवका नाम 'मन्मथ' हुआ। मन्मथके संबंधसे 'मथन' शब्द बड़ा अच्छा पड़ा है। जो प्राणीमात्रके मनको मथ डालता है आप उसीको मथ डालनेवाले हैं। मथन = न्यस्त, व्यस्त, ध्वस्त वा नाश करनेवाले। ऊर्द्ध = ऊपरकी ओर। हिन्दीमें यौगिक शब्दोंमेंही प्रायः यह विशेषण आता है। रेत (सं० रेत्, रेतस्) = वीर्य, शुक्र। ऋग्वेदमें ब्रह्मचारीके दो भेदोंका वर्णन है। एक 'अमोघ-वीर्य' अर्थात् जिसका वीर्य निष्फल नहीं जाता। दूसरा उर्द्धरेतस्। ऊर्द्धरेता = जिसका वीर्य सदा ऊपर ब्रह्मांडमेंही रहता है। जो अपने वीर्यको गिरने नहीं देता। महानाटक = नाटकके लक्षणोंसे युक्त दश अंकोंवाला नाटक। नाटक = दृश्य काव्यका एक भेद नाटक माना गया है। साधारणतः लोग नाटक शब्द दृश्यकाव्यमात्रके अर्थमें बोलते हैं। साहित्यदर्पणके अनुसार नाटक किसी ख्यात वृत्तको (प्रसिद्ध आख्यान, कल्पित नहीं) लेकर लिखना चाहिये। वह बहुत प्रकारके विलास, सुख दुःख तथा अनेक रसोंसे युक्त होना चाहिये। उसमें पाँचसे लेकर दसतक अंक होने चाहियें। नाटकका नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंशका कोई प्रतापी पुरुष या राजर्षि होना चाहिये। नाटकके प्रधान वा अंगी रस शृंगार और वीर हैं। शेष रस गौणरूपसे आते हैं। शान्ति, करुणा आदि जिस रूपकमें (दृश्यकाव्य वा उसके एक विभाग) प्रधान हों वह नाटक नहीं कहला सकता। (श० सा०) परन्तु महाकवि भवभूतिने अपने प्रसिद्ध नाटक 'उत्तर रामचरित्र' में करुणारसकीही प्रधानता रक्खी है और महाकवि श्रीहर्षदेवप्रणीत साहित्यसंसारमें विख्यात 'नागा नन्द' नाटकमें शान्ति एवं करुणा रसकीही प्रधानता पायी जाती है। शृङ्काररस गौण है और वीर तो नहींही है। संधि स्थानमें कोई विस्मयजनक व्यापार होना चाहिये। उपसंहारमें मंगलही दिखाया जाना चाहिये। वियोगान्त काव्य संस्कृत शास्त्रके विरुद्ध है। इसीसे उत्तम श्रव्यकाव्य होते हुएभी 'कादम्बरी' साहित्यरसिकोंको खटकता है। क्योंकि उसमें मदलेखाका संयोग नायकसे नहीं कराया गया है। तिलक = श्रेष्ठ, शिरोमणि।

जेता (सं० जेतृ) = जीतनेवाला। विद्यमान = सामने उपस्थित रहते। केश कर्षण = झोंटा पकड़कर खींच वा घसीट लानेवाले। अंतकृत = अंत या विनाश करनेवाले यमराज। मुकुट = सिरताज, शिरोमणि, श्रेष्ठ। यातना = बहुत अधिक पीड़ा जैसे यमलोकमें होती है। रोमांच = आनंदसे रोयोंका खड़े हो जाना, पुलक। संजात रोमांच = जिनके शरीरमें रोमांच उत्पन्न होता है; रोमांचित होनेवाले। सजल = जलसे (प्रेमाश्रु) भरे हुए। शिथिल = सुस्त, ढीली, मंद। गद्‍गद् = जिसके मुखसे स्पष्ट वचन न निकले।

पद्यार्थ—परिपूर्ण आनंदके समूह, वानरोंमें सिंहरूप अर्थात् श्रेष्ठ पराक्रमी, केसरीके पुत्र, लोकोंके एकमात्र भरण पोषण रक्षण करनेवाले, अंजनारूपी दिव्य (सुंदर) भूमिकी सुंदर खानिके मणि, भक्तोंके संताप और चिंताके पूर्णतया हरनेवाले! आपकी जय हो। १। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके देनेवाले, समर्थ, ब्रह्मलोक आदिके वैभवसेभी (ऐश्वर्य) वैराग्यवान्, वचन, मन और कर्मसे सत्यधर्मका व्रत धारण करनेवाले श्रीजानकीपति रघुनाथजीके चरणोंके अनुरागी! आपकी जय हो।२। पक्षिराजके अति बल, बुद्धि और वेगके बड़े भारी मदको चूर चूर कर डालनेवाले, कामदेवका मंथन करनेवाले (अर्थात् ऊर्द्ध्वरेता बालब्रह्मचारी), महानाटक काव्यमें पूरे पंडित, करोड़ों कवि समुदायके शिरोमणि, गानकलामें गंधर्वोंके गर्वको जीतनेवाले! आपकी जय हो।३। अभिमानी योद्धाओंमें शिरोमणि, दससिरवाले रावणकी उपस्थितिमें (उसकी पटरानी) मंदोदरीको झोंटा पकड़कर घसीटनेवाले! आपकी जय हो। पृथ्वीकी कन्या श्रीजानकीजीके दुःखसे उत्पन्न क्रोधसे (क्रोधके आवेशमें) आपने निशाचरियोंको यम यातना जंतु बनाया। (अर्थात् उनको यातनादंड दिया।) ।४। रामायण सुनते समय पुलकायमान, सजलनयन और गद्‍गद्‍कंठ होनेवाले, श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलके मकरंदरसके भौंरे! आपकी जय हो। हे शूलपाणि (साक्षात् शिवजी)! तुलसीदास शरण है, इसकी रक्षा कीजिये ।५।

टिप्पणी—१ (क) 'निर्भरानंदसंदोह' इति। श्रीरामानुजाचार्यजीका

(वृंदावन) मत है कि 'निर्भर' शब्दको 'आनंदसंदोह' से पृथक् समझना चाहिये। श्रीजानकीनाथजीके चरणारविन्दमें अपनी शरीरयात्रा तथा आत्मयात्राके निर्वाहके सम्पूर्ण भार अर्पण करनेसे आप 'निर्भर' हैं। 'निर्भर' शब्दको हमने आनंदका विशेषण गोस्वामीजीके कुछ प्रमाणोंके अनुसार माना है। यथा, 'निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥ अविरल प्रेमभगति मुनि पाई। अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भव भीरा॥' (सुतीक्ष्ण प्रेम। आ०), 'तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुखपंकज दिये'। (अत्रिजी) निर्भरानन्दसंदोह कहकर भगवद्-गुणानुभवानंदमग्न जनाया।

(ख) 'कपिकेसरी केसरीसुवन' इति। कपिकेसरीसे सिंहका रूपक दिया गया है। जैसे सिंह जंगलकी रक्षा करता है वैसेही आप समस्त भुवनोंके एकमात्र भर्त्ता अर्थात् धारण पोषण करनेवाले हैं। 'भुवनैकभर्त्ता' कहनेका भाव कि संसारकी रचना, पालन, पोषण और संहारकेलिये विधि हरि हरके समान समर्थ हैं। यथा, 'रचिबेको बिधि जैसे पालिबेको हरि हर हर मीच मारिबे को जियाइबे को सुधापान भो। धरिबे को धरनि तरनि तम दलिबेको सोखिबे कृसानु पोषिबेको हिम भानु भो॥' (बाहुक) 'कपिकेसरी' दीपदेहरी है। हनुमान्‌जी एवं केसरी दोनोंका विशेषण हो सकता है। 'केसरी' के दो अर्थ हैं। भिन्न भिन्न अर्थ देनेकेलिये दो बार इसका प्रयोग किया जानेसे यहां 'यमकालंकार' है। वीरकविजी लिखते हैं कि "कपिकेसरी श्लेषार्थी है। क्योंकि दूसरा अर्थ केसरी बंदरकेलिये आप पूर्णानन्दकी राशि हैं" यहभी निकलता है जो कविइच्छित होनेसे 'श्लेषालंकार' है। मिलान कीजिये, 'केसरी चारु लोचन चकोरक सुखद'। (पद २५) शरण्य, भयहरण, सर्वजगत्‌रक्षक इत्यादि होनेसे 'भुवनैक भर्त्ता' विशेषण दिया है। यथा, 'सरन भयहरन जय भुवनभर्त्ता' (२५), 'जगदार्त्तिहारी लोक लोकप सोकहर कल्याणकारी'। (२६)

२ (क) पद २५ में चन्द्रमाका रूपक और २६ में सूर्यका रूपक देकर हनुमान्‌जीके गुणानुवाद किये। अब इस पदमें प्रथम आधे तुकमें सिंहका और पश्चात् चिन्तामणिका रूपक देकर गुणगान करते हैं। मणि खानिसे निकलती है और उससे दरिद्रता आदि दुःखोंकी निवृत्ति होती है। यहां श्रीअंजनामाता दिव्य भूमि हैं। उनका गर्भाशय वा कोख सुंदर खानि है जिससे श्रीहनुमान्‌जीरूपी मणि निकले। चिन्तामणि दिव्य है और देवलोकमें है। इसीसे यहां 'दिव्यभूमि' और 'मंजुल आकार' कहा। भक्तही देवता हैं। श्रीहनुमान्‌रूपी चिन्तामणि भक्तरूपी देवतओंके सन्ताप और लौकिक पारलौकिक सभी चिन्ताओंको दूर कर देते हैं। हनुमान्‌जी रुद्रावतार हैं, अतएव उनकी उत्पत्तिकेलिये दिव्य भूमि होनाही चाहिये। 'संतापचिंतापहर्ता' विशेषणके आधार पर 'चिन्तामणि' अर्थ ग्रहण किया गया है। साधारण मणियोंमें यह गुण नहीं है। यहां 'परंपरित रूपक अलंकार' है।

(ख)'भक्त संताप चिंतापहर्ता' इति। चिन्तामणि दुःख दरिद्र हरती है, अभीष्ट पदार्थ देकर चिंता दूर करती है, अर्थधर्मकाम देती है और स्वयं कुछ नहीं चाहती। वैसेही हनुमान्‌जी रामभक्तोंके त्रयतापों और चिन्ताओंको तो हरतेही हैं, साथही अर्थ, धर्म, काम, और मोक्षभी देते हैं जो चिंतामणिकी शक्तिसे बाहर है। यह सब कहते हैं क्यों? इसका कारण पूर्व पद २७ और २८ में कह आये हैं कि वे 'रामभक्तानुवर्त्ती' और 'राम प्रिय प्रेम बंधु' हैं। भक्तिचिन्तामणिका स्वरूप मानसमें इस प्रकार दिखाया गया है, '**मोह दरिद्र निकट नहि आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥ प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥ खल कामादि निकट नहिं जाहीं।**' जिसके हृदयमें हनुमान्‌रूपी चिंतामणिका वास है, उसमें ये सब गुण आ जाते हैं। श्रीहनुमान्‌जी सब कुछ देते हैं और स्वयं कुछ नहीं चाहते। यह 'ब्रह्मलोकादि वैभव बिरागी' से जनाया। सब कुछ देनेको समर्थ हैं, अतः 'प्रभु' कहा।

३ 'बचन मानस कर्म सत्य धर्म व्रती' इति। 'भक्तसंतापचिंतापहर्ता', 'धर्मार्थकामापवर्गद विभो' कहकर अब उसका कारण बताते है कि आप मनबचनकर्मसे श्रीरामपदारविंदानुरागी हैं। अतएव श्रीरामभक्त आपको प्रिय हैं और इसीसे उनके संतापादिको आप हरते और उनको अर्थधर्मादि देते हैं। 'ब्रह्मलोकादिबैभव बिरागी' जो पूर्व कहा था उसका कारण बताते हैं कि 'बचमानसकर्म सत्यधर्मव्रती' हैं। आपका मन वचन और कर्म सदा श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें लीन रहता है। 'जानकीनाथ चरणानुरागी' कहकर जनाया कि आपके समान बड़भागी कोई नहीं। यथा, **हनुमान सम नहि बड़भागी। नहि कोउ रामचरन अनुरागी॥ गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥** मिलान किजिये, '**रमाबिलास रामअनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥ राजप्रेमभाजन भरतु बड़े न एहि करतूति। चातक हंस सराहियत टेक बिबेक बिभूति॥**' (अ०) पुनः 'ब्रह्मलोकादि बैभव बिरागी' से कदाचित् कोई समझ ले कि ये शान्तरसके उपासक हैं, अतएव उस संदेहकी निवृत्तिकेलिये 'बचनमानस जानकीनाथ चरणानुरागी' कहा।

४ (क) 'जानकीनाथ' का भाव कि (१) आप मायावादियोंकीतरह निर्गुण ब्रह्मके नहीं किन्तु ब्रह्मवादियोंकीतरह सगुण ब्रह्म श्रीजानकीपतिके उपासक हैं। (२)श्रीजानकीजीकी महिमा यह है, '**लोकप होहि बिलोकत जासू। तेहि कि मोह सक बिषय बिलासू॥**' (अ०) और, **सुमिरत रामहिं तजहिं जन तृन सम बिषय बिलास॥**' तब ऐसे श्रीजानकीनाथके अनुरागीको ब्रह्मलोकवैभव कब लुभा सकता है? (३) आप युगल स्वरूपके उपासक हैं। सारा ऐश्वर्य श्रीजानकीजीकी मायाका रचा हुआ है। उनके तथा उनके पतिके सेवक होनेसे आप उनकी मायासे बचे रहते हैं। यथा, '**हरि सेवकहि न व्याप अविद्या॥**' (४) विनयमें कहा है, '**हरिहरहिं हरता बिधिहिं बिधिता श्रियहि श्रियता जेहिं दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई॥**' (१३५) जिनसे ब्रह्मादिका यह सारा वैभव है उनका वैभव कैसा होगा? उसके आगे समस्त लोकोंका वैभव तुच्छ लगाही चाहे। दूसरे, उन श्रीजानकीपतिकी मोदमय

मंगलमयी माधुरी मूर्त्तिके माधुर्य और आनन्दके रसिक भला ब्रह्मलोकादि वैभवकी ओर कब ताकने लगे? उनके तो मन, वचन और कर्म सब उन्हींमें सदैव आसक्त रहते हैं। (ख) 'चरणानुरागी' कहकर जनाया कि सेवक भावका प्रेम है, निष्काम प्रेमी हैं। यथा, 'सेवक भो पवनपूत साहिब अनुहरत'। (ग) 'सत्यधर्मव्रती' इति। पद २६ 'निश्चलव्रत सत्य धर्मचारी' टि० १० देखिये। 'सत्यधर्मव्रत' क्या है? यह कवि स्वयं बताते हैं कि 'जानकीनाथ चरणानुरागी' होनाही 'सत्य धर्म' है। (घ) 'बचन मानस कर्म' के उदाहरणोंसे मानसके कि० सुं० लं० और उ० कांड ओतप्रोत हैं। (ङ) 'विहगेस बल बुद्धि बेगाति मद मथन' इति। इसकी कथाएँ 'भीमार्जुनव्यालसूदनगर्वहर' पद २८ में दी जा चुकी हैं।

५ (क) 'मन्मथमथन' इति। रुद्ररूपसे तो कामदेवको भस्म कियाही था और स्त्री होते हुएभी योगीश्वर बने रहे। पर कपि आकृति हनुमान्-रूपमें तो आप बालब्रह्मचारी रहे, न तो ब्याहही किया और न वीर्यको कभी ब्रह्माण्डसे नीचे आने दिया। ऐसे जितेन्द्रिय होनेसे मन्मथका मनही मथ गया। कैसे मन्मथके मथनकर्त्ता हैं, यह 'ऊर्द्धरेता' विशेषण देकर स्पष्ट कर दिया।

(ख) 'महानाटक निपुन' इति। "महानाटक ग्रन्थके वक्ता श्रीहनुमान्-जी हैं, इसीसे 'महानाटक निपुन' कहा। श्रीअंजनीकुमारजीने दशअङ्गात्मक महानाटककी रचना की। पीछे किसी समय वाल्मीकिजीसे कुछ विषयमें विवादसा हो पड़ा। महर्षिजी लिखते हैं कि लंकायुद्धमें श्रीराजीवलोचन सरकारके युद्धश्रमसे प्रस्वेद बिन्दु और रावणादि राक्षसोंके बाणसे क्षत श्रीअंगमें रुधिरकण थे। आप बोले कि हम तो बराबर सेवामें रहे। हमने कभी प्रस्वेद और क्षतजबिन्दु श्रीअङ्गमें नहीं देखा। बराबर श्रीदिव्य मंगल विग्रहारविंदका प्रफुल्लितही दर्शन होता रहा। आदिकविजी बोले कि हमारी रामायण कपोल कल्पित नहीं है। लंकाविजयके पश्चात्‌ही शारदान्तर्यामि श्रीराघवेन्द्रने हमारे जिह्वासिंहासनपर बिराज कर स्वयं निर्माण किया है। विवादशान्त्यर्थ यह प्रसंग श्रीसरकारके समक्ष पेश हुआ।

भक्तवत्सल, करुणासागर, ब्रह्मण्यदेवने महर्षि वचनका आदर किया। तब श्रीबजरंगबलीजीने जो अपने नखोंसे शिलापर महानाटक लिखा था उसे समुद्रमें पधरा दिया। महाराज विक्रमादित्यजीने यह कथा सुनकर वराह-मिहिर नामक ज्योतिषीद्वारा गणितसे निश्चय कराके बहुत प्रयत्नसे गोताखोरोंद्वारा मोम चिपकाचिपकाकर उसे प्रकट किया। तत्पश्चात् मधुसूदन पंडितने चम्पू प्रभृति अनेक नाटकग्रंथोंसे संग्रह करके उसे सुसज्जित किया। इस नाटकके प्रत्येक अंकमें अंतिम श्लोक यह आता है, '**वाल्मीकेरुपदेशतः स्वयमहो वक्ता हनूमान् कपिः।**' यह ग्रंथ कलकत्ताके पं० जीवानंद विद्यासागर, बी० ए०, प्रेसमें छपा है और वहीं मिलता है।"

श्रीव्रजरत्नभट्टाचार्यजी (मुरादाबाद) अपने श्रीरामचरितामृतनामक भाषातिलकमें लिखते हैं कि "यद्यपि इस नाटकमें केवल अंकोंके अतिरिक्त विदूषकादिक और कोईभी नाटककी बात नहीं है, तथापि यह आदिनाटक समझा जाता है। इस ग्रंथके कर्त्ताका पता नहीं लगता है। परन्तु '**रचितमनिलपुत्रेणाथ वाल्मीकिनाब्धौ निहितममृतबुद्ध्या प्राङ् महानाटकंयेत्। सुमति नृपतिभोजेनोद्धृतं तत्क्रमेण ग्रथितमेवतु विश्वं मिश्रदामोदरेण॥**' इस श्लोकके अनुसार विदित होता है कि जब महर्षि वाल्मीकिजीने इसको देखा तब महाराज श्रीरामचंद्रजीसे कहा कि 'हे राजन्! हनुमानजीके रामायणके विद्यमान रहते हमारे रामायणका आदर न होगा, कारण कि आपका चरित्र हमको तो ध्यानमें विदित हुआ है और महावीरजीका चाक्षुष प्रत्यक्ष किया हुआ है।' यह सुन रामचंद्रजीने शिलाओंपर लिखा और यह नाटक हनुमान्जीसे कहकर समुद्रमें फेंकवा दिया। राजा भोजने उन शिलाओंको समुद्रसे निकलवाया और श्रीदामोदरमिश्रने इसका संग्रह किया। हम नहीं कह सकते कि यह पुस्तक संपूर्णतः पूर्ण हो। परन्तु हमने अत्यन्त प्राचीन पुस्तकसे शुद्ध करके भाषाटीका कर दिया है। इसमेंके बहुतसे श्लोक वाल्मीकीयरामायण, रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तल, उत्तररामचरित्र आदि पुस्तकोंमेंभी देखे जाते हैं। न जाने इसका क्या कारण है? अबतक इस ग्रंथके उपर किसीका अनुवाद उपलब्ध नहीं है।

हमारा यह अनुवाद बिल्कुल नवीन है।" (बंबई वैभवयंत्रालयकी छपी पंचमावृत्ति। संवत् १९८१)

श्रीवेणीमाधवदास रचित 'मूलगुसाईं चरित' (सं० १६८७) में भी कथा कुछ इसीसे मिलती जुलती है। "**मुनिराज लखे अद्भुत रचना। कपिराज सों कीन्ह इहै जँचना॥ यह गुप्त रहस्य है गोइ धरैं। बिनती हमरी न प्रकास करैं॥**"

(ग) "गानगुन गर्व गंधर्व जेता" इति। कहा जाता है कि महर्षि गौतमने एकबार किसी अवसरपर अपने यहाँ गंधर्वादि देवताओं और श्रीहनुमान्‌जीकोभी निमंत्रित किया। वहाँ श्रीहनुमान्‌जीका गाना सुनकर सारा समाज मुग्ध हो गया। गंधर्व किन्नरगण सब दंग रह गये।

६ 'मंदोदरी केश कर्षन विद्यमान' इति। जब रावण संग्राममें लक्ष्मणजीद्वारा व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिरा और सारथी उसको रथमें डालकर रणभूमिसे उठा ले गया तब मूर्छा जगनेपर रावण, पातालगुफामें जो महलके अन्दर थी, जाकर यज्ञ करने लगा। बिभीषणजीसे यह समाचार पाकर प्रातःकाल होतेही हनुमदादि सुभट यज्ञ विध्वंस करने भेजे गये। वानरोंने जाकर यज्ञ विध्वंस किया। पर अनेक उपाय करनेपरभी रावण न हटा और न उसने इनकी ओर दृष्टिही डाली। यह देख '**नहिं चितव कपि कोपि तब काटि दसन्ह लातन्ह मारहीं। धरि केस नारि निकारि बाहर तेऽति दीन पुकारहीं।८५।** रामचरितमानसमें 'कपि' शब्द दिया है। नाम नहीं खोला गया। क्योंकि इस संबंधमें मतभेद है। पर यहां कविने नाम स्पष्ट कर दिया है कि यह काम हनुमान्‌जीका है। मानसमेंभी 'हनुमदादि' में संकेत इसी बातका है पर स्पष्ट करके नहीं कहा गया। कारण कि मानसमें मतभेदके स्थलोंपर पूज्य कविने वही शैली रखकर समस्त ऋषियोंका सम्मान किया है। बाहुकमेंभी यह कर्म (मंदोदरी केशकर्षण) हनुमान्‌जीकाही बताया गया है। यथा, '**तोरि जमकातरि मंदोदरी कढ़ोरि आनी रावणकी रानी मेघनाद महतारी है।**' रावण आदिके रहते हुएभी निःशंक होकर इन्होंने यह काम किया।

यहां मंदोदरीका केशकर्षण आदिमें कहा और 'जातुधानी' को अंतमें। इसका अन्वय दो प्रकारसे किया जा सकता है। एक तो 'जातुधानी मंदोदरी'। दूसरे 'मंदोदरी एवं अन्य जातुधानी रानियां'। यह अन्वय मानस एवं अध्यात्मरामायणके अनुसार किया जा सकता है। मंदोदरी पटरानी है; इससे इसका नाम स्पष्ट कहा। विशेष 'मानसपीयूष' में देखिये।

वियोगीहरिजी श्रीहनुमान्‌जीके इस चरित्रके संबंधमें लिखते हैं कि "महावीर हनुमान्‌जीके विक्रम चरित्रके वर्णनमें एक स्त्रीका केशकर्षण प्रसंग कुछ खटकतासा है। यद्यपि ग्रंथकारने भक्ति प्रेमवशही इसे लिखा है।"

बाबू शिवप्रकाशजी और बैजनाथजी लिखते हैं कि 'इस चरित्रसे उनकी निश्शंक वीरता' दिखायी गयी है। जिस मंदोदरीपर इन्द्रादि दृष्टि नहीं डाल सकते थे उसकी रावणके सामनेही यह दुर्दशा की। भला यह साहस त्रैलोक्यमें किसीको था? विशेष आगे टि० ८ में देखिये।

७ 'भट मुकुट मानी' इति। यह विशेषण रावणका है। यथा, "**पावक पवन पानी भानु हिमवान जम काल लोकपाल मेरे डर डाँवाँडोल हैं। साहिब महेस सदा संकित महेस मोहि महातप साहस बिरंचि लीन्हे मोल हैं॥ तुलसी तिलोक आजु दूजो न बिराजै राजा बाजे बाजे राजनके बेटा बेटी ओल हैं। को है ईस नामको जो बाम होत मोहू सो को मालवान रावरे के बावलेसे बोल है॥**", "**भूमि भूमिपाल ब्यालपालक पताल नाकपाल लोकपाल जेते सुभट समाज है। कहै मालवान जातुधानपति रावरेको मनहूं अकाज आनै ऐसो कौन आजु है।**" (क०)

यह विशेषण श्रीहनुमानजीकाभी हो सकता है। इनको श्रीरामजीके दास होनेका अभिमान था। इस बातकी घोषणा ललकारकर उन्होंने लंकामें की है। यथा, "**दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः। हनुमाञ्छत्रुसैन्यानां निहंता मरुतात्मजः।**" (वाल० सुं०) श्रीरघुनाथजीके दासत्वका अभिमान प्रशंसाकी बात है। इसीसे ऋषि वर माँगते हैं कि, '**अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥**' परंतु हनुमान्‌जीका विशेष उत्कर्ष उसे रावणका विशेषण माननेमेंही है।

८ 'भूमिजादुःखसंजात रोषांतकृज्जातना' इति। पूर्वार्धमें मंदोदरी केशकर्षण कहा। परस्त्रियोंपर हाथ चलाना कोई वीरता नहीं है किंतु निंदित कर्म है। उत्तरार्ध तुकमें उस शंकाका समाधान करते हैं। एक तो यह 'सत्य धर्म व्रती जानकीनाथ चरणानुरागी' जो पूर्व कहा गया है उसका उदाहरण है। श्रीहनुमान्जी परम धर्मको ग्रहण किये हुए हैं। श्रीजानकीजी और उनके पति आपके इष्ट हैं। इष्टकेलिये भक्त जो कुछ करता है वह परम धर्म है और अनिंद्य है। दूसरा समाधान इस तुकमें हैं। श्रीजानकीजीका दुःख उनके हृदयको जलाता रहा था। उसका बदला अबतक वे रावणसे न चुका सके थे। यथा, 'परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन।' (सुं०) 'देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता।' इसके पूर्व सुग्रीवके साथ पर्वतपर बैठे हुए इन्होंने कुररीकीतरह विलाप करती हुई सीताजीको ज़बरदस्ती लिये जाते हुए देखा था। यथा, 'मंत्रिन्ह सहित इहां एक बारा। बैठ रहेउँ कछु करत बिचारा॥ गगनपंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥' (कि०) ये सब प्रसंग वे भूल नहीं सकते थे। उस 'मानी भट मुकुट' ने जैसा किया वैसा उसके साथ 'जैसेको तैसा' नीतिका बर्ताव किया गया। यह तो नीति है।

तीसरे, रावण सबको मारने और स्वयं अमर और अजय होनेका उपाय कर रहा था। अपने प्राणोंपर आ बननेवाली आपत्तिको हटानेके-लिये यह कर्म किया गया था। इससे यह अनुचित नहीं कहा जा सकता। दूसरा कोई उपाय रावणको यज्ञशालासे उठानेमें जब कारगर न हुआ तब यह अंतिम उपाय काममें लाया गया था। ऐसे अनेक समाधान इसके हो सकते हैं। पर यहां कविकृत समाधान यह है कि वह काम 'रोष' में किया गया। रोषमें उचितानुचितका विचारही नहीं रह जाता। यथा, 'करहि क्रोध जिमि धर्महि दूरी।' गीतावलीसेभी यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है। यथा, "सुवन समीरको धीर धुरीन बीर बड़ोई। देखि गति सियमुद्रिकाकी बाल ज्यों दियो रोई। १। अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध न बिंधि बढ़ोई। सकुचि सम

भयो ईस आयसु कलसभव जिय जोई । २ । बुद्धिबल साहस पराक्रम अछत राखे गोइ । सकल समाज साज साधक समउ कहैं सब कोइ । ३ । " वही दबाया हुआ क्रोध आज निकाला गया ।

वाल्मी० सुं० सर्ग २६ श्लोक २० से सर्गके अंततक श्रीजानकीजीके विलापमें हनुमान्‌जीकी अभिलाषाओंका वर्णन है । "**यथाहमेवं रुदती तथा भूयो न संशयः । शोषमेष्यति दुर्धर्षा प्रमदा विधवा यथा ॥**" बस ठीक वैसाही उन्होंने किया ।

९ (क) 'भूमिजा दुःख' इति । श्रीजानकीजीका क्या दुःख देखा जिससे रोष उत्पन्न हुआ ? शत्रु रावणके अधीन रहने तथा एकमास बीतनेपर राक्षसके हाथों वध किये जानेकी चिन्तासे और रामविरहानलमें सदा जलती रहनेके कारण वे अत्यन्त दुःखी थीं । उसपरभी पिशाचिनी-वृन्द दिनरात सताती रहती थीं । दुःसह वचन कहा करती थीं । ये दुःख तो इन्होंने पेड़पर बैठे बैठे स्वयं आँखों देखा था । वही इनके हृदयको जलाता रहा । आपने श्रीरघुनाथजीसे कहाभी है, '**सीता कै अति बिपति बिसाला । बिनहिं कहे भल दीनदयाला ॥ निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति ।**' (सुं०)

(ख) 'भूमिजा' नामभी यहाँ सार्थक है । भाव कि पृथ्वीसे उत्पन्न होनेके कारण वे पृथ्वीके समानही क्षमाशील हैं । वे राक्षसियोंको पीड़ा पहुँचाना कब स्वीकार कर सकतीं ? वाल्मीकीय रामायण इसका प्रमाण है । रावणवधके पश्चात् जब हनुमान्‌जीने उन निशाचरियोंके चित्रवधकी आज्ञा माँगी कि जिन्होंने उनको निरंतर सताया था, तब उनके ऐसे पोच विचारपर श्रीजगज्जननीजीने उनको कैसा झिड़का है यह पढ़नेही योग्य है । हम यहां केवल दो तीन श्लोक उद्धृत करते हैं । वाल्मी० रा० युद्धकांड ११३ श्लोक ४३-४४ । यथा, "**न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् । समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चरित्र भूषणाः ॥ पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा । कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराधयति ॥ लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम् ।**

कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥ " श्रेष्ठ पुरुष दूसरोंकी बुरायी करनेवाले पापियोंके अपराध नहीं ग्रहण करते । वे बदलेमें उनका अहित नहीं करना चाहते । इस उत्तम आचारकी सदा रक्षा करनी चाहिये । क्योंकि उत्तम आचारही सत्पुरुषोंका भूषण है । पापी हो या पुण्यात्मा अथवा वधके योग्य अपराध करनेवालेही क्यों न हो, उन सबोंपर श्रेष्ठ पुरुषको दया करनी चाहिये । क्योंकि ऐसा कोईभी नहीं है जिससे कभी अपराध होताही न हो । जो लोगोंकी हिंसाहीमें सुख मानते और सदा पापकाही आचरण करते हैं, उन क्रूर स्वभाववाले पापियोंकाभी कभी अहित नहीं करना चाहिये । " इससे हमें श्रीजानकीजीके परम विशद क्षमाशील स्वभावका परिचय मिलता है । किसी आचार्यने क्या अच्छा कहा है, " मातर्मैथिलि राक्षसी स्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया । रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता ॥ काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः । स नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मकी ॥" पुनः, भाव कि रावणादि भूमिपर भार स्वरूप थे । पृथ्वी इनके अत्याचारोंसे दुःखी थी । भूमिजा होनेसे इन्हेंभी माताके दुःखसे दुःख था । अतएव भूमिका भार उतार कर भूमिजाका दुःख हरनेकेलिये ' मंदोदरीकेशकर्षण ' चरित्र हुआ ।

(ग) ' अंतकृत जातना जंतुकृत जातुधानी ' इति । इसका अर्थ प्रायः टीकाकारोंने इस प्रकार किया है, ' जैसे यमराज कर्मफलभोगहेतु जीवजंतुओंको निर्दयी होकर दुःख देते हैं वैसेही हनुमान्‌जीने राक्षसियोंको दुःख दिया । ' (वै०) पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी कहते हैं कि ' यातनामें जो यंत्र बनता है वैसा बनाकर उनको कष्ट दिया ' । ' यमयातना जंतु ' अर्थात् नरकका प्राणी वा नरकका कीड़ा । ' यमयातनाजंतु बनाया ' का भाव यह है कि उनको वैसा दंड दिया जैसा यमराज नरकके प्राणियोंको देते हैं ।

(घ) यहां यह शंका हो सकती है कि " राक्षसियोंको उन्होंने कब दंड दिया ? क्योंकि उन्होंने तो जब दंड देनेकी आज्ञा माँगी तभी महान्

करुणाकी मूर्ति श्रीजानकीजीने उनको बहुत फटकार दिया था ? " इसका समाधान यह किया जा सकता है कि उनके पतियों पुत्रों इत्यादिको मारकर उनको विधवा बना दिया जिससे उनको यमयातनाकासा कष्ट हुआ। मिलान कीजिये, ' जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीर। ' (अ०) ' यातुधानी ' से ' मंदोदरी ' काही अर्थ कर लें। (टि० ६ देखिये।)

१० ' जयति रामायण श्रवन संजात रोमांच ' इति। (क) महाभारत वनपर्वमें हनुमान्‌जीने भीमसेनसे स्वयं कहा है कि मैंने भगवान् रामचन्द्रजीसे यह वर प्राप्त कर लिया है कि मुझे निरंतर आपका चरित सुननेको मिले। गंधमादन पर्वतपर देवांगनाएँ और गंधर्व आपको रामचरित सुनाते रहते हैं। जहां जहांभी आपका आवाहन होता है वहां वहां आप कथा सुनने जाया करते हैं। यथा, " गोष्पदीकृत वारीशं मशकीकृतराक्षसम्। रामायण महामाला रत्नं वन्देऽनिलात्मजम्॥ " (मूलरामायण मंगलाचरण)। पुनश्च; यथा, " यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृत मस्तकाञ्जलिम्। बाष्पवारि परिपूर्ण लोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥ " गोस्वामीजीको स्वयं इस बातका साक्षात् परिचयभी मिल चुका है जो इनके जीवनचरित्रका एक प्रधान अंग है। मूल गुसाइं चरितमें बाबा वेणीमाधवदासजीनेभी लिखा है।

(ख) ' संजात रोमांच ', ' लोचन सजल ', ' शिथिलबानी ' इन विशेषणोंसे उनको श्रीरामचरितका मन कर्म वचनसे अनन्य प्रेमी जनाया। प्रेम हृदयमें नहीं समाता, बाहर अश्रु और रोमांचादि रूपसे प्रकट हो जाता है। आगे ' रामपदपद्ममकरंद मधुकर ' विशेषण देकर बताते है कि आप चरितकेही प्रेमी नहीं हैं, श्रीरामजीके रूपमाधुरीकेभी अनन्य रसिक हैं। श्रीराम पद ' कमल ' है, अनुराग उसका 'मकरंद' है, जिसे अन्य भ्रमरकी तरह पान करते हैं।

११ (क) ' रामपद पद्म मकरंद मधुकर ' इति। चरणकमलके मकरंदरसके रसिक भौंरे कहनेका भाव कि आप श्रीरघुनाथजीके चरणोंका चिंतवन अहर्निशि निरंतर किया करते हैं। (ख) ' शरण शूलपानी '

इति। 'शूलपाणि' नाम महादेवजीका है। अंतमें यह नाम देकर हनुमान्‌जीका रुद्रावतार होना जनाया। पुनः, शूलपाणि संबोधन देकर कवि अपने समस्त शूलोंसे वा त्रयः शूलसे आपकेद्वारा अपनी रक्षा चाहते हैं। यथा, 'त्रयः शूल निर्मूलिनं शूलपाणिं।' अथवा, यहां 'शूल' हाथमें लिये हुए हनुमान्‌जीके किसी विग्रहविशेषकी वन्दना है, इससे 'शूलपाणी' संबोधन दिया।

३० [१३] राग–सारंग

जाके गति है हनुमान की।
ताकी पैज[1] पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की॥
अघटित घटन[2] सुघटबिघटन[3] ऐसी[4] बिरुदावलि[5] नहिं आनकी।
सुमिरत संकट सोच बिमोचनि[7] मूरति मोदनिधान की॥
ता पर सानुकूल गिरिजा हर लखनु रामु अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपा बिलोकनि खानि सकल कल्यान की॥

शब्दार्थ—गति = पद ३ और पद १३ देखिये। पैज (सं० प्रतिज्ञा। प्रा० पतिज्ञा। पइजा) = प्रतिज्ञा, प्रण, टेक। पूजि आई = पूजना, (अकर्मक क्रिया है) पूरा होना, सम्मानित वा आदृत होना, पूरी होती आई। 'आई' से भूत और वर्तमान् दोनोंके साथसाथ भविष्यकामी बोध कराया है। रेखा = लकीर। रेखा कुलिस पषानकी = वज्रलेप (लिपि) एवं पत्थरकी लकीर अर्थात् अमिट, सदा सच्ची बनी रहनेवाली बात। वज्ररेख = अत्यंत दृढ़ और पुष्ट सिद्धान्त। अघटित घटन सुघट बिघटन =

१ पयज—रा०, डु०। २ घटनि। ३ बिघटनि—भा०, बे०, ज०, भ०। घटन, बिघटन—औरोंमें। ४ अस—मु०, ७४। असि—ज०। ऐसी (ऐसी) – औरोंमें। ५ बिरुदावलि—६६, रा०, भा०, बे०, मु०, दी०, वि०। बिरुदावली—डु०, भ०, वै०, ७४, ज०। ६ नहिं—६६, रा, भा०, बे०, मु०, दी०, वि०, डु०, वै०, भ०। न—ज०, ७४। ७ बिमोचनि—६६, रा०, भा०, बे०, भ०। बिमोचन—इ०, ज०, १५, ५१, ७४, आ०। (भ०) 'मूरति सोचबिमोचनी' है यह अन्वय होगा। 'मूरति' के संबंधसे 'बिमोचनि' ही शुद्ध है।

यथा, 'अघट घटना सुघट बिघटन।' पद २५ देखिये। बिरुदावलि = यशावली। पद २५ देखिये। बिलोकनि = कटाक्ष, चितवन, दृष्टिपात, देखनेकी क्रिया। खानि = खदान, उत्पत्तिस्थान, खज़ाना।

पद्यार्थ— जिसको (एकमात्र) श्रीहनुमान्‌जीकाही आशा भरोसा है, उसकी प्रतिज्ञा पूरी होती आयी यह सिद्धांत वज्र और पत्थरकी लकीरके समान अमिट है। १। जो न होनेवाली बात है उसको कर दिखानेवाले और जो खूब बना बनाया है, जिसके बिगड़नेकी संभावनाभी नहीं उसको बिगाड़ देनेवाले अर्थात् असंभवको संभव और संभवको असंभव कर देनेवाले, ऐसी बिरदावली दूसरेकी नहीं है। आनंदनिधानमूर्ति (श्रीहनुमान्‌जीकी) स्मरण करतेही (वह) संकट और सोचको छुड़ा देनेवाली है। २। जिसको हनुमान्‌जीकी गति है और जो उनका स्मरण करता है, *उसपर श्रीपार्वतीजी, श्रीशंकरजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजी और श्रीजानकीजी प्रसन्न रहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि कपिकी (श्रीहनुमान्‌जी) कृपादृष्टि समस्त कल्याणोंकी खानि है अर्थात् उनकी कृपासे सम्यक् प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति हो जाती है। ३।

टिप्पणी—१ (क) 'ताकी पैज पूजि आई॰ इति। यथा हनुमान् बाहुके 'देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ बापुरे बराँक और राजा राना राँक को। जागत सोवत बैठे बागत बिनोद मोद ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आँक को॥ सब दिन रूरो परै पूरो जहां तहां ताहि जाके है भरोसो हिय हनुमान् हाँक को।' 'पूजि आई' यह त्रैकालिक क्रिया है। भूत और वर्तमानके साथ साथ भविष्यमेंभी पूरी होनेकी सूचना दे रही है। सदा पूरी हुई, इस समयभी हो रही है और आगेभी पूरी होगी। 'ताकी' शब्दसे जनाते हैं कि प्रतिज्ञाभी उन्हींके

---

*अर्थान्तर—१ 'ऐसी शक्ति कहते है कि मोदनिधान हनुमान्‌जीकी जो मूर्ति है उसपर'। (वै०) २ 'इनपर'। (वि०) ३ 'उनको स्मरण करनेवाले पर'। (दी०) ४ 'सब प्रकारके कल्याणोंकी खान श्रीहनुमान्‌जीकी कृपादृष्टि जिसपर है उसपर'। (पोद्दारजी)

भरोसे की गयी हो। इसका सम्बंध 'जाके गति है हनुमानकी' से है। (ख) 'रेखा कुलिश पषानकी' इति। इसका अर्थ इस प्रकारभी कर सकते हैं कि यह पत्थरपरकी वज्रलीक है वा यह वज्रसे खींची हुई पत्थरपरकी लकीर है। दीनजीने 'कठिन पत्थरकी रेखाके समान अमिट है' यह अर्थ किया है। 'कुलिश' से 'कठिन' का भाव ग्रहण किया है। (ग) 'रेखा कुलिश' की कहकर आगे उसका कारण बताते हैं 'अघटित घटन'। ऐसे बानेवाला कोई दूसरा देखने सुननेमें नहीं आता। क्योंकि ऐसा कोई दूसरा हैही नहीं।

२ (क) 'मूरति मोद निधानकी' इति। भाव कि हनुमान्‌जी आनंदका लयस्थान हैं, आनंदका आश्रय हैं, आधार हैं, आनंदसे परिपूर्ण भरे पात्र हैं, स्वयं आनंदरूप हैं और दूसरोंकोभी आनंद देनेवाले हैं। यथा, 'जयति निर्भरानंदसंदोह कपिकेसरी' (२९) 'सिद्ध सुर सज्जनानंद सिंधो।' (२७), बिबुधकुल कैरवानंदकारी', और 'सौमित्रि रघुनंदनानंदकर। (२५) (ख) 'सुमिरत संकट सोच बिमोचनि' इति। भाव कि जहां आनंदही आनंद हैं उस आनंदसमुद्रमें प्रवेश करतेही प्राणी आनन्दमय हो जाता है। तब संकट सोच रहही कैसे सके? श कृत, हिंसक पशु पक्षियोंकृत, शरीरव्याधिकृत इत्यादि प्रकारकी आपत्ति 'संकट' है।

३ (क) 'तापर सानुकूल गिरिजा हर' इति। भाव कि आपके कृपा-पात्रको ये सब बातें प्राप्त हो जाती हैं। बाहुकमेंभी यही बात कही है। यथा, 'सानुग सगौरि सानुकूल सूलपानि ताहि लोकपाल सकल लखन राम जानकी। बालक ज्यों पालि हैं कृपाल मुनि सिद्धताको जाके हिय हुलसति हाँक हनुमानकी॥' जिसको हनुमान्‌जीका आशाभरोसा है उसपर सबकृपा करते हैं। यहाँ 'तृतीय तुल्ययोगिता' अलंकार है। (ख) माताकी दया पिता आदिसे अधिक होती है। इसीलिये 'गीरजा' और 'जानकी' को आदि अन्तमें रक्खा। जिनपर ये अनुकूल हों उनका लोक और परलोक दोनों बना बनायाही है। भगवान् शङ्कर लौकिक समस्त वैभवके दाता हैं और अपनी पुरीमें श्रीरामपदप्राप्तिभी देते हैं। यही क्रम बाहुकमेंभी है जो यहां है। पद ३१, ३२ भी देखिये।

गोस्वामीजीके गेय अमर काव्य और जीवन काव्योंमें (जीवनचरित) श्रीहनुमान्‌जीकी प्रधानता है। उन्हींकी कृपा और भरोसेका अवलंबन तुलसीदासजीको सदैव रहा। उनको (तुलसीदासजी) हनुमान्‌जीका पूर्ण भरोसा था, यह उनकी जीवनीसे स्पष्ट है। बालक 'रामबोला' (तुलसी) को अनाथावस्थामें माता पार्वती और शिवका साहाय्य प्राप्त होना श्रीहनुमान्‌जी-की कृपाका फल है। श्रीरामजानकीजीके समयसमयपर दर्शन उन्हींकी कृपासे हुए। इन सब बातोंको तुलसीदासजीने कृतज्ञतापूर्वक इस पदमें स्वीकार किया है। (दे० द० शर्मा)

पद ३० और पद ३१ में श्रीहनुमान्‌के अनन्याश्रित होनेका फल आश्रितकी महिमाका तथा हनुमान्‌जीके नाम, रूप और यशके स्मरण एवं गानका प्रभाव गाया गया है।

३१ [१२] राग-सारंग [गौरी ७४]

ताकिहै तमकि ताकी ओर को।
जाकें[1] है सब भाँति भरोसो कपि केसरी किसोर को ॥१॥
जनरंजन अरिगनगंजन मुखभंजन खल बर[2] जोर को।
बेद पुरान प्रगट पुरुषारथु सकल सुभट सिरमोर को ॥२॥
'उथपे थपन[3] थपे उथपन' पन[4] बिबुध बृंदबंदिछोर[5] को।
जलधि लँघि दहि लंक प्रबल दल[6] दलन निसाचर घोर को ॥३॥

---

१ जाकें—६६, रा०। जाके—भा०, बे०, ह०, प्र०, ज०, १५, दी०। जाको—५१, ७४, आ० (दी०)। २ बल—शि०, मु०, भ०। ३ उथपे थपना—६६। उथपे थपन—प्रायः औरोंमें। थपै उथपन—६६। थपे उथपन—रा, भ०, बे०, प्र०, ह०, भ०, दी०, वि०,। थप्यौ उथपन—डु०, टी०। थप्यो उथपन—वै०, मु०, ७४। थप्यो थापन—५१। उथपै=उथपे हुएको। थपै=थपे हुएको। ४ पन—६६, रा०, भा० (मूलमें 'करि' है, हाशियेपर 'पन' है। आ०। करि—बे०, प्र०, ज०, ७४। थिर—ह०। ५ ७४ में 'बिबुधन्ह बन्दीछोर' पाठ है। औरोंमें उपर्युक्त पाठ है। ६ बल—रा०, मु०।

जाको बालबिनोद समुझि दिन[7] डरत दिवाकर भोर को।
जाकी चिबुक चोट चूरन कियो[8] रद मद कुलिस कठोर को ॥४॥
लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन कोर को।
सदा अभय जयमय[9] मंगलमय जो सेवकु रनरोर को ॥५॥
भगतकामतरु नामु राम परिपूरन चंद चकोर को।
तुलसी फल चारयो[10] करतल जसु गावत गईबहोर को ॥६॥

शब्दार्थ—ताकि है = ताकेगा, देखेगा। तमक = जोश, तेहा, क्रोधभरी दृष्टि। तमकना = क्रोधका आवेश दिखाना, क्रोधके मारे उछल पड़ना। किसोर (किशोर) = बच्चा, बालक, पुत्र। बरजोर (बल+जोर) = प्रबल, ज़बरदस्त। यथा, 'ते रन रोर कपीस किसोर बड़े बर जोर परे फग पाए।' (क०) सिरमोर = शिरोमणि, सिरमोर, सिरताज। यथा, 'सहज सलोने राम लखन ललित नाम जैसे सुने तैसेई कुवँर सिरमोर हैं।' मौर=यह एक प्रकारका शिरोभूषण है जो ताड़पत्र या खुखड़ी आदिका बनाया जाता है। यह साधारणसे लेकर बहुत लागततकका बनता है। पन्ना, पन्नी, मुक्तामणि जटितभी बनता है जो बड़े आदमियों, राजाओं महाराजाओंकेलिये बनाया जाता है। विवाहमें वर (दूलह) सिरपर धारण करता है। यह विवाहसमयका मुकुट है।

---

७ दिन–६६, रा०, ज०। जिय–भा०, बे०, इ०, ५१, ७४, १५, आ०। दिन=नित्यप्रति। यथा, 'दिन देत दयें बिनु बेद बड़ाई मानी।' ८ कियो–६६, रा०, प्र०, इ०। किय–मु०, भा०, बे०, ७४, भ० बै०। किये–डु०, टी०। ९ मय ६६, रा०, इ०, १५ ('मय' का 'मुद' बनाया है।) मुद —७४, आ०, १५। भा० में 'सदा सो अभय मोद' पाठ है और बे० में 'सदा अभय जय मुद' था, उसका 'सदा सु अभय मोद' बनाया गया है। ज० में 'सदा अभय जै जै' है। १० चारयो–६६, रा०। चरिउ–प्र०, १५। चारो–भा०, बे०, ज०, ५१, ७४, आ०। चारयो–चारोही।

गंजन = नाशक। पुरुषारथु (पुरुषार्थ) = पराक्रम। इसका अर्थ 'प्रेमाभक्ति' भी है। यथा, 'पुरुषैरर्थ्यते प्राप्यते इति पुरुषार्थः फलम्' अर्थात् सब साधनोंका अंतिम फल। उथपना (सं० उत्थापन) = उठाना, उखाड़ना, उजाड़ना। उथपै = उखड़े वा उजड़े हुएको। उथपन = उखाड़ने या उजाड़नेवाले। यथा, 'तेरे थपे उथपै न महेस थपै थिर को कपि जे घर घाले।' (बाहुक), 'उथपे तेहि को जेहि राम थपै थपिहै पुनि को जेहि वै टरि हैं।' थपना (सं० स्थापन) = स्थापित करना, जमाना। थपन = स्थापन करनेवाले। बंदि (सं० बंदिन्) = क़ैद, कारागारनिवास, क़ैदी। लंघि = फलाँग-मारकर पार करके, लाँघकर। बालविनोद = बालकेलि; बच्चोंका खेल वा दिल बहलावा। पद २५ 'कपिकेलि' देखिये। दिन = प्रति दिन। भोरको = प्रातःकालके। चिबुक = ठोढ़ी। चोट = प्रत्याघात। रद = दाँत। यथा, 'रदपट फरकत नयन रिसौ हैं'। चूरन = चूर्ण करना, धूलमें मिला देना, दूर करना। कुलिस रद = अंकुरकी तरह निकली हुई नुकीली वस्तु जो बहुतोंके साथ एक पंक्तिमें हो जिसे दाँत या दंदाना कहते हैं, जैसे आरी, कंघी, इत्यादिमें होते हैं। इनसे आक्रमण करने, पत्थर आदिको तोड़ने इत्यादिका काम लिया जाता है। वज्र पर्वतोंको चूर्ण कर डालता है। यही उसका 'मद' है कि मैं कठोरसे कठोर वस्तुकेभी टुकड़े टुकड़े कर डालता हूं। बिलोकिबो = दृष्टि। अनुकूल बिलोकिबो = कृपादृष्टि, प्रसन्न चितवन, कृपावलोकन। कोर (सं० कोण) = किनारा, कोना। रनरोर (रण+रोर) कोलाहल, रौला मचानेवाले, दुर्दमनीय, रणमें क्रूर स्वभाव एवं दुर्दमनीय। यथा, 'देव बंदीछोर रनरोर केसरी किसोर जुग जुग जग तेरे बिरद बिराजे हैं।' (बाहुक) यथा, 'वैं रन रोर कपीस किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए।' (क०), 'कुलिस कठोर तन जोर परे रोर रन करुनाकलित मन धारमीक धीरको' (बाहुक)। परिपूरन (परिपूर्ण) = पूर्णिमाका चन्द्रमा जो सोलहो कलाओंसे युक्त होता है। चारयो = चारोही। करतल = हथेली।

गईबहोर = गई (खोई हुई) वस्तुको बहुरा देनेवाले। बहुराना, बहोरना = लौटवा देना; फिरसे दिलवा देना।

पद्यार्थ—जिसको सब प्रकार केसरी वानरके पुत्रका (श्रीहनुमान्‌जी) भरोसा है, उसकी ओर तेहेसे कौन ताक सकता है? किसीकी मजाल नहीं जो ऐसा कर सके। १। भक्तोंके आनंददाता, शत्रुवृंदके विनाशक और बलवान दुष्टोंके मुखोंके तोड़नेवाले, समस्त सुभटोंके सिरताज श्रीहनुमान्‌जीका (यह) पुरुषार्थ§ वेदोंपुराणोंमें विख्यात है। २। 'उथपै थपन थपै उथपन पन†' (उजड़े हुएको बसाना और बसे हुएको उजाड़ देना) देववृंदबंदीछोर श्रीहनुमान्‌जीका यह प्रण है। एवं 'उथपै थपन थपै उथपन' प्रणवाला और देव वृन्दको कैदसे छुड़ानेवाला कौन है? समुद्रको लाँघकर लंकाको जलाकर भयंकर निशाचरोंके प्रबल दलका नाश करनेवाला कौन है?* अर्थात् हनुमान्‌जीही तो हैं। ३। जिसकी बालकेलिको सोच सोचकर आजभी नित्यप्रति प्रातःकालके सूर्य डरते रहते हैं, जिसके ठयोढ़ीके प्रत्याघातने कठोर वज्रके दातोंके मदको नष्ट कर दिया। ४। लोकपाल (जिसके) नेत्रके कोरकी कृपावलोकनकी चाह करते हैं, (ऐसे) रणमें दुर्दमनीयका (श्रीहनुमान्‌जी) जो सेवक है, वह सदा निर्भय, जयमय (अर्थात् जयका रूप, सदा विजयी) और मंगलमय है। ५। श्रीरामरूपी पूर्णचन्द्रके चकोर (अर्थात् अनन्य प्रेमी) श्रीहनुमात्‌जीका नाम भक्तोंकेलिये कल्पवृक्ष है। तुलसी-

§ 'पुरुषार्थ' का दूसरा अर्थ 'प्रेमाभक्ति' लें तो अर्थ होगा कि 'हनुमान्‌जीके हृदयमें श्रीरामप्रति जो प्रेमाभक्ति है वह वेदपुराणमें प्रकट है।' पर यहां वास्तवमें वीरताका प्रकरण चल रहा है। इससे उपर्युक्त अर्थ विशेष संगत है।

† 'पन' का अन्वय तीनोंके साथ करकेभी अर्थ कर सकते हैं।

* 'को' का अर्थ 'कौन' करनेसेभी अर्थ ठीक बन जाता है। 'बरजोर' को हमने 'खल' का विशेषण माना है। ऐसा करनेसे हनुमान्‌जीके पराक्रमकी उत्कृष्टता बढ़ जाती है।

दासजी कहते हैं कि गईबहोर श्रीहनुमान्‌जीका यश गान करनेसे चारोंही फल हथेलीमें आ जाते हैं। ६।

टिप्पणी—१ 'ताकि है सब भाँति भरोसो' इति। कोई तिरछी क्रोधभरी दृष्टिसे देख नहीं सकता। पर इसकेलिये शर्त यह है कि 'सब भाँतिसे' उनका भरोसा हो। यह नहीं कि फिर अन्य देवादिकामी भरोसा हो, औरोंकोभी मनाता फिरे, 'सब भाँति' का भाव कि अनन्यगति हो, एकमात्र हनुमान्‌जीका आशा भरोसा रखता हो, मन कर्म वचनसे इन्हींकी शरण रहे। यथा, '**लोक परलोकको बिसोक सो तिलोक ताहि तुलसी तमाहि कहि कहा बीर आनकी। केसरी-किसोर बंदीछोरके निवाजे सब कीरति बिमल कपि करुनानिधानकी॥ बालक ज्यों पालिहैं कृपाल मुनि सिद्ध ताको जाके हिय हुलसति हाँक हनुमानकी॥**' कोई ताक नहीं सकता, यह कहकर उसका कारण उत्तरार्धमें बताते हैं कि उसे "कपि केसरीकिसोरका भरोसा है"। 'केसरी' शब्द श्लेषालंकारसे दो अर्थ दे रहा है। केसरीकिशोर = केशरी वानरके पुत्र और सिंहकिशोर। आपको सिंह-किशोर कहकर आश्रितके शत्रुओंको 'गजगण' जनाया। गजगणको देखकर सिंहके बच्चेको उनके मस्तक विदीर्ण करनेका अधिक चाव होता है। यथा, '**मनहु मत्त गजगन निरखि सिंहकिसोरहि चोप।**' (बा०)। मिलान कीजिये, '**बारिदनाद अकंपन कुंभकरन्नसे कुंजर केहरि बारो।**' (बाहुक) आगेके चरणोंमें औरभी कारण बताते हैं। '**जाके है सब भाँति भरोसो**'। इसका संबंध सब तुकोंसे है।

२ (क) 'मुखभंजन खल बरजोरको' इति। शत्रुभी उनकी प्रशंसा करते हैं। यथा, '**बड़ो बिकराल बेष देखि सुनि सिंहनाद उठ्यो मेघनाद सविषाद कहै रावनो। बेग जीत्यो मारुत प्रताप मार्तंड कोटि कालऊ करालता बड़ाई जीत्यो बावनो।**' (क०) मिलान कीजिये, "**कौनकी हाँक पर चौंक चंडीस बिधि चंडकर थकित फिरि तुरंग हाँके। कौन के तेज बल सीम भट भीमसे भीमता निरखि कर नयन ढाँके॥ दास तुलसीसके बिरुद बरनत बिदुष बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके। नाक नर लोक पाताल कोऊ**

कहत किन कहां हनुमान से बीर बाँके ॥" (क०) 'मुखभंजन', इति। यथा, 'अच्छबिमर्दन कानन भानि दसाननआनन भाननिहारो।' (बाहुक) यह मुहावरा है।

(ख) 'सकल सुभट सिरमोर को' इति। यथा, 'पंचमुख छमुख भृगुमुख्यभट असुर सुर सर्ब सरि समर समरत्थ सूरो। बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली बेद बंदी बदत पैज पूरो॥' (बाहुक) रामाश्वमेधयज्ञमें जब वीरमणिके पुत्र चंपकने घोड़ा पकड़ लिया तब वीरमणि और अश्वरक्षक शत्रुघ्नजी तथा उनकी सेनासे घोर युद्ध हुआ। उससमय वीरमणिकी सहायताकेलिये स्वयं शिवजी सारे परिवार और गणोंसहित युद्ध करने आये थे। श्रीहनुमान्‌जीने सबसे युद्ध किया। अन्तमें जय इन्हींकी हुई। पद २७ टि० ३ (ग) में 'भटचक्रवर्ती', पद २८ टि० १ (ग) में 'बलबिपुल' देखिये। औरभी मिलान कीजिये, 'लोक परलोकहू तिलोक न बिलोकियत तो सो समरत्थ चख चारिहू निहारिये। कर्मकाल लोकपाल अग जग जीव जाल नाथ हाथ सब निज महिमा बिचारिये॥' 'बाँकी बिरुदावली बिदित बेद गाइयत रावन सो भट भयो मुठिका के घायको।' (बाहुक)

३ (क) 'उथपे थपन थपै उथपन पन' इति। पद २५ टि० १३ (ख) एवं शब्दार्थमें 'अघट घटना सुघट बिघटन' में देखिये। दोनोंके एकही भाव हैं। 'उथपे थपन' का भाव बाहुकके "तेरे थपे उथपै न महेस थपै थिर को कपि जे घर घाले। तेरे निवाजे गरीबनिवाज बिराजत बैरिनके उर साले।' इस पदमेंभी है। भाव कि जिसको आप एक बार स्थापित कर देते हैं, जिसपर आपकी कृपा हो जाती है उसको फिर शिवजीभी नहीं उजाड़ सकते, उसका अनिष्ट नहीं करते और जिस बने बनाये घरको आपने उजाड़ा फिर किसीका सामर्थ्य नहीं कि उसे पुनः जैसाका तैसा कर दे।

प्रथम 'उथपे थपन' कहा, तब 'थपै उथपन।' क्योंकि बिगड़ेको बनानेमें अधिक यश है। बनेको बिगाड़नेमें वह यश नहीं है। दूसरे चरित्रक्रमानुसार यहां तीनों बातें कही गयी हैं। पहले सुग्रीवजी 'गत-राज्यदातार' हुए। वे उजड़े हुए। यथा, 'रिपु सम मोहि मारेसि

अति भारी। हरिलीन्हेसि सर्बसु अरु नारी॥ ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥ इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहौं मन माहीं॥' (कि०) बालिका बध कराके इनको स्थिर जमा दिया। फिर बने हुए रावणको नष्ट करके देवताओंको छुड़ाया।

यहांतक उपरके संबंधकी कड़ी वा लड़ी चली आयी। ऐसे कपिकेसरीकिशोरके आश्रितपर कोई क्रूर दृष्टिसे नहीं ताक सकता। आगे कहते हैं कि इनका सेवक सदा निर्भय, जयमय और मंगलमय है।

(ख) 'बिबुधबृंदबंदिछोर' इति। देववृंद रावणके बंदीखानेमें थे। यथा, "बेद लोक सबै साखी काहूकी रती न राखी रावनकी बंदि लागे अमर मरन।", "साहसी समत्थ तुलसी को नाह जाकी बाँह लोकपालनीको फिरिफिरि थिर थल भो।" (बाहुक) "पन बिबुधबृंद बंदिछोरको।" 'बिबुधबृंद बंदीछोर' आपका बिरद है। यथा, "बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई।" (३५) देववृन्द बंदिछोर येही हैं, ऐसा कहनेका कारण आगे कहते हैं कि ये न होते तो 'जलधि लंघि' यह कौन कर सकता?

(ग) 'प्रबल दल दलन निसाचर घोर को' इति। यथा, "जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाये। ते रन रोर कपीस किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए।" (क०) इससे उनका प्राबल्य और करालता स्पष्ट हो जाती है।

(घ) "बालबिनोद" इति। यहाँ बालविनोदसे जन्मतेही जो बालकेलिसे सूर्यको लाल फल समझकर लेनेको लपके थे, उस चरितकी ओर संकेत है। उससमय पृथ्वीसे सूर्य मण्डलतकका रास्ता आपकी एक फलाँगसेभी कम निकला। वहाँतक एक फलाँगसे कममें पहुँचना, सूर्यके तेजको ढक लेना, फिर राहुको पकड़नेको दौड़ना और ऐरावतपर झपटना इत्यादि वानरस्वभावका आपका खेल था। यथा, "बानर सुभाय बालकेलि भूमि भानु लगि फलगु फलागहू ते घाटि नभतल भो", "तेरी बालकेलिबीर सुनि सहमत धीर भूलत सरीर सुधि सक्र रबि राहुकी।" (बाहुक)

(ङ) 'दिन डरन' इति। भाव कि उस बालविनोदका इतना गहरा भय हृदयमें समा गया है कि उदय होते समय अबतक डरते रहते हैं कि कहीं हनुमान्‌जी ग्रास करने तो नहीं आते। इससे हनुमान्‌जीका तेज और प्रताप दिखाया कि 'तेजप्रतापरूपरसराशि सूर्यभी आपका स्मरण आतेही काँप उठता है।' इसीका नाम प्रताप है।

४ 'जाकी चिबुक चोट चूरन कियो रद मद' इति। वज्रभी आपका कुछ न कर सका। उलटे आपकी ठयोढ़ीके प्रत्याघातसे उसकेही दाँत कुंठित हो गये, झड़ गये। उसका शत्रुशालन अभिमान मिट्टीमें मिल गया। आपने उसके दाँत खट्टे कर दिये। पद २५ टि० ४ (ग) '**राहुरबि सक्र पबि गर्ब खर्बीकरन**' देखिये। तात्पर्य यह है कि आपका शरीर जन्मसेही वज्रसेभी अधिक कठोर और पुष्ठ था। आपको किसी शत्रुसे आघात नहीं पहुँच सकता और न अपनी रक्षाकेलिये दूसरेकी सहायताकी आवश्यकताही आपको कभी हो सकती है।

५ (क) 'लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत' इति। बिलोचन कोर अनुकूल बिलोकिबो' का भाव कि किंचित्‌ही कृपाकटाक्ष चाहते हैं। उतनेसेही उनका काम बन जायगा। तब जो उनका सेवक है, जिसपर उनकी स्वतः कृपा है, उसके 'सदा अभय जयमय मंगलमय' होनेमें संदेहही क्या ? दूसरा अर्थ यहभी हो सकता है कि "रणरोर हनुमान्‌-जीके सेवकके कृपाकटाक्षकी चाह लोकपालतक करते हैं।"

(ख) 'भगतकामतरु नाम' इति। यथा, '**बामदेव रूप भूप रामके सनेही नाम लेत देत अर्थ धर्म काम निर्बान हो।**' (बाहुक)

(ग) 'रनरोर' इति। श्रीखाकी बाबा (मारीताल, प्रान्त बलिया निवासी)का कहना है कि "मारीतालके महाबीर श्रीगोस्वामीजीके पधराये हुए हैं जिनका नाम 'रणरोर' है। यह बंदना उन्हीं हनुमान्‌जीकी है।"

श्री देवदत्तशास्त्रीजीका मत है कि "यह पद उस समयका परिचायक है जब दिल्लीके अधीश्वरके पार्षदोंने तुलसीदासको शाही दरबारमें सम्मानित होनेका प्रलोभन दिया था। उसके जबाबमें श्रीअञ्जनीनंदन-शरण तुलसीदासजीने निर्भय निस्पृह होकर कहा था कि 'हम हैं चाकर

रामके पढ़ौ लिख्यौ दरबार तुलसी अब का होहिंगे नर के मनसबदार ॥' संभव है इसको सुनकर गोसाईंजीके श्रद्धालुओंमेंसे अकबरके कृपापात्र मानसिंहने कुछ विभीषिकाकी आशंका बतलायी होगी। तभी महावीरसेवीके मुँहसे यह स्पष्ट ध्वनि निकल गयी होगी कि 'ताकि है तमकि ताकी ओर को।'

३२ राग बिलावल

ऐसी तोहि न बुझिए हनुमान् हठीले।
साहेब[1] कहूँ न राम से[2] तोसे[3] न उसीले[4] ॥ १ ॥
तेरे देखत सिंघ[5] के सिसु मेंढुक लीले।
जानत हों कलि तेरेउ[6] मनु[7] गुनगन कीले ॥ २ ॥
हांक सुनत दसकंध के भये[8] बंधन ढीले।
सो बलु गयो किधों भये[9] अब गर्ब गहीले ॥ ३ ॥
सेवक को परदा फटै तू[10] समरथ सीले।
अधिक आपुतें आपनो सुनि[11] मानि[12] सहीले ॥ ४ ॥

---

१ साहिब–रा०, मु०। साहब–डु०, वै०। साहेब–प्रायः औरोंमें। २-३ से तोसे–५१, आ०। सो तोसे–रा०। सो तोसो–ज०। से तुमसे–भा०, बे०, ह०, ७४, प्र०। ४ उसीले–रा०, भा०, बे०, ह०, भ०, वि०। वसीले–डु०, वै०, ७४, मु०, दी०। ५ सिंघ–रा०, भा०, बे०, भ०। ६ तेरेउ–रा०, ज०। तेरेऊ–भ०, मु०, ७४, दी०, भा०, बे०, ह०, १५, ५१। तेरोऊ–डु०, वै०, टी। ७ मनु–रा०, मु०, भ०, डु०, वै०, ज०, दी०। मनो–भा०, बे०, ह०, १५। उर महं–५१। ८ होत–रा०, ज०। भये–औरोंमें। ९ भये–ह०, डु०, वै०, ७४, दी०, वि०। भय–१५। भयो–रा०, भा०, बे०, ज०, मु०, भ०। १० तू–रा०, ज०, आ० (मु०)। तुम–भा०, बे०, मु०, प्र०, ७४। तुं–ह०, १५। ११ सुनि–रा०, भा०, बे०, ज०, ७४, आ०। १२ मानि–रा०, भा०, ह०। मान–बे०, ज०, आ०। ह० में, 'सनमानि' है, प्र० में, 'सनमान' है और ७४ में 'सुनि मानस हीले' है। वीरकविजीने 'स' को 'मान' के साथ मिलाकर यह पाठ

सासति तुलसीदासकी देखि[१३] सुजस तुही ले।
तिहूँ काल तिन्हको भलो जे[१४] राम रँगीले ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—बूझिए = चाहिये। यथा, 'सपनेहु बूझिय बिपति कि ताही।' (सुं०) हठीले = दृढ़ प्रतिज्ञा। संकल्पको पूरा करनेवाले; हठी। उसीले (वसीला) = ज़रिया, बीचमें पड़नेवाला, सई सिफ़ारिश करनेवाला। मेढुक (सं० मंडूक) = एक जलस्थलचारी जंतु जो तीन चार अंगुलसे लेकर एक बालिश्ततक लंबा होता है। मेंढक, दादुर। कीले = कीलना, किसी मंत्रद्वारा किसी अन्य मंत्रकी शक्ति तथा उसके प्रभावको संकुचित करना, कुंठित करना, बाँध देना, मंत्रित यंत्रित करना। लीलना = निगलना; बिना दाँतोंसे कुचले खा जाना। हाँक (हुंकार) = लड़ाईमें धावा या आक्रमण करतेसमय गर्वसूचक चिल्लाहट, ललकार या गर्जन। यथा, 'भूमि परे भट घूमि कराहत हाँकि हने हनुमान हठीले' (क०), 'रजनिचर घरनि घर गर्भ अर्भक श्रवत सुनत हनुमानकी हाँक बाँकी।' बंधन = शरीरका संधिस्थान अर्थात् वह स्थान जहाँ दो या अधिक हड्डियाँ आपसमें मिलती हों, जोड़, जैसे कुहनी, घुटना, पोर आदि। सुश्रुतके अनुसार सारे शरीरमें सब मिलाकर दो सौ दस संधियाँ हैं। मोटी नसें जिनके कारण दो अवयव आपसमें जुड़े रहते हैं। भये बंधन ढीले = बहुत मार पड़नेसे एवं बहुत घबड़ा जानेसे शरीरके अंग अंगके जोड़ ढीले पड़ जाते हैं। उनसे कुछ कार्य करते नहीं बनता। जोड़ोंके ढीले पड़ जानेसे इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाती हैं, पुरुषार्थ घट जाता है। 'बंधन ढीले हो गये' अर्थात् उसका पुरुषार्थ जाता रहा, हिम्मत पस्त हो गयी, हवास

स्वीकार किया। प्रायः औरोंने 'मान (वा, मानि) सही ले' (सही मान ले) पाठ स्वीकार किया है। मानस हीले = मन हिल (दहल) जाता है। 'अधिक आपु तें आपनो' के साथ मानस हिलनेकी बात संगत नहीं जान पड़ती। १३ देखि–रा०, भा०, बे०, प्र० ज०, ह०, डु०, टी०। लखि–मु०, ७४। सुनि–५१, आ० ९ (डु०, मु०) १४–जो –७४, ज०।

उड़ गये, वह हार मान गया। गहीला = श० सा० में इसे हिंदी ' गहेला ' से बना हुआ माना है और ' गर्वीला, घमंडी, मदोन्मत्त ' इसके अर्थ दिये हैं। पं० रामकुमारजी और बाबू शिवप्रकाशजी आदिने 'ग्रहण कनेवाला' यह अर्थ किया है। इस तरह 'गर्वगहीले' गर्व ग्रहण करनेवाले, गर्वीले। गर्वगहीले भए=घमंड आ गया। 'गहीले' को 'गहरीले' का अपभ्रंश मान लें तो "गहरीला (भारी) गर्व हो गया" ऐसा अर्थ होगा। परदा=कपड़ा, टट्टी आदि कोई आड़ करनेवाली वस्तु जिससे सामनेकी वस्तु कोई देख न सके। परदा फटना यह मुहावरा है। छिपे हुए दोषोंका प्रकट हो जाना, बनी बनायी प्रतिष्ठाका जाता रहना, छिपे भेदका खुल जाना, इज्ज़त अब्रूका जाना। समरथ (समर्थ) = शक्तिमान्। आपु ते=अपने (अपनी आत्मा) से। आपनो=जो अपना हो; स्वजन; जिसमें अपना अपनपौ हो, सेवक। मानि सहीले=सही (सत्य) मान लो। मान लेना, स्वीकार करना। रँगीले=रंगे हुए। अनुरागी यह शब्द 'रज रंगे' धातुसे बना हुआ है।

पद्यार्थ— अरे हठीले हनुमान्! तुझे ऐसा न चाहिये†। न तो कहीं श्रीरामचन्द्रजीकासा (कोई) स्वामी (ही) है और न तुझसा सिफ़ारिश करनेवाला (ही कोई है)।१। तेरे देखते सिंहके बच्चेको मेढक (वा, मेंढकका बच्चा) निगले! (कैसे आश्चर्यकी बात है!) मुझे ऐसा जान पड़ता है मानो कलियुगने तेरेभी गुणगणोंको कील दिया है (उनके प्रभावको कुंठित कर दिया है।) ।२। (तेरी) ललकार सुनतेही दशकंधरके (रावण) श्वास उड़ गये थे। क्या वह बल कहीं चला गया? या कि अब भारी गर्व हो गया? ।३। सेवकका परदा फट रहा है, तू समर्थ है, उसे सी ले,* अपनेसे अपना (सेवक आश्रित) अधिक होता है, यह (बात) सुनकर सही

---

†अर्थान्तर—१ तेरी ऐसी समझ तो न चाहिये। (वि०) २ ऐसा आपको न समझना चाहिये।

*'समरथसीले' (अर्थात् सामर्थ्यशील) को एक शब्द मानकरभी अर्थ कर सकते हैं। परन्तु 'फटने' के सम्बन्धसे 'सी ले' अर्थही उत्तम जँचता है।

मान लो* ।४। जो रामरंगमें रंगे हुए हैं, उनका तीनों कालोंमें भलाही है। (हम रामसेवक हैं तो रामजी हमारा भला करेंगेही। पर मुझ तुलसीदासका कष्ट देखकर उसे दूर करनेका) सुयश तूही ले ले। (नहीं तो मेरा भला तो होगाही नहीं, पर तुमको यश न मिलेगा।) ।५।

टिप्पणी—१ इस पदसे स्पष्ट है कि श्रीमद्गोस्वामीजी हनुमान्‌जीके कैसे मुँह लगे भक्त थे। कली सता रहा है। आप विनयपर विनय करते जाते हैं। पर सुनवाई नहीं होती। अत; बिगड़कर 'तुकार' और 'रे' कारसे

*अर्थान्तर—१ "अपनेसे अधिक अपने दासका मान श्रीराम दरबारमें होता सुनकर आप सह लेते रहे हैं। क्योंकि आप भागवतशिरोमणि हैं। नहीं तो साधारण प्राकृति जीवोंका स्वभाव ऐसा नहीं होता। वे तो ईर्ष्या डाह करने लगते हैं। परन्तु आप सदा अपने आश्रितोंका अधिक सत्कार सुनकर परमानन्दको प्राप्त होते हैं। आपका यह स्वभाव लोक और वेदमें विदित है।" (ह०) २ "अपने सेवकका अपनेसे अधिक मान सुनकर, सह लेते थे। कैसाभी नीच हो पर यदि वह सेवक है, शरणमें आया है तो आप उसे अधिक मान, बड़ायी देते रहे है। यही जानकर मैंभी शरणमें आया हूँ (पर मेरा परदा फट रहा है।)" 'सहीले' का 'सह लेते थे' अर्थमें प्रयोग मुझे कहीं देखनेमें नहीं आया। ३ "पहले तेरा यह स्वभाव था कि अपने सेवकको अपनेसे अधिक सुनता, मानता और सहता था। पर अब क्या हो गया"? (भटजी) ४ "अपनेसे अपने सेवकको आप अधिक मानते हैं, उनका दुःख सुनकर मन चंचल हो जाता है।" (वीर) ५ "पहले तेरा स्वभाव था कि तू अपने सेवककी सुनता और मानता था।" (वि०) पंडित रामकुमारजी एवं दीनजीनेभी वही अर्थ किया है जो हमने किया है। मान सही ले अर्थात् सही मान ले। ६ "आपसे अपने अधिक हैं। मेरी विनय सुनि सही मान ले।" (पं० रा० कु०) ७ "क्योंकि यह बात सत्य है, इसे मान ले कि, स्वयं अपने डीलसे अपना सेवक अधिक होता है। अपनी अपेक्षा सेवककी प्रतिष्ठा रखना अधिक उचित है।" (दी०)

संबोधित करने लगे। परम भक्त श्रीनरसीजीनेभी ऐसाही किया है। यथा, "विमुख प्रसन्न भए तब तो उराहने दै नये नये चोज हरि सनमुख भाषियै। जाने ग्वालबाल एक माल गहि रहे हिये जिये लाग्यो एही रूप कह्यो लाख लाखियै॥ नारायण बड़े महा अहो मेरे भाग लिख्यो करै कौन दूर छबिपूर अभिलाषियै। मेरो कहा जाय आइ परसे कलंक तुम्हैं राखिये निसंकहार भक्त मारि नाखियै॥" (भक्तिरसबोधिनीटीका भक्तमाल) गोस्वामीजी अब तीन पद अपने कष्टके संबंधमें यहां लिखते हैं। ऐसे वचन एकांगी भक्त स्वामीका अपमान देखनेपर कहही डालते हैं, यह स्वाभाविक है।

बाबू शिवप्रकाशजी लिखते हैं कि, "बहुत काल भजन करते बीत गया। अपने विषयमें श्रीमहावीरजीका आविर्भाव न देख पड़ा। अतः कहते हैं कि तुम्हें ऐसा न चाहिये।" श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि "ऐसा स्वार्थी और कवियोंका सहज स्वभाव होता है। समर्थ उदार जानकर बहुत गुणगान किया। जब परिपूर्ण दान न पाया तब कूट सहित प्रशंसा करते हैं।" श्रीभट्टजी लिखते हैं कि "इस भजनसे यह स्पष्ट होता है कि गुसाईंजीको जब सेवा करते करते बहुत दिन हो गये और काम, क्रोध, लोभ, मोह अधिक सताने लगे और किसी भाँति चित्तकी शान्ति न हुई तब उन्होंने तंग होकर हनुमान्‌जीकोभी दो चार बुरी भली सुना दीं।"

पं० देवदत्तशर्माजी लिखते हैं कि (पद ३१ के अन्तिम नोटसे संबद्ध) "अन्ततः आशंका सत्य हुई। गोस्वामीजी करामत दिखानेकेलिये बुलायेही गये और इन्कार करनेपर बंदीगृहके अतिथि हुए। उस समय एकनिष्ठ सेवकके भाव उबल पड़ते हैं, अपना नहीं अपने स्वामीके अपमानको समझकर खीझ उठते हैं और कुछ खरी खोटीभी सुनाते है कि "ऐसी तोहि न बूझिए।" लेकिन् यह फटकार क्रोधावेशकी नहीं, भावावेशकी थी जिसमें वाणीका पूर्ण संयम था। तभी तो आगे कहते हैं, 'जानत हौं कलि तेरेउ मनु गुनगन कीले।' हनुमान्‌जी अपने पराक्रमको स्वयं नहीं जानते। यह जानकर दसकंधरके बंधन ढीले होनेका स्मरण दिलाते हैं। दसकंधरने स्वामीको बाँधा था और कलियुगी

दसकंधरने अब सेवकको बाँध रक्खा है। तुलसीदासजी सार्वभौम सम्रा_ श्रीरामके राज्यमें विचरण करनेवाले स्वतंत्र प्राणी थे। उन्हें बन्धन खल गया और खीझकर वे संकटमोचनसे कहते हैं, 'तेरे देखत सिंघके सिसु मेंढुक लीले।' इतनाही नहीं लोगोंकी दृष्टिमें परदा फट रहा है। उसे तू सी दे। कुछ चमत्कार दिखा दे। मेरी बातमें बट्टा न लगे। तू हर प्रकार समर्थ है। मैं तो सांसतिमें पड़ा हूँ। उसे दूर करनेका सुयश तूही ले ले। नहीं तो दीनानाथ भगवान् राम तो बंधन काटेंगेही।

तुलसीदासजीकी यह आर्तवाणी है। इसमें पूर्ण स्वाभाविकता टपकती है। आर्त मनुष्य क्या नहीं कह सकता! वस्तुतः तुलसीदासजी हनुमान्‌जीके विनयी एकनिष्ठ भक्त थे, मुंहलगे नहीं। इस आर्तवाणीका प्रायश्चित्त आगेके पदोंमें स्पष्ट किया गया है। 'अति आरत अति स्वारथी।' यह भक्तकी 'अपनहाई' का बहुत सुन्दर नमूना है।

२ 'हनुमान हठीले' इति। श्रीहनुमान्‌जी अपनी बातके पक्के हैं और धीर हैं। 'हठीले' विशेषण कवितावलीमें उनकेलिये अनेक बार आया है। यथा, "**तुलसी गजसे लखि केहरि ज्यों झपटै पटकै सब सूर सलीले। भूमि परे भट घूमि कराहत हाँकि हने हनुमान हठीले।२२।**" "**जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाये। लूम लपेटि अकास निहारि कै हाँकि हठी हनुमान चलाये।३७।**" "**लक्खमें पक्खर तिक्खन तेज से सूर समाज में गाज गने हैं। ते बिरुदैत बली रन बाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं।३९।**" भाव यह है कि शरणागत एवं जगत्मात्रका संकट हरनेको आप सदा तैयार रहते हैं, यह आपका विरद है। यथा, "**आरत की आरति निवारिबे को तिहूँ पुर तुलसी को साहिब हठीलो हनुमान भो।**" (बाहुक) अपना वह बिरद त्याग करना आपको उचित नहीं है। कलिसे मेरी रक्षा कीजिये।*

---

*भावार्थान्तर—१ "हठीले" संबोधनका भाव कि आपका स्वभाव हठी है, आप दूसरेके दुःखको किंचित् नहीं देखते समझते, अपना हठ तुम्हें प्रिय है।" (कु०) २ हठीले अर्थात् कैसाभी दुर्घट कार्य आ

३ (क) 'साहिब कहूं न राम से तोसे न उसीले' इति। भाव कि यदि कहो कि हम नहीं सुनते तो अन्यत्र चले जाओ। तो उसपर कहते हैं कि मैं जो बारंबार बिनंति कर रहा हूँ वह इसीसे कि 'साहिब कहूँ न'। यदि कहीं और ऐसा स्वामी और ऐसा वसीला (सिफ़ारशी) देख पड़ता तो अवश्य उसकी शरण लेता। पर ऐसा है ही नहीं; इससे लाचार हूँ।

(ख) 'तेरे देखत सिंघ के सिसु मेंढुक लीले' इति। अर्थात् तुम्हारे रहते ऐसा न होना चाहिये, इससे तुम्हारी अपकीर्ति होगी। मिलान कीजिये, 'तोहि जियत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ' [(आ०) शूर्पणखावचन] पुनः, भाव कि आपके इस कर्त्तव्यसे, आनाकानीसे मुझे बड़ी ग्लानि लगती है। यथा, "तोसे समत्थ को निवाजो आजु सीदत सुसेवक बचन मन काय को। थोरी बाहु पीरकी बड़ी गलानि तुलसी को कौन पाप कोप लोप प्रगट प्रभाउ को॥" (बाहुक), "तोसो समत्थ सुसाहिब सेइ सहै तुलसी दुःख दोष दवा से। बानर बाज बढ़े खल खेचर लीजत क्यों न लपेटि लवा से॥" यहां ललित अलंकार है। यहां श्रीरामजी सिंह हैं। †कलि वा कलिजनित पीड़ा वा सांसारिक सतानेवाले प्राणी मेंढक हैं। गोस्वामीजी सिंहके बच्चे हैं जो शिशुदास हैं। यथा, 'बड़ो बिकराल कलि-को को न बिहाल कियो माथे पग बली को निहारि सो निवारिये।' यहां 'असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा' अलंकार है। क्योंकि मेंढकका सिंहके बच्चेको निगलना असिद्ध आधार है। कलि हनुमान्‌जीके गुणगण कीलनेको समर्थ नहीं। यह अहेतुको हेतु ठहराया है।

४ (क) 'जानत हों कलि तेरेउ मनु गुनगन कीले' इति। 'तेरेउ' का भाव कि औरोंको तो कील डाला है, पर तुम्हारे गुणगणोंको न कील सका था। अब अवश्य संदेह होता है कि आपकोभी नहीं छोड़ा।

पड़ा आपने उसे बिना किये न छोड़ा। ऐसे उदार दयावंत होकरभी मेरे लिये सूम बने है। ऐसी समझ तुमको उचित नहीं। (वै०)

† 'हनुमान्‌जी सिंह है'। (वै०)

'मनु' अर्थात् मानो। भाव कि वास्तवमें ऐसा है नहीं, हमारा अनुमान वा संदेह मात्र है।

(ख) 'गुनगन कीले' इति। आपके गुणगणके प्रभावसे किसीका सामर्थ्य नहीं कि पास फटक सके, पर इतना गुणगान करनेपरभी कुछ प्रभाव आपपर नहीं पड़ रहा है, इसीसे अपना अनुमान कहते हैं। आशय यह है कि कलिकालमें किसी यंत्र मंत्रका प्रभाव नहीं चलता। पर आपके गुणगणके संबंधमें यह प्रसिद्ध है कि कलियुग कुछ नहीं कर सकता। परन्तु मुझे तो ऐसा जान पडता है कि कलिने आपके गुणगण-कोभी कील दिया है। क्योंकि मेरे इतनी विनय करनेपरभी आपने कुछ न सुना। मिलान कीजिये "सकृदपि स्मरतां तव पापिनां व्रजति पाप चय क्षयमित्यहम्। प्रतिदिनं निपिबामि वचोऽमृतं रघुपते वद किंतद् पार्थकम्॥" (भक्तकल्पद्रुम)

'गुणगण' जैसे कि 'तेजराशि, प्रतापी, रणरोर, रामभक्तरक्षक, शरणागतवत्सल, महाबल' इत्यादि जो पूर्व कह आये हैं, एवं 'हाँक सुनत' इत्यादि जो आगे कह रहे हैं।

वैजनाथजी लिखते हैं, "बनमें कोल किरातादि हिंसक जीवोंको कील देते हैं जिससे वे बेबससे हो जाते हैं, अपना स्वभाव भूल जाते हैं। वैसेही आप सिंह हैं। क्या आपको कलीकालने कील दिया है जिससे आप अपना बल और बानि भूल गये ? आपकी उदारता, दयालुता, वात्सल्य, सामर्थ्यपर छाप लगाकर मुहरबंद कर दिया कि ये काममें न लाये जावें!"

५ 'हांक सुनत दसकंध के भये बंधन ढीले' इति। हनुमान्‌जीको भृगु और अंगिरावंशीय ऋषियोंका शाप था कि जिस बलसे उन्मत्त होकर तू हमें कष्ट पहुँचाता है, वह तू बहुत कालतक भूला रहेगा। जब कोई तुझे तेरे बलका स्मरण करावेगा उसी समय तेरा बल बढ़ेगा।' (वाल्मी० उ०) पद २५ टि० ६ देखिये। इसीसे सीताशोधकेलिये सिंधुपार जानेकी समस्या आ पड़नेपर जाम्बवन्तजीने उनको उनके बलका स्मरण कराया था। वैसेही गोस्वामीजी यहां याद दिला रहे हैं कि एक दिन वह था कि आपकी ललकार सुनकर रावणके बंधन ढीले हो गये, उससे कुछ करते धरते न बना

जैसा कि लंकादहनसमय एवं लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेपर उठानेके समय इत्यादि प्रसंगोंसे स्पष्ट है। यथा, "जारत प्रचारि फेरि फेरि सो निसंक लंक जहाँ बाँको बीर तोसो सूर सिरताज है।" "बडो बिकराल बेष सुनि सिंहनाद उठ्यो मेघनाद सविषाद कहै रावनो।" "गाज्यो कपि गाज ज्यों बिराज्यौ ज्वालजालजुत भाजे बीर धीर अकुलाइ उठ्यो रावनो। ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो॥," "महाभटमुकुट दसकंध-साहस सैलशृंगबिद्दरनि जनु बज्र टाँकी। रजनिचर घरनि घर गर्भअर्भक स्रवत सुनत हनुमान की हाँक बाँकी।" (क० लं०); "कौनकी हाँक पर चौंक बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।," एवं "देखि पवनसुत धायेउ बोलत बचन कठोर।" "मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैलु जनु बज्र प्रहारा॥ अस कहि कपि लछिमन कहँ ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायउ॥" (लं०)

'हाँक सुनत' से जनाते हैं कि आप कैसे भारी निःशंक वीर हैं। आपकी ललकारमात्रकी यह धाक रावण ऐसे बाँके मानी वीरके हृदयमें जम गयी थी कि वह अकुला उठा, विषादयुक्त हो गया, उसका साहस टूट गया, तब आपके वास्तविक बल पुरुषार्थकी कोई तुलनाही नहीं हो सकती।

६ (क) ' सो बल गयो कि धों भये अब गर्ब गहीले ' इति। भाव कि बल रहते आप मेरी दुर्दशा कैसे देख सकते! 'प्रणतपाल' आपका विरद है। बल रहते आप अपना बाना न छोड़ देते। अतः अनुमान होता है कि आप बूढ़े हो गये हैं और आपके शरीरमें बल नहीं रह गया। अथवा, यदि बल है तो रक्षा न करनेका दूसरा कारण यह हो सकता है कि कलियुगका राज्य है। इससे कलिकालका प्रभाव आपपरभी पड़ा है। आपको अपने बलका इतना भारी मद हो गया है कि अब आप दीनदुखियोंकी पुकारकी पर्वा नहीं करते। सोचते होंगे कि क्या करना है? अब नाम तो अपना होही चुका! इसमें व्यंग्यार्थ वाच्यार्थके बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यंग है।

(ख) ' हाँक सुनत ' कहकर ' सो बल गयो ' कहनेका भाव कि आपके सेवकको उसी बलका भरोसा है। क्योंकि यह विख्यात है कि ' सब

दिन रूरो परै पूरो जहां तहां ताहि जाके है भरोसो हिय हनुमान हांक को । ' मिलान कीजिये ' बुढ़ भये बलि मेरीही बार कि हारि परे बहुतै नतपाले । ' दोनोंमें बहुत कुछ भावसाम्य है ।

(ग) ' अब ' अर्थात् कलियुगमें अथवा मेरी बारी आनेपर । भाव कि तब (त्रेतायुगमें) त्रेतायुगके प्रभावसे समर्थ थे, शीलवान् थे, बिरदकी लज्जा रखनेवाले थे और अब कलियुगमें कलिके प्रभावसे गर्व आ गया है ।

७ ' सेवकको परदा फटै तू समरथ सीलै ' इति । भाव कि समर्थ-शील स्वामीके विद्यमान् रहते उसके सेवककी इज्जत अब्रू कोई ले तो स्वामी और सेवक दोनोंकी नामोसी है, भद्द है, रुसवाई है । जैसे रावणके रहते उसका नगर जला डाला गया, अक्षयकुमार और प्रहस्त मारे गये, मन्दोदरी झोटा पकड़ घिस लायी गयी, इत्यादिसे रावणकी रुसवाई हुई, वैसेही आपके बल भरोसेपर मैं कलियुग एवं संसारके किसी प्राणीकोभी न डरता था, परन्तु अब मेरी लाज जाती है । सब कहेंगे कि हनुमान्के बल भरोसेपर बहुत बड़बड़ाते थे, इतराते थे, सो क्या कर लिया ? सारा जहान जानता है कि मुझपर तुम्हारी कृपा है । पर इस समय चुप साध लेनेसे सब जानेंगे कि अब वह कृपा नहीं रह गयी । सभी मेरी दुर्दशा करनेपर उतारू हो जायेंगे । अतएव अब शीघ्र आप मेरी रक्षा कर मुझे सनाथ कीजिये । यथा, " तुलसी के माथे पर हाथ फेरो कीस-नाथ बूझिये न दास दुखी तोसे कनिगर के । " यही समर्थशीलता है और यही परदेका सी लेना है । यहाँ ललित अलंकार है । परदा सी लेनेसे फिर कोई हमारी तरफ आँख उठाकर न ताक सकेगा । हमारी प्रतिष्ठा बनी रह जायगी ।

भावार्थान्तर—(क)"कलिकालरूपी राजाके भृत्य कामक्रोधादि परदारूप मेरे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, क्षमा, करुणा आदिको फाड़ते हैं । अर्थात् कामादिके वेगका प्रहार कर ज्ञानादिको दूर कर मुझको जगत्का नाच नचाया चाहते हैं, सो ऐसा न होना चाहिये । इसका कारण आगे कहते हैं । " (कु० टी०)

(ख) "मेरे द्वारा श्रीरामनाम और रामयशका लोकमें प्रचार होनेसे मेरी मर्यादा बढ़ी है। सुधर्म ज्ञानादिही मेरी वह मर्यादा है। कलियुग कामक्रोधादिको लगाकर इस मर्यादाको नष्ट करना चाहता है। यही परदाका फटना है। आप समर्थ हैं, सी सकते हैं। आपके सी लेनेसे कलियुग उसे पुनः न फाड़ सकेगा। भाव कि कलियुगको डाँट दीजिये और मुझपर कृपा बनाये रखिये जिसमें कामक्रोधादिका वेग न व्याप सके। यहाँ रक्षा धागा है, कृपा सुई है, परदा फटना मर्यादाका नष्ट होना है।"(वै०)

(ग) "अद्यावधि संसारमें ऐसा विख्यात था कि महावीरके आश्रित जनको संसारादिकी दुर्गति नहीं होती, शास्त्रमेंभी ऐसाही प्रकट है। अब उस यशको त्यागकर ऐसी ख्याती होगी कि महावीरके दासोंकी कलिकाल फ़ज़ीहत करता है और वे तमाशगीर होकर कौतुक देखते हैं।" अथवा, "व्यंग है कि जैसे मृतकपर दस खाँची मट्टी गिरी वैसेही दो खाँची और सही। वैसेही कलिकालरूपी राजाने कामादि अपने सेवकों-द्वारा नाना कष्ट देकर यश लियाही है, अब तुम खड़े तमाशा देखकर सुयश ले लो"। (डु०, टी०) इसीको "रामदासजीने इस प्रकार लिखा है कि, "मृतक तुलसीपर काल मजूरने कामादिरूपी मृत्तिका छोड़ दी है, आप तमाशा देखते हैं। अर्थात् दो खाँची आप अपनी ओर छोड़ दीजिये"। (डु०, बक्सर)

(घ) "मर्यादा जाती है। ऐसी दुर्दशा होनेसे कौन हमको रामदास कहेगा। इसे 'सी लो' अर्थात् मर्यादाकी रक्षा करो।" (पं० रा० कु०)

च० और डु० ने 'समरथसीले' को एक शब्द माना है और पं० रा० कु०, वीर, और वै० ने 'सी ले' को क्रिया माना है। भाव साम्यपर मिलान किजिये, 'चेरो तेरो तुलसी तू मेरो कह्यो रामदूत ढील तेरी बीर मोहि पीरते पिराति है।,' 'जानत जहानजन हनुमानको निवाज्यो मन अनुमानी बलि बोलि न बिसारिये। सेवा जोग तुलसी कबहुं कहूं चूक परी साहिब सुभाउ कपि साहिब सँभारिये॥',
'तो सो समत्थ सुसाहिब सेइ सहै तुलसी दुख दोष दवा से। बानर बाज बढ़े खल खेचर लीजत क्यों न लपेटि लवासे॥'

"देखी सुजस तुही ले" इति। इसमें लक्षणमूलक अगूढ़ व्यंग है कि इस मौकेको (अवसर) हाथसे न जाने दीजिये। 'सुजस तुही ले। तिहूं काल तिन्हको भलो।' पद्यार्थमेंही इसका भाव लिखा जा चुका है। और भाव यहां लिखे जाते हैं। १ सबसे विनंति करके हार चुका अब तुमसे विनंति करता हूँ। तुम्ही सुनकर रक्षा करनेका यश लो। रामभक्तोंकी रक्षा करना तुम्हारे योग्यही है। २ इस साँसतिके दूर करनेका कष्ट श्रीरघुनाथजीको क्यों दिया जाय जब कि आप सरीखे उनके 'पायक' हैं जो सब प्रकार समर्थ हैं और जो द्वारके भीतर प्रवेश करतेही प्रथमही मिल गये हैं! अतएव कलिसे मेरी रक्षा करनेका सुयश आपही क्यों न ले लें? यह सुयश दूसरोंको क्यों मिले? ३ जो रामानुरागी हैं उनका तीनों कालोंमें मंगल कल्याणही होता है। (हमारा कष्ट निवारण करके) यह सुयश तुम्ही ले लो। सेवकको अपने स्वामीका यश बढ़ाना चाहिये। मेरा दुःख दूर करनेसे तुम्हाराभी यश होगा और तुम्हारे स्वामीकाभी। नहीं तो सब इसके विपरीत यही आगे कहेंगे कि 'रामानुरागियोंका सदा अमंगल होता है।' (शु०) ४ किसीका मत है कि यहां 'सुयश' में व्यंग्यसे विपरीत अर्थ है। कष्ट देखकर तूही सुयश ले अर्थात् यह सुयश लो कि 'हनुमान्‌का सेवक होकर साँसति सह रहा है।' यदि कहो कि तुममें रामभक्ति नहीं है इससे कष्ट हो रहा है। तो इसमें आपका एहसानही क्या? राम प्रेम होगा तब तो श्रीरामजी स्वयंही कष्ट हरेंगे!'

भट्टजी लिखते हैं कि "गुसाईंजीके जीवनचरित्रमें लिखा है कि इनके अनेक सिद्धाईके काम सुनकर दिल्लीपति बादशाहने बुलाकर कहा कि हमेंभी चमत्कार दिखाओ। आपने उत्तर दिया कि मैं तो केवल रामनाम जानता हूँ, मेरे पास कोई चमत्कार नहीं है। यह सुनकर बादशाहने कहा कि हमें रामदर्शनही कराओ। इनकार करनेपर इनकी धृष्टता और अपना अपमान समझ उसने इन्हें जेलखानेमें बन्द कर दिया। उस समय यह पद बनाया था। इस भजनका दूसरा और चौथा पद बादशाहके पक्षमें लगता है।" प्रायः अन्य महानुभावोंका मत यह नहीं

है। कलिकालकी डांट फटकारके संबंधमें यह पद भी है। पंडित रामकुमारजी बाहुपीरका सम्बन्ध इन पदोंमें कहते हैं।

श्रीरामविनयावली सं० १६३१ और १६६६ के बीचमें किसी समयकी है। रामविनयावली कलियुगके कोपसे रक्षाके निमित्त लिखी गयी थी। मूलगुसाईं चरितसे दिल्लीपतिवाली घटना विनयके पश्चात्की है। हो सकता है कि गोस्वामीजीने इसी पदका पाठ वहाँ किया हो। श्रीप्रियादासजीनेभी भक्तमालकी भक्तिरसबोधिनीटीकामें इस घटनाकी चर्चा की है। कहा जाता है कि उस समयके इतिहासमें इस घटनाका उल्लेख नहीं है। मालूम नहीं क्यों?

३३

समरथ सुअन[१] सभीरके रघुबीर पियारे।
मोपर कीबें[२] तोहिजो करि लेहि भिया रे॥ १॥
तेरी महिमा ते चलैं[३] चिंचिनी चिआ[४] रे।
अंधियारो[५] मेरी बार को[६] त्रिभुवन उँजियारे॥ २॥
केहि करनी जनु जानि कै सनमान किया रे।
केहि अघ औगुन आपनो करि डारि[७] दिया रे॥ ३॥
खाई खोंची मांगि मैं[८] तेरो[९] नामु लिया रे।
तेरे बल बलि आजु लौं[१०] जग जागि जिया रे॥ ४॥

---

१ सुअन—रा०, ह०। सुवन—भा०, बे ज०, ७४। (पद १ देखिये।) २ कीबें—रा०। कीबे—ह०, ५१, ७४, मु०, डु०, बे०, दी०। कीबी—भा०, बे०, ज०, १५, भ०, वि०।३ चलैं—रा०, ह०, भा०, बे०, मु०, भ०, वि०। चलै—१५, बे०, दी०, ७४। चले—डु०, ज०।४ चियां-डु०, ह०, ७४। चिआ—रा०, ज०। चिंया—भा०, बे० भ०। चिंया-बे०, मु०, दी०, वि०। तुकांतके अनुसार 'चिया' उत्तम है। ५ अंधियारो-रा०, भा०, बे०, ह०, मु०, डु०, ७४, बि०, टी०। अँधियारे-भ०, दी०। अँधियारी—बे०। ६ कों—रा०, भा, बे०, प्र०, १५। को—ह०, ५१। क्यों—आ०, ७४। कै—ज०।७ छाड़ि—७४।८कै–ह०, ज०।के–१५। ९ तुव—७४। तव—मु०। १० लों—रा०, ज०। लौं—प्रायः औरोंमें।

जौं[११] तो सों होतो फिरो मेरो[१२] हेतु हिया रे।
तौ[१३] क्यों बदन देखावतो कहि बचन इया रे[१४] ॥ ५ ॥
तो सो ज्ञाननिधान को सरवज्ञ बिया रे।
हौं[१५] समुझत सांइ दोह[१६] की गति छार छिया रे ॥ ६ ॥
तेरे स्वामी राम से[१७] स्वामिनी सिया रे।
तहं तुलसी के[१८] कौन को[१९] काको तकिया रे ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—समीर = पवन। पियारे (प्यारे) = प्रिय, प्रेमपात्र। कीबें = करनेको। यथा, 'कीबे को बिसोक लोक लोकपाल हेतु सब कहूं कोऊ भो न चरवाहो कपिभालु को।', 'कीबे कहा पढ़िबे को कहा फल बूझि न बेदको भेद बिचारै।' (क० उ०) भिया (भैया) = भाई, भ्राता। चिंचिनी चिंया = [चिंचिनी (सं० तिंतिड़ी = पेड़ वा फल) + चिया (सं० चिंचा = बीज)] इमलीका बीज। चलै=सिक्केकी तरह (हीरा, जवाहिर, सोना इत्यादिके मोलभावमें) चलता है। कों = के लिये। आपनो करि = अपनाकर; अपना दास बना या स्वीकार करके। डारि दिया = डाल दिया, परित्याग किया; खोज खबर न ली; भुला दिया। यह मुहावरा है। खोंची = वह थोड़ा अन्न, फल, तरकारी आदि जो दूकानदार मंडी या बाजारमें छोटी छोटी

११ जो–रा०, ह०, ज०, मु०, दी०, वै०, भ०। जौं–७४। जौ–भा०, बे०, डु०। १२ मम–मु०, ७४। १३ तौ–बे०, ह०, डु०, वै०, भ०, भा०, वी०। तो–रा०, ज०। १४ हिया–प्र०, ह०। १५ हों–रा०, मु०, भा०, बे०, डु०, भ०। हौं–प्राय: औरोंमें। ७४ में नहीं है। १६ सांइदोह–रा०। सांइद्रोह–भा०, बे०, ज०, मु०। साईंद्रोह–दी०। साईंद्रोह–भ०, डु०, वै०, ७४, वि०। १७ सो–रा० भा० बे०, प्र०, ज०। से–ह०, ५१, ७४, आ०। १८ के कोन–रा०। के कौन–बे०, ५१, डु०, टी०, भ०, मु०, वि०। कहँ कौन–भा०, बे०, (कहँ पर 'को' बनाया है), ह०, ७४। कह कौन–दी०। को कौन–वै०। १९ की–भा, बे०। को–प्राय: औरोंमें।

सेवाएँ करनेवाले या भिखमंगोंको दिया करते हैं, उतना अन्न या भिक्षा जो एक मुट्ठीमें आ जाय। चुटकी, मुठिया। जागि = प्रतिष्ठापूर्वक; प्रसिद्ध होकर। पद २ 'बेद पुरान प्रगट जसु जागै देखियो'। हो तो फिरो = फिरा होता। 'फिर जाना' मुहावरा है जिसका अर्थ है पलट जाना, बदल जाना, मनका उचट वा हट जाना, विपरीत या क्रुद्ध हो जाना। हेतु = प्रेम। यथा, 'हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन तीको।' (बा०) हिया (हिय) = हृदय। इया=ऐसे, इतने, (पं० रामवल्लभाशरण) यहां (दी०)। बिया=दूसरा। यह प्रान्तिक प्रयोग है। केवल पद्यमें आता है। (सं० द्वि) गति = अंतिम फल या दशा, परिणाम। छार (क्षार) = राख, भस्म, धूल। यथा, 'गति तुलसीस की लखै न कोऊ जो करति पब्बै ते छार छार पब्बै सोउ पलकही।', 'तुरतहि काम भयेउ जरि छारा' (बा०) छिया = जिसे देख लोग छी छी करें अर्थात् घृणा प्रकट करें, घिनौनी वस्तु, मल, विष्ठा।

पद्यार्थ—हे पवनके समर्थ पुत्र! हे रघुवीरके प्यारे! मुझपर जो कुछ तुझे करनेको हो सो अरे भैया! (तूभी) कर ले। १। तेरे प्रभावसे इमलीकी चियाँभी (चाँदी, सोने, तांबे, पीतल इत्यादिके सिक्कोंकी तरह बहुमूल्य सिक्का होकर) चल सकती हैं। तीनों लोकोंमें तो उजाले अर्थात् प्रकाशरूप और मेरी दफ़ाको (मेरी बारी आनेपर) अँधेरा? अर्थात् तुम सारे जगत्के क्लेश हरण करनेवाले हो और हमारा क्लेश हरण करनेकी बारी आयी तब चुप साध ली, यह बड़े आश्चर्य एवं दुःखकी बात है!। २। अरे! मेरी किस करनीसे मुझे दास जानकर मेरा सम्मान किया था और अब किस अघ अवगुणसे मुझे अपनाकर परित्याग कर (गोदसे ज़मीनपर गिरा) दिया?। ३। मैने तेरा नाम लिया और खोंची माँगकर खायी। (अर्थात् भिक्षा पाकर पेट भरता था और तेरा नाम लिया करता था।) तेरे बलकी बलिहारी जाता हूँ। तेरेही सहारे आजतक जगत्में प्रतिष्ठापूर्वक जीता रहा (जीवनके दिन सुखपूर्वक बिताये)। ४। जो तुमसे मेरा प्रेम, मेरा हृदय, फिर गया

होता तो ऐसा बचन कहकर तुम्हें मुँह क्यों दिखाता ? (अर्थात् तुमसे सहायताकेलिये प्रार्थना क्यों करता ? दूसरे स्वामीके पास न चला गया होता ?) । ५ ।* (यदि कहो कि तुम झूठ कहते हो तो उत्तर देते हैं कि) अरे ! तुमसा ज्ञाननिधान और सर्वज्ञ दूसरा कौन है ? अर्थात् झूठ कहूंगा तो आपसे छिपा थोड़ेही रह सकता है । (उसपरभी) मैं स्वामि-द्रोहताकी गति स्वयं समझता हूँ कि भस्म और विष्ठा है (अर्थात् जलकर भस्म हो जाना और लोकमें छी छी होना, यही स्वामीसे द्रोह करनेका फल वा परिणाम है । सो मैं ' छार छिया ' होना कब चाहूँगा जो आपसे द्रोह करूँ ? बस इसीसे समझ लीजिये कि मैं साईंद्रोही नहीं हूँ, आर्तिवश मैंने कड़वे बचन कहे हैं ।) । ६ । अरे ! राम सरीखे तो तेरे स्वामी हैं और श्रीसीताजी स्वामिनी हैं, वहाँ तुलसीदासका कौन है ? (भला) कौन किसका सहारा है ? अर्थात् कोई किसीका सहारा नहीं, सई सिफ़ारश करनेवाला नहीं है और मेरेलिये तो निश्चयही उस दरबारमें आपके सिवा कोई वसीला नहीं है । ७ ।

टिप्पणी—१ (क) 'समरथ सुभन समीर के ' इति । भाव कि पवनपुत्र और श्रीरघुवीरके प्रेमपात्र होनेसे तुम्हारा सामर्थ्य सबको विदित है । यथा 'पवनतनय बल पवन समाना ।' और सीताशोध आदि अनेक उपकारके कर्म करनेसेही तुम श्रीरघुवीरके प्यारे हुए । यथा "सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहि कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥ प्रति उपकार करउँ का तोरा । सनमुख होई न सकत मन मोरा ॥ कपि उठाई प्रभु हृदय लगावा ॥" (सुं०) ऐसे समर्थ और परोपकारी होकर

---

*अर्थान्तर—वै० वि० ने 'हेतु' का अर्थ 'कारण' लिखा है और यों अर्थ किया है, १ "जो मैं तुमसे मुँह फेर लेता तो मेरा हृदय उसमें कारण होता, गवाही देता और आपसके दोस्तोंकीसी भली बुरी बात कहकर तुम्हारे आगे क्यों अपना मुँह दिखाता ? " (वि०) २ "यदि मेरा हृदय कारण मात्र आपसे फिरा होता, कारणमात्र मेरा हृदय विमुख होता तो यारकेसे ढीठ बचन कहकर मुँह न दिखाता।" (वै०) ३ (जो कहें कि

उचित तो यही था कि मेरा उपकार करते, मेरा संकट दूर करते। खैर!

(ख) 'रघुबीर पियारे' इति। 'रघुबीर' शब्दसे श्रीलक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नजीकाभी ग्रहण हो सकता है। सीताशोधसे श्रीहनुमानजी श्रीलक्ष्मणजीकोभी प्राणप्रिय हो गये थे। यथा, 'सीय सोच समन दुरित दोष दमन सरन आए अवन लखन प्रिय प्रान सो।' (बाहुक) लंकाविजयकी खबर देकर हनुमान्‌जी भरतजीको प्राणप्रिय हुए और वीरमणिके युद्धमें शंकरद्वारा मारे जानेपर शत्रुघ्नजीको जिलाकर वे उनके प्राणप्रिय हुए। इसतरह भाव यह हुआ कि सबके संकटमें काम आनेसे इन सबोंके प्रिय हुए। परन्तु 'रघुबीर' शब्द प्राय: श्रीरामजीकेलिये रूढ़सा हो गया है और यहांभी विशेषकर उन्हींकेलिये यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'रघुबीर पियारे' का भाव कि पंचवीरतायुक्त जो श्रीरघुनाथजी हैं उनके प्रिय होनेसे यह निश्चय है कि आपभी वीर हैं। ऐसे 'साहसी समीर के दुलारे रघुबीरजू के' प्यारे होते हुएभी हमारा दुःख नहीं हरते?

(ग) 'मोपर कीबें तोहि जो करि लेहि' इति। भाव कि आप कृपा करते नहीं। क्लेश हमसे अब सहा जाता नहीं और हमारी दुर्दशा करानाही आपको प्रिय लगता है। यथा "साँसति सहत दास कीजे पेखि परिहास। चीरी को मरन खेल बालकनि को सो है।" (बाहुक) अतएव मरना तो अब हैही। तुमभी कुछ उठा न रक्खो। जो क्लेश और प[ह]ुचाना हो सो भरसक तुमभी पहुँचा लो। हमतो मरतेही हैं। तुमभी हाथ चला लो। हमें मार डालो। यह मुहावरा है। तुम्हेंभी जो करना हो कर लो, अरमान न रह जाय। अत्यन्त कष्टमें खीझसे ये शब्द निकलते हैं। समर्थ शरणपालका शरणागतकी रक्षा न करना उसे मारनेके समान

पहले तेरी प्रीति हममें थी अब नहीं है तो) मेरा प्रेम, मेरा मन विमुख हो गया, तुम होते तो मैं क्यों मुँह दिखाता और क्यों ऐसी बुरी भली बातें सुनाता? (भ०) डु०, वै० और वीर, ने 'इयारे' को एक शब्द मानकर "यार वा मित्रकेसे मीठे" अर्थ किया है। वि० ने 'इया' का अर्थ 'यार, मित्र' लिखा है। दिनजीने 'इया' का अर्थ 'यहाँ' 'ऐसा' किया है।

है। 'जौ सभीत आवा सरनाइ। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं ॥' यह शरणागतपालकका धर्म है।

चरखारी टीकाकार और वीर कविजी यह भावार्थ लिखते हैं, "जो तुमको मेरी सहायता (मुझपर अनुग्रह) करनी हो तो है भैया! कर लो। अब इससे बढ़कर संकट कौन आवेगा!" परन्तु यहाँ गोसाईंजी फरियाद (पुकार) की दाद न पानेसे खीझकर ये सब बचन कह रहे हैं। इसलिये मेरी समझमें यह अर्थ विशेष संगत नहीं है।

२ 'तेरी महिमा ते चलैं चिंचिनी चिआ' इति। (क) यदि कहो कि तुम्हारे कष्टनिवारणका सामर्थ्य हममें नहीं है तो यह बात प्रतीत करनेकी नहीं है। क्योंकि आपकी महिमा यह है कि 'चलैं चिंचिनी'। इमलीके बीज जवाहरोंके मोल चल जाते हैं। मंद जीव चियांके समान तुच्छ हैं सो आपकी कृपासे जवाहररूप भगवद्भक्त हो जाते हैं, जिन्हें भगवान्‌रूपी जाहरी ग्रहण करते हैं। भाव कि यदि आप मुझपर कृपा करें तो मुझेभी भगवान् अपना लेंगे। अपने प्रभावसे रावणादिका वध कराके आपने तीनों लोकोंमें चन्द्रवत् शीतल प्रकाश किया तब मेरी बारी आनेपर अमावस्याकी रात्रिके समान अँधेरे होते हो! अर्थात् कलियुगकृत दुर्गति देखकर आँखें बंद कर लेते हो!' (भट्टजीनेभी यही भाव लिखा है।)

(ख) 'इमलीका बिया रुपया, अशर्फ़ी और रत्नके भावपर चलता है। सुकर्मी रुपया है, ज्ञानी अशर्फ़ी है और भक्त रत्न है। आपकी कृपासे साधन पुरुषार्थहीन लघु जीव सुधर्मी, ज्ञानी और भक्त हो जाते हैं। यह प्रभाव त्रैलोक्यमें सूर्यप्रभावत् प्रकाशित है। (वै०)

(ग) "चिंचिनी सूर्य रश्मयः" रहस्य-शब्दार्णवके प्रमाणसे यह अर्थ हुआ कि तुम्हारी महिमारूपी सूर्यकिरण प्रकाश किये रहती है। सो त्रिभुवनमें उजाला हो रहा है। एक किरण अँधियारी पड़ गयी यह आश्चर्य है। अथवा, जब सूर्यको ग्रास लिया था तब आपकी महिमासे त्रिभुवनमें उजाला हो गया और फिर तुम्हारीही कृपासे सूर्यका अविर्भाव

हुआ। यह आपकी महिमा हमारे अँधियारेपनको अर्थात् मोहादि अज्ञानको नहीं नाश करती, यह आश्चर्य है। भाव यह कि कलिको देखकर मेरी ओरसे आँख क्यों बंद करते हो? श्रीरामदासजी (बक्सर) [चिंचिनीका अर्थ सूर्यकिरण लिया है पर आपने 'चिंया'का अर्थ नहीं किया है। 'महिमाते चलैं चिंचिनी' का अर्थ महिमारूपी सूर्यकिरण कैसे हुआ?]

(घ) "इमलीके बीज अर्थात् जड़ पदार्थ जो तुच्छ हैं वहभी आपकी महिमासे चलने लगते है अर्थात् चैतन्य हो जाते हैं।" (चरखारी) मिलान कीजिये, 'जो चेतन कहं जड़ करै जड़हि करै चैतन्य। अस समर्थ रघुनायकहिं भजहिं जीव ते धन्य ॥'

'यहाँ कहना तो यह है कि सुग्रीव, बिभीषण इमलीके चिंयाकी तरह मारे मारे फिरते थे सो बहुमूल्य हुए अर्थात् उन्होंने राजपद पाया। आप दीनकी पुकार सुनतेही सहायता करनेवाले हैं, मेरी बार इतना बिलंब क्यों करते हैं? इसे घुमाकर कहनेसे 'ललित अलंकार' है और व्यंगार्थके द्वितीय विषम अलंकारकी ध्वनि है।' (वीरकवि) (ङ)

यहां गोस्वामीजी अपनेको चिंयाँसमान तुच्छ कहते हैं। चिंयाँ बेमोलकी चीज़ है। प्रायः इसे लोग फेंक देते हैं। आपका प्रताप ऐसा है कि चिंयाँसी तुच्छ, फेंक दी जानेवाली वस्तुभी बहुमूल्य सिक्केकी तरह चलती है। आप चाहे तो मेरा क्लेश दूर करके त्रैलोक्यमें मेरा सिक्का जमा दें, मेरी धाक बँध जाय।

३ 'अँधियारो मेरी बार कों त्रिभुवन उजियारे' इति। भाव कि आपका बाँका बिरद, निर्मल कीर्ति जगत्में जगमगा रही है। पर मेरी बार आपका वह प्रताप सूर्य न जानें क्यों अस्त हो गया है! यथा, 'दूत राम राय को सपूत पूत बायको समत्थ हाथ पायको सहाय असहाय को। बाँकी बिरुदावली बिदित बेद गाइयत रावन सो भट भयो मुठिका के घाय को॥ एते बड़े साहिब समत्थको निवाजो आजु सीदत सुसेवक बचन मन काय को। थोरी बाहु पीर की बड़ी गलानि तुलसीको कौन पाप कोप लोप प्रगट प्रभाय को॥' (बाहुक)

पद २५ और २६ में चन्द्रमा और सूर्यका रूपक बाँधकर श्रीहनुमान्‌जीकी विनय की गयी। सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश संसारमें होता है। वैसेही हंस हनुमानका प्रताप प्रकाश और चंद्र हनुमान्‌की कीर्ति चाँदनी त्रैलोक्यमें छा रही है। 'त्रिभुवन उँजियारे' इति। यथा, '**मोह मद कोह कामादि खल संकुला घोर संसार निसि किरनमाली॥ जयति लसदंजनादितिज कपि केसरी कस्यप प्रभव जगदार्तिहारी। लोक लोकप कोक कोकनद सोकहर हंस हनुमान कल्यानकारी॥** (२६) आशय यह है कि संसारमात्रका आपने शोक संकट दूर किया। सबका कल्याण किया। तब मेरा संकट क्यों नहीं हरते?

कलिकालद्वारा उपस्थित हुए शोक संकट आदिका न हरण करना, मेरे सताये जानेकी किंचित् पर्वा न करना, कलिको दंड देनेमें अपनी असमर्थता दिखाना, खड़े तमाशा देखना इत्यादि सब भाव 'अँधियारो मेरी बार कों' में आ जाते हैं। यथा, '**कलि आयेउ राति कृपान लिये। मुनि कहँ बहु भाँति सो त्रास दिये॥ मुनि ध्यान धरेउ हरि हेतु तबै॥ हनुमंत कहेउ कलि ना मनिहै। मोहि बरजत बैर महा करिहै॥**' (मूल गुसाईं चरित) इसीकी ओर कविका संकेत है। कलिजनित पापसंतापको तम कहा है। यथा, '**काल कलि पाप संताप संकुल सदा प्रनत तुलसीदास तात माता।**' (२८) '**पाप ताप तिमिर तुहिन बिघटन पटु सेवक सरोरुह सुखद भानु भोर को।**' (बाहुक)

४ (क) 'केहि करनी जनु जानिकै सनमान किया' इति। भाव कि मुझमें पहलेभी कोई गुण या सुकृत न थे जिनपर आप रीझते। आपने अपनी अनिर्हेतुकीय कृपाकाही परिचय मुझे अपनाकर दिया है। यथा, '**बालक बिलोकी बलि बारे ते आपनो कियो दिनबंधु दया कीन्ही निरुपाधि न्यारियै।**' (बाहुक)

(ख) 'केहि अघ अवगुन आपनो करि डारि दिया।' इति। भाव कि अघी अवगुणी तो अपनानेके पूर्वभी था, वैसाही अबभी हूँ। मैं तो जैसा पूर्व था वैसाही अबभी हूँ। तब बताइये तो सही कि पूर्व क्या

जानकर अपनाया था और अब क्या जानकर परित्याग किया ? अथवा, आपने 'जो जेहि भाव नीक तेहि सोई' इस लोकोक्तिके प्रतिकूल अपना स्वभाव क्यों बदल दिया ? स्वामीका कर्तव्य यह नहीं है कि एक बार अपना लें, फिर अपनाये हुएको त्याग दें ! यथा, 'सरनागत कहुं जे तजहिं निज अनहित अनुमानि । ते नर पामर पापमय तिन्हहिं बिलोकत हानि ॥' (सुं०) अभिप्राय यह है कि आप अपनी वही कारणरहित कृपालुता, करुणामय स्वभाव और दीनबंधुताको स्मरण कर मुझपर कृपा कीजिये, मुझे अभयदान दीजिये । यथा, 'टूकनि को घर घर डोलत कँगाल बोलि बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है । कीन्ही है सँभार सार अंजनीकुमार बीर आपनो बिसारिहैं न मेरेहू भरोसो है ॥ (वाहुक) मिलान कीजिये "जानत जहान जन हनुमान को निवाजो मन अनुमानी बलि बोलि न बिसारिये । सेवा जोग तुलसी कबहुँ कहूँ चूक परी साहिब सुभाउ कपि साहिब सँभारिये ॥" पुनः, अघ पूछनेका दूसरा भाव कि दोष जान लेनेसे फिर वह अपराध पुनः न होने पावेगा ।

(ग) परित्याग करनेका कोई कारण विशेष जान नहीं पड़ता । इस बातके प्रमाणमें आगे अपना जीवन व्यापार बताते हैं, 'खाई खोंची' अर्थात् नाम लेकर भिक्षा माँग खाना और नामही जपना, यही प्रतिदिनकी चर्या है । नामबलसेही जगत्में प्रसिद्धि हुई । सब जानते है कि आपकी मुझपर कृपा है । जो जो प्रतिज्ञाएँ मैंने कीं वह सब आपकी कृपासे पूरी पड़ीं । पुनः, 'खाई खोंची मांगि मैं तेरो नाम लिया रे ।' का भाव कि भीख माँग कर शरीरकी रक्षा करता था और तुम्हारा नाम लेता था । मैंने कभी कोई शरीरसंबंधी वस्तु आपसे नहीं माँगी, निष्काम उपासना करता रहा । भाव कि तेरा गुलाम प्रसिद्ध हूँ क्योंकि तेराही नाम लेकर चुटकी माँग खाता था । 'तेरो नाम लिया रे' में यहभी भाव है कि अन्य देवी देवादिकी उपासना मैंने नहीं की । आपकाही अनन्य सेवक हूँ । स्मरण रहे कि ऐसाही शिवजीसेभी कहा था । यथा, 'गाँव बसत बामदेव मैं कबहूं न निहारे । अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तेरे' ॥ (८)

५ (क) 'तेरे बल बलि आजु लों जग जागि जियारे' इति। (क) 'तेरे बल' इति। यथा, 'लोक परलोक ते बिसोकि सपने न सोक तुलसीके हिये है भरोसो एक और को। रामको दुलारो दास बामदेव को निवास नाम कलि कामतरु केसरी किसोरको ॥' (बाहुक)

(ख) वह बल कौन है? वही जो ऊपर बता आये। अर्थात् हुंकारमात्र सुनकर रावणके अंजरपंजर ढीले हो जाते थे। उस हुंकारका बल, जिस बलसे श्रीरामचन्द्रजीने सब देवकार्य किया और बिभीषणको लंकाका राज्य दिया, उसी बलका भरोसा हमकोभी है।

(ग) तेरे बल आजतक जीवित रहा। कथनका भाव यह है कि मुझे सदा तुम्हारीही गति रही है और अबभी तुम्हाराही भरोसा है। आप अपने बलको स्मरण कीजिये और हमारे कष्टको निवारण कीजिये। यथा, "उथपे थपन थिर थपे उथपनहार केसरीकुमार बल आपनो सँभारियै। रामके गुलामनि को कामतरु रामदूत मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारियै ॥ साहिब समत्थ तोसो तुलसी के माथे पर सोऊ अपराध बिनु बीर बाँधि मारियै। पोखरी बिसाल बाहु बलि बारिचर पीर मकरी ज्यों पकरी के बदन बिदारियै ॥" (बाहुक) "रावरो भरोसो तुलसीको रावरोई बल आस रावरीयै दास रावरो बिचारियै।" "पाप ते साप ते ताप तिहूं ते सदा तुलसी कहं सो रखवारो।"

(घ) 'बलि' इति। यह शब्द देकर अपने मनकी बात जनायी कि जो कठोर वचन कये गये, जो तू, तैं, तेरे, रे आदि शब्दोंसे संबोधन किया वह केवल आर्त्त होनेसे। नहीं तो अंतःकरणसे तो मैं तुम्हारी बलैयाँ लेता हूँ। मुझे विमुख न जानिये। (डु०, वै०)

(ङ) 'जग जागि जिया रे' इति। अर्थात् प्रसिद्ध होकर, मान प्रतिष्ठा और नामवरीके साथ जीवन बीताया। यथा 'होहुं कहावत सब कहत राम सहत उपहास।' (बा०), 'जानत जहान जल हनुमानको निवाजो हौं सरनाम गुलाम राम को'। इत्यादि।

मुर्दे को जिला देने, हत्यारेकी हत्या छुड़ाने, लड़कीको लड़का बना देने इत्यादिसे श्रीमद्गोस्वामीजी जगतमात्रमें प्रसिद्ध हो रहे थे।

६ 'जो तोसो होतो फिरो मेरो हेतु हिया रे।' इति। (क) पूर्व कड़वे वचन कहे। अब, पुनः चेतकर कि अरे, स्वामीको हमने क्या कह डाला, क्षमाहेतु उस कथनका समाधान करते हैं। (ख) 'तो क्यों बदन देखावतो' इति। भाव कि धृष्ठताके बचन कह कर बिनती करता गया पर आपको छोड़ अन्यत्र न गया। इससे निश्चय जान लीजिये कि मेरा हृदय और मेरा प्रेम वा मेरा हार्दिक प्रेम आपसे नहीं हटा और न स्वप्नमें भी मुझे दूसरेका भरोसा है। कटु वचनोंसे विमुखताका अर्थ न लगा लीजिये। अति कष्टके कारण ऐसे कठोर और कटुवचन मुंहसे निकल गये।

७ 'साइंदोह की गति छार छिया रे' इति। अपने स्वामीसे द्रोह करनेसे 'छार छिया' वाली गति होती है। स्वामिद्रोहीको क्षार और विष्ठाका नरक प्राप्त होता है। यथा भागवते "अथ च यस्त्विहवा **आत्मसंभानेवनेन स्वयमधमो जन्म तपो विद्याचार वर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक् शिरा निपातितो दुरंता यातना ह्यश्नुते।**"

८ 'तेरे स्वामी रामसे स्वामिनी सिया रे।' इति। भाव कि ऐसे बड़े आपके स्वामी और स्वामिनी हैं। वहां तक विना बड़े वसीलेके किसीकी पहुँच कैसे हो सकती है? मैंभी उन्हींको अपना स्वामी और स्वामिनी मान चुका हूँ और आपकोही वसीला मानता हूँ। यथा, **'साहिब कहूँ न राम से तोसे न उसीले।'** (३२) क्योंकि वे आपपर सदा सानुकूल रहते हैं। यथा **'रामगुलाम तुही हनुमान गुसाइं सदा अनुकूलो'** (बाहुक) **'सानुकूल कोसलपति रहहु समेत अनंत।'** (लं०)। पुनः, दोनों आपको पुत्रवत् मानते हैं। यथा, **सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं'** (श्रीरामवाक्य), **'सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदय बसहु हनुमंत।'** (लं०), **'अजर अमर गुननिधि सुत होहू।'** अतएव वे आपकी बात कभी नहीं टालते। ऐसा वसीला और कोई नहीं, ऐसा ममत्व श्रीसीता-

रामजीका कीसीपर नहीं। तब भला यदि आपही मुझे त्याग देंगे तो मैं कहींकाभी न रहूँगा। वहांतक मैं कब पहुँच सकता हूँ ?

९ 'तुलसी के कौन को काको ताकिया रे' इति। यहांपरभी जितनी टीकाएँ उतनेही अर्थ हैं। मेरी समझमें अन्वय सीधा और सरल है, 'तुलसीके कौन ? को काको ? '

अर्थान्तर—१"तहां तुलसीके कौन अर्थात् दूसरा कौन है ? को अर्थात् कौन पूछे ? एक तुमको छोड़कर काको अर्थात् किसका आसरा है ?" (डु०) २ " तुलसीके कौन स्वामिनी है और दूसरा 'को' स्वामी है ? अर्थात् जानकीजीही मेरी स्वामिनी हैं और श्रीरघुनाथजी मेरे स्वामी हैं। और उनकी शरणमें पहुँचानेवाला इस दरबारमें किसका भरोसा है ?" (वै०) ३ " वहां तुलसीके 'कौनको' अर्थात् कौन पदार्थका और 'काको' अर्थात् किस पुरुषका आश्रय है।' वा, स्वामी स्वामिनी कह आये इससे 'कौन' और 'काको' यथासंख्यसे लगाकर अर्थ कर लें।" (पं० रा० कु०) ४ "तहां आपही कहो कि तुलसी कौन है, किसका है और किसको तकके रहे अर्थात् किसका सहारा पकड़े।" (च०) ५ "वहांतक पहुँचनेकेलिये यह बतला दो कि तुलसी किसका है और किसका सहारा रखता है। अर्थात् रामके दरबारतक पहुँचानेमें तूही समर्थ है, तुलसी तेरा दास है और तेराही आसरा रखता है। अतः नहीं-नहीं न कर, दरबारतक पहुँचा दे।" (दी०) ६ " वहां तुलसीको कौन पूछता है और उसका कौन है और उसको किसका सहारा है ? " (भ०) ७ " तुलसीकी खबर करनेवाला कौन है और उसको किसका सहारा है "? (वीर) ८ "तुलसीदासका और कौन बैठा है, उसे और किसका सहारा है ?" (वि०) वीरने 'को' का अर्थही छोड़ दिया है।

३४

अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी।
इन्ह को बिलग न मानिये बोलहिं न बिचारी ॥१॥
लोक रीति देखी सुनी व्याकुल नर नारी।
अति बरषें अनबरषेंहूं[1] देहिं दैवहिं गारी ॥२॥

---

१ अनबरषेहुँ—रा०, ह०, मु०, वे०, डु०, ५१, दी०, वि०,७४।

नाकहि आयें[2] नाथ सों सासति[3] भयें भारी।
कहि आयो[4] कीबी छमा निज ओर निहारी ॥३॥
समय सांकरे सुमिरिये समरथ हितकारी।
सो सब बिधि ऊपर[5] करै अपराध बिसारी ॥४॥
बिगरी सेवक की सदा साहिबहि[6] सुधारी।
तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निनारी[7] ॥५॥

शब्दार्थ—अति = जो सीमा या हदसे बाहर हो गया हो; जिससे अधिक न हो सके। आरत (आर्त्त) = चोट खाया हुआ, व्याकुल, पीड़ित। स्वारथी = स्वार्थपरायण, मतलबी, खुदग़रज। बिलग = द्वेष या और कोई बुरा भाव, रंज, दुःख, बुरा। यथा, '**स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गँवारी ॥**' (अ०), '**देवि करउँ कछु बिनय सो बिलगु न मानव।**' इन्हको = इनके वचनोंका, इनके कहनेका, इनका। अनबरषेहूँ = बिना वर्षाभी; वर्षा न होनेपरभी; अवर्षण होनेपरभी। दैव = विधाता, ईश्वर। यथा, '**दैव दैव आलसी पुकारा**' (सुं०) नाकहि आयें = 'हो आयउँ नकवानी' पद ५ देखिये। सों = सौगंध, क़सम, शपथ। सांकरे (सं० संकीर्ण) = तंग, कष्टमय, दुःखमय, संकटके। ऊपर

अनबरषेउ—भा०, बे०। अनबरषेउं—भ०। अनबरषेहु—ज०। २ आयें—रा०। आये—ह०, भा, बे०, ('उ' बढ़ाया गया है), आ० (भ०)। आयो—भ०।३ सों भये—रा०। सों भये—५१। सो भय—मु०, भ०, दी०, वि०, बे० (भै०),। सो भय—डु०। सो भये सांसति—भा०, बे०। सो भय सांसति—ह०, १५। सो भई—ज०। सों भइ—७४। ४ आयो—रा०, ह०, आ०, ७४। आये भा०, बे०।५ ऊपर करै—रा० भा०, ह०, ५१, आ० (वि०, मु०)। उपकार करै—भा० (मूलमें) प्र०, १५। ७४, मु० में 'कर' है। ऊबर—वि०। ६ साहिब—रा०। ७ निनारी—रा०, भा०, बे०, ह०, ५१, वै० (टीकामें)। निरारी—७४, आ० (वै०)। निआरी—१५। निहारी—ज०। डु० में 'निनारी' है पर टीकामें 'निरारी' है। अतः उसका मूल 'निनारी' ही होगा।

करना = उपर बाँत खींचना, तरफ़दारी करना। (दी०) क्लेशसे निकाल लेना (डु०)। उँचा कर देना। सब विधि ऊपर करै = सब विधान (जैसा शास्त्रोंमें कहा हैं, सब उपाय) बढ़ चढ़कर करता है। निरुपाधि = निर्विघ्न, एकरस। निनारी (प्रा० निन्निअड्, निन्नियर। हिंदी० निन्यार, निनर) = न्यारी, विलक्षण।

पद्यार्थ—जो अति आर्त्त हैं (अर्थात् जिनके हृदय कष्टसे अत्यन्त चुटियल हो गये हैं।) जो अत्यन्त स्वार्थी (अर्थात् स्वार्थान्ध) हैं और अत्यंत दीन दुखी (अर्थात् महादरिद्र, कंगाल, पापफलभोग व्याधि आदिसे दुखी) हैं, उन का (के वचनों) बुरा न मानना चाहिये। * (क्योंकि) ये विचारकर नहीं बोलते। १। लोकमें यह रीति देखी सुनी जाती है कि अत्यंत बर्षा होनेपर और बिल्कुल वर्षा न होनेपरभी (अर्थात् दोनों हालतोंमें) व्याकुल स्त्री पुरुष दैवहीको गालियाँ देते हैं। २। नाथकी शपथ! अर्थात् आपकी सौगंध खाकर सत्य कहता हूँ। भारी संकट पड़नेसे नाकों दम आ जानेपर (जो अनुचित) कह डाला है § उसे अपनी ओर देखकर क्षमा कीजिये। ३। संकटके समय समर्थ हितकारीका स्मरण किया जाता है। वह (समर्थ स्वामी) अपराधोंको भुलाकर सब प्रकार (विशेष कृपा करके) संकटसे निकाल लेता है।४। सेवककी बिगड़ी हुईको सदा स्वामीहीने सुधारा है और तुलसीदासपर तो आपकी उपाधीरहित न्यारीही कृपा है।५। (पूर्व जो कठोर बचन कहे हैं उन्हींकेलिये क्षमाप्रार्थी हैं।)

---

*अर्थान्तर—१ इनके कथनको सुनकर महात्मा भेद अर्थात् उद्वेग नहीं मानते। (डु०) २ इनको अपनेसे भिन्न कर न मानिये। अर्थात् कुवचन सुन विमुख न मान लेना चाहिये। (वै०)। ३ इनकी भिन्नता न माननी चाहिये। (वीर)

§अर्थान्तर—१ ऐसी भारी साँसति हुई कि नाथसे कहते कहते नाकपर दम आ गया। (पं० रा० कु०) २ भारी साँसति होनेसे नाथसे 'ना कहि आये' अर्थात् कह न आया, कहते न बना। (रामायणीजी) ३ प्रायः आधुनिक टीकाकारोंने 'नाथ सों' का अन्वय दूसरे चरणके 'कहि आयो' के साथ किया है।

टिप्पणी—१ 'अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी।' इति। (क) आर्त्त, स्वार्थी, दीन और दुखियोंके चित्त आर्त्ति, स्वार्थ, दीनता और संकटवश होनेसे विचारशक्तिविहीन हो जाते हैं, चित्तमें चेत रहही नहीं जाता। उन्हें तो यह पड़ जाती है कि हमारा संकट कैसे दूर हो, हमारा स्वार्थ कैसे सधे? स्वार्थमें लोग अंधे हो जाते हैं, 'अपना हित, अपना लाभ कैसे हो' यह छोड़ उन्हें और कुछ सूझता-नहीं। वे विचार करही नहीं सकते, जड़ हो जाते हैं, उनका मन मलिन हो जाता है, बुद्धि जड़ हो जाती है जिससे जोही कुछ उनके मनमें आया वे बक डालते हैं। यथा, '**कहहुँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरतके चित चेतू॥**' '**आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥**' '**कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा। भरत सनेह बिचारु न राखा॥**', '**बिबुध बिनय सुनि देवि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥**' '**लोचन सहस न सूझ सुमेरू।**' '**सुर स्वारथी मलीन मन**'। ये जो न कह डालें सो थोड़ाही है। यथा, '**आरत काह न कहहिं कुकरमू।**', '**स्वामिधरम स्वारथहि बिरोधू। बयरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू॥**', '**सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु। रचि प्रपंच माया प्रबल भयभ्रम अरति उचाटु॥**' (अ०)

(ख) 'अति आर्त्त, अति स्वार्थी, अति दीन' का भाव कि आर्त्त, स्वार्थी इत्यादि चाहे सँभलभी जायँ पर जो 'अति आर्त' हैं वे कदापि नहीं सँभल सकते। आर्त आदिके वचन चाहे क्षम्य न हों पर अति आर्त, अति स्वार्थी, अति दीन दुखारी अवश्य क्षम्य है। विचार-शक्तिहीन हो जानेके कारण इनके वचन क्षम्य हैं। विचारवान् सज्जन इनका बुरा नहीं मानते। प्रमाण यथा, '**अबिनय बिनय जथा रुचि बानी। छमिहि देव अति आरत जानी॥**' भाव यह है कि मैंने जो कठोर वचन कहे, जो तूकार रेकारसे संबोधन किया, वह सब आर्त्ति और स्वार्थवश। क्योंकि अतिसंकटापन्न होनेसे मैं दीन हो रहा हूँ, कष्टके मारे मुझमें विचार रहही नहीं गया कि मैं क्या कह रहा हूँ। जो कह

रहा हूँ वह उचित है या अनुचित । अतएव आप मेरी अविनय विनयको क्षमा करें ।

(ग) यहां 'अति' शब्दमें पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है ।

२ 'लोक रीति देखी सुनी' इति । (क) अब उदाहरण देते हैं कि अति वर्षा या अनावृष्टिसे अत्यन्त घबड़ाकर लोग ईश्वरकोही गाली देने लगते हैं । पर ईश्वर इनको अति आर्त्त जान इनकी गालीका बुरा नहीं मानता । उनकी गाली सह लेता है और उनके लालन पालनमें त्रुटी नहीं करता । वैसेही आपभी मेरे कठोर वचनोंका बुरा न मानिये । यह न समझिये कि मैं विमुख हो गया हूँ । मेरे कुवचनोंपर ध्यान न देकर मेरी रक्षा कीजिये ।

(ख) 'देहिं दैवहिं गारी' इति । भाव कि ईश्वर तो अन्यायी है नहीं । वह तो सब कार्य न्यायसंयुक्तही करता हैं । पर लोग स्वार्थवश जब व्याकुल हो जाते हैं तब उसेभी अन्यायी कहने लगते हैं । यथा, "सीयमातु कह बिधि बुधि बाँकी । जो पय फेनु फोर पबि टाँकी ॥ सुनिय सुधा देखिय गरल सब करतूति कराल । जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल ॥ सुनि ससोच कह देवि सुमित्रा । बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा ॥ जो सृजि पालै हरै बहोरी । बाल केलि सम बिधि मति भोरी ॥ कौसल्या कह दोसु न काहू । करम बिबस दुखसुख छति लाहू ॥ कठिन करमगति जान बिधाता । जो सुभ असुभ सकल फलदाता ॥ देवि मोह बस सोचिय बादी । बिधि प्रपंच अस अचल अनादी ॥" (अ०) यदि ईश्वर उनकी बातका बुरा मानता, उनके वचनोंपर ध्यान देता, तो सृष्टिका कार्यही तमाम हो जाता ।

३ (क) 'नाकहि आयें नाथ सों सासति भयें भारी' यह कटुवचनका कारण बताया । पहले कहा कि अति आर्त्तके बचनोंका बुरा नहीं माना जाता और अब कहते हैं कि हम अति आर्त्त और अति दुखी थे । अतएव हमारे वचन क्षम्य हैं । इनको क्षमा कीजिये ।

(ख) 'निज ओर निहारी' इति । यह कहकर जनाया कि मेरे

अपराधके विचारसे तो वे बचन क्षमा नहीं किये जा सकते। पर अपने प्रभुपनेको देखियेगा तो क्षमा हो सकते हैं। अतः कहते हैं कि 'निज ओर निहारी'। अपनी ओर देखिये, अर्थात् कृपा, दया, करुणा, शरणपालकता, भक्तवात्सल्य, क्षमा, दीनबंधुता आदि अपने गुणोंपर दृष्टि डालिये। मेरे अवगुणोंको, मेरी करनीको न देखिये। आप मुझे पूर्व अपना चुके हैं। मैं आपका हूँ। बुरा भला जो कुछभी हूँ मुझे तुम्हारीही गति है, इसे विचारिये। समर्थ हितकारी ऐसाही करते हैं। वे सेवक वा शरणागतके अपराधोंको नहीं देखते। आशय यह हैं कि यदि मेरी करनीकी ओर देखियेगा तो मेरा निस्तार कभी होही नहीं सकता। यथा, '**जो करनी समुझहिं प्रभु मोरी। नहि निस्तार कलप सत कोरी।**' स्वामी अवगुणोंपर ध्यान नहीं देते। यथा, '**जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥**' वैसेही आप अपने अहेतुकी कृपालु स्वभावसे मेरा भला कीजिये।

४ (क) 'समय सांकरे सुमिरिये समरथ हितकारी' इति। भाव कि संकटमें उसीको सुमिरा जाता है कि जिसमें ये दोनों गुण हों। इनमेंसे केवल एक गुणवालेको कोई संकटमें नहीं पुकारता। क्योंकि जो समर्थ हैं पर कृपाल नहीं हैं वे पुकार सुनकरभी कभी सहायता न करेंगे और जो दयावंत हैं पर जिनमें इतना सामर्थ्य नहीं कि रक्षा कर सकें वेभी सहायता नहीं कर सकते। यथा, **प्रभु अकृपाल कृपाल अलायक जहँ जहँ चितहिं डुलावों**'। अतः 'समर्थ' और 'हितकारी' दोनों कहे।

(ख) 'अपराध बिसारी' इति। इससे जनाया कि यह गाढ़में स्मरण करनेवाला वही है जिसने पूर्व उस समर्थ हितकारीका अपराध किया है। तबभी वह समर्थ स्वामी उसके दोषपर दृष्टि न डालकर अपने 'स्वामीपनेके' स्वभावका प्रतिपालन कर उसकी रक्षा करता है। यह 'समर्थ हितकारी' की व्याख्या है।

५ (क) 'बिगरी सेवककी सदा साहिबहि सुधारी' इति। सेवककी बिगड़ी हुईको स्वामीही सुधारते आये हैं। यथा, '**हौं तो**

बिगरायल ओर को बिगरो न बिगरिये। तुम्ह सुधारि आए सदा सबकी सबही बिधि अब मेरियो सुधरिये।', 'सो मैं सब बिधि किन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई। कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।' (अ०)

(ख) 'साहिबहि सुधारी' का भाव कि एक तो मैं आपका सेवक हूँ, दूसरे आपका अत्यन्त कृपापात्र हूँ। अतएव मेरी बिगड़ी हुई आपहीके बनाये बनेगी। व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ बराबर होनेसे यहां 'तुल्य प्रधान गुणीभूत व्यंग्य' है।

(ग) 'तुलसीपर तेरी कृपा निरुपाधि निनारी' इति। इन शब्दोंसे पूर्वकी वह सब कृपाएँ सूचित कर दीं जो हनुमानजीने की। यथा, 'बालक बिलोकि बलि बारे ते आपनो कियो दीनबंधु दया कीन्ही निरुपाधि न्यारियै।' (बाहुक) 'निरुपाधि निनारी' का भाव कि मैंने आपका कोई पूजापाठ, जप, अनुष्ठान आदि नहीं किया। यह सब करता तबभी निर्विघ्न इनका होना कठिन था। आपको प्रसन्न करना कुछ सहल बात है? केवल प्रेतके बतानेपर आपके चरण पकड़ लेनेमात्रसे आपने प्रथम दर्शनपरही अपनी ओरसे असीम कृपा की, श्रीरघुनाथजीके दर्शन कराये और तबसे बराबर अहेतुकीय कृपा करते आये। तात्पर्य कि मुझे आपकी उसी कृपाका भरोसा है। अपना कोई बल नहीं है।

पं० देवदत्तजी कहते हैं कि 'अति आरत' यह वाक्य वास्तविक स्थितिका द्योतक है। 'अति आरत' से स्पष्ट 'राजदण्ड' लक्षित होता है। राजदण्डसे मुक्त होनेपर गोस्वामीजीने इस पदद्वारा विनय की।

३५

कहु कहिये गाढ़े[1] परे सुनि[2] समुझि सुसाईं।
करहिं अनभलेहु[3] को भलो आपनी भलाईं॥ १॥

---

१ गाढ़ो–रा०। गाढ़ौ–ह०, मु०। गाढ़े–भा०, बे०, ज०, ७४, आ० (मु०) २ सुनि–रा०, भा०, बे०, प्र०, ज०, ७४। सुन–आ० (दी०), ह०। सुनु–दी०। सुनि–(वै० टीकामें)। ३ अनभलेहु–रा०, भा०,। अनभलेउ–भ०, वि०। अनभले–ह०, ज०, ५१, प्र०, ७४,

समरथ सुभी जो पावई[४] बीर पीर पराई।
ताहि तकैं सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई॥ २॥
अपनो[५] अपने को भलो चहै लोग लोगाई।
भावै जो जेहि तेहि भजै सुभ असुभ सगाई॥ ३॥
बाँह बोल दै थापिये जो निज बरिआई।
बिनु सेवा सो पालिये सेवक की नाई॥ ४॥
चूक चपलता मेरिऔ तू बड़ो बड़ाई।
होत आदरे ढीठ है अंत[६] नीच निचाई॥ ५॥
बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई।
नीको तुलसीदासको तेरिऔ[७] निकाई॥ ६॥

शब्दार्थ—कटु = कडुवे, मनको बुरा लगनेवाले। गाढ़ (सं०) = संकट। यथा, 'जहं जहं गाढ़ परै संतन्ह पर सकल काम तजि होहु सहाई।', 'एक परे गाढ़े एक डाढ़तही काढ़े एक देखत हैं ढाढ़े कहैं पावक भयावनो।' (क०) गाढ़े परे = संकट पड़नेपर, संकटसमय। गाढ़े = गाढ़ के। अनभले = बुरे। भलो = भला, हित। भलाई = भले स्वभावसे, भलपनसे। सुभी (शुभी) = शुभ (मंगल, कल्याण) करनेवाला। पीर = दर्द, दुःख, पीड़ा। पराई = दूसरेकी। पराई पीर पाना = दूसरेका दुःख देखकर स्वयं दुःखका अनुभव करना,

---

डु०, बै०, मु०, दी०। ४ सुभी जो पाइए–रा०, वै०, इ०। सुभी जो पावै–टी०, डु०। सुभी जो पावई–१५, दी०, मु० (पावही)। सुभ जो पावई–भा०, भ०। सुभ जो पाइये–५१, वि०। सुभ जो पावहीं–७४। सुभ ज्यों पावहीं–बे०। ५ अपनो–रा०, भा०, वे०, ज०, दी०। अपने–प्र०, इ०, ५१, ७४, आ० (दी०)। ६ हैं अंत–रा० (है पर किसीने 'ा' बढ़ाया है।) हौं अति–भा०, बे०, प्र०, ५१, भ०। (हों), ज० (हो), ज० (हो), दी। है अति–७४, डु०, बै०, मु०, वि०। ७ तेरिही–रा०, ५१ मु०, डु०, दी, बे०। तेरीही–ज०। तेरियै–भा०, बे०, इ०, ७४, भ०, वि०।

हमदर्दी, दया, करुणा या सहानुभूति करना। पराये दुःखसे दुखी होना और उसपर करुणाका उत्पन्न होना। यथा, 'करुनामय रघुबीर गुसाईं। बेगि पाइयहि पीर पराई ॥' (अ०) तकै = ताकते हैं। तकना = शरण या आश्रय लेना। यथा, 'आवत रावन सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा ॥' (बा०) अपनो=अपना, निजका। अपने को = जो अपना है उसका। अपना = आत्मीय, स्वजन, संबंधी। लोग = मनुष्य। लोगाई = स्त्रियाँ। हिंदीमें 'लोग' शब्दका प्रयोग सदा बहुवचनमें और मनुष्योंके समूहकेलियेही होता है। लोग लोगाई, स्त्रीपुरुष, जनसमुदाय। यथा, 'जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं दोउ भाई। थकित होंहिं सब लोग लोगाई ॥' (बा०) भावै=अच्छा वा प्रिय लगे। भजै = सेवा करे। भज् सेवायाम धातुसे। सुभ असुभ = शुभाशुभ, भला बुरा। सगाई = संबंध, नाता। यथा, 'जहँ लगि जगत सनेह सगाई' (अ०), 'मातु पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई ॥ संग सुभामिनि भाई भलो दिन द्वै जनु औंधहु ते पहुनाई।' (क०) बांह बोल दे = रक्षा वा सहायताका वचन देकर; सहायताका एकरार करके। यथा, 'लाज बांह बोल की नेवाजेकी सँभार सार साहिब न राम सों बलैया लीजै सील की।' (क० लं०) बोल = वचन, करार, वादा। बांह देना=शरणमें लेना, सहारा देना। बरिआई = हठ करके, जबरदस्ती। यथा, 'मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साइं। मो कहं दीन्ह राज बरिआइं॥ (कि०) नाई = समान, तुल्य। यथा, 'समरथ कहु नहिं दोष गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥' (बा०) चूक = भूल, ग़लती, कसूर। चपलता = चंचलता, ढिठाई, उतावली, स्वार्थसाधनमें उद्यत होनेका भाव। मेरियै=मेरीही। तेरियै=तेरीही। आदरे (सं० आदृत=सम्मानित) = सम्मानित होनेसे, आदर होने वा किये जानेसे। ढीठ (सं० धृष्ठ)=बड़ोंका संकोच या डर न रखनेवाला, बड़ोंके सामने अनुचित स्वच्छन्दता प्रकट करनेवाला, गुस्ताख, शोख। यथा 'बिनु पूछे कछु कहौं गुसाईं। सेवक समय न ढीठ ढिठाई ॥' (अ०) निकाई = नेकी, भलाई।

पद्यार्थ—गाढ़ पड़नेपर जो कटु वचन कह दिये जाते हैं उन्हें सुन-समझकर उत्तम स्वामी अपने भलप्पन (के स्वभाव) से उस बुरेकाभी भला (ही) करते है । १। हे वीर समर्थ हितकारी ! जो पराई पीर पाता है † उसीको सब ताकते है (अर्थात् उसीकी शरण सब ताकते हैं) जैसे नदी समुद्रको । कुछ समुद्रने उसे नहीं बुलाया । अर्थात् जैसे नदियाँ बिना बुलाये अपनेसे समुद्रकी शरण दौड़ी जाती हैं, वैसेही दयावान्के पास सभी बिना बुलाये दौडे जाते हैं ।२। अपना और अपने आत्मीय संबंधी (स्त्री, पुत्र, माता, पिता, प्रिय, सेवक, आश्रित इत्यादि) का भला सभी स्त्रीपुरुष चाहते हैं । शुभ सम्बंध हो वा अशुभ जिसे जो भाता है वह (प्रेमके नातेसे) उसीको भजता है, उसीकी सेवा करता हैं ।३। अपनी हठसे जिसको 'बांह बोल' देकर बसाइये उसे बिना सेवाकेभी (अर्थात् वह कुछ सेवा न करे तबकी) सेवककी तरह पालनाही चाहिये ।४। (हे स्वामी!) चूक और ढिठाई मेरीही (ओरसे हुई) हैं (आपकी ओरसे नहीं) । आप तो अपनी बड़ाईसे बडे हैं । आदर पानेसे नीच अपनी नीचतावश आखिर ढीठ होही जाता है । (भाव कि मैंभी आदर पानेसे ढीठ हो गया और आपके बड़प्पनका कुछ लिहाज न कर मैंने आपको कटुबचन कह डाले । आखिरको मैं नीचही तों हूँ, नीचताका स्वभाव कैसे छूटे ?) ।५। आप 'बंदि-छोर' हैं (बंधनसे छुड़ानेवाले हैं), वेद और आगम (पंचतंत्र, तंत्रशास्त्र) में आपकी यह विरुदावली गायी है । (अतः मुझे विश्वास है कि मुझ) तुलसीदासकाभी भला आपकीही भलाई (भलेपन) से होगा ।६।

---

†अर्थान्तर-१ 'हे वीर ! जो समर्थ हितकारी पराई पीर पाता हैं ।' एवं 'हे समर्थ हितकारी वीर ! जो पराई पीर पाता है ' इस तरहभी अर्थ हो सकता है । २ वै०आदि कई टीकाकारोंने "पीर पराई" का अर्थ "तो उसकी सब पीड़ा भाग जाती है" ऐसा किया है । ३ सच्चा शुभेषी तों वही है जों सामर्थ्यवान् होकरभी दूसरेकी पीड़ाको अपनीही पीड़ा समझे । (दी०) । ४ जो समर्थ, भला करनेवाला और वीर स्वामी होता है वह पराई पीडाको अपनीही समझता है । (भ०) ५ सर्वशक्तिमान् अच्छे और पराक्रमी स्वामी को पाकर कष्ट भाग जाते हैं ।

१ टिप्पणी—'कटु कहिये गाढ़े०' इति। भाव कि मैंने जो बुराभला कहा, खरी खोटी सुनाई, वह सब संकटापन्न होनेसे। आप सुस्वामी हैं, आप ऐसा समझकर अपने भलपनेके स्वभावसे मुझ बुरे सेवकका भला करें। आप वीर हैं, मंगल कल्याणकर्त्ता और समर्थ हैं, करुणामय आपका स्वभाव है, यही जानकर मैं संकटमें आपकी शरण आया हूँ। आप मेरे आश्रयदाता बने। जैसे समुद्रके पास जानेपर वह नदियोंका आश्रय होता है; नदियाँ वहाँ पहुँचकर अचल हो जाती हैं, यथा, 'सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होहि अचल जिमि जिव हरि पाई॥' (कि०) वैसेही मुझे आश्रय दूजिये, मेरा संकट दूर करके मुझे शान्त कर दीजिये। 'ज्यों नदी बारिधि न बुलाई' में उदाहरण अलंकार है।

२ 'सुनि समुझि सुसाई' इति। यहां 'सुस्वामी' की व्याख्या है। सुनकर हृदयके भावको समझकर काम करना सुस्वामीका कर्त्तव्य है। पुनः, 'सुसाई' का भाव कि जो कुस्वामी हैं अथवा साधारण प्राकृत स्वामी हैं वे इसे नहीं समझ सकते। इसीसे वे कुसेवकका भला नहीं करते। 'सुनि' अर्थात् कटु वचन सुनकर। 'समुझि' अर्थात् यह समझकर कि यह बहुत कष्टमें है, बहुत व्याकुल है, इसीसे कटुवचन कह रहा है जिसमें संकट शीघ्र हर लिया जाय; ये उसके अन्तःकरणसे निकले हुए वचन नहीं हैं; हृदयमें तो इसके प्रेमही है। मिलान किजिये, 'हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥' (कि०)

३ (क) 'आपनी भलाई' इति। अपने क्षमा, दया, करुण, वात्सल्य आदि गुणमय सहज स्वभावसे। (वै०) यथा, 'कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।' (भरतजी) (ख) समरथ सुभी' इति। पूर्व पद ३४ में जो 'समरथ हितकारी' कहा, वही यहाँ 'समरथ सुभी' है। शुभ करनेवाला समर्थ। केवल समर्थ होनेसे काम नहीं चलता। विशेष पद ३४ में देखिये। (ग) 'अपनो अपने को भलो चहै' इति। इन चरणोंमें दृष्टांतके तौरपर लोकरीति दिखा रहे हैं। (घ) 'ताहि तकैं सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई' इति। मिलान कीजिये "रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमँगि अवध अंबुधि कहुँ आई॥"

" सरिताजल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥", " जिमि उदार गृह जाचक भीरा।"

४ 'भावै जो जेहि तेहि भजै सुभ असुभ सगाई' इति। पं. रा० कु०— " अपना और अपने संबंधी (स्त्रीपुत्रादि) का भला सभी स्त्रीपुरुष चाहते हैं। इससे जो जिसको भाता है सो तिसको भजता है। सगाई अर्थात् नाता करनेमें शुभ अशुभका विचार नहीं करते कि यह भजने लायक है है या नहीं। यह लोकरीति दिखायी। तात्पर्य कि हमको तुमही भाते हो, अपनी भलाईकेलिये हमने तुमको ताका है।"

रा० त० बो०—" यदि कहो कि और प्राणीभी तो हैं और जो अन्य देवीदेवताओंका आश्रय लेते हैं, तुमभी वहीं जाओ, तो उसपर कहते हैं कि अपना और अपने आश्रितका भला सभी चाहते है। इसी कामनासे जो जिसको प्रिय लगता है वह उसीको भजता, सेवा करता है। शुभ कामना स्वर्गादि अशुभ कामना मारण मोहन उच्चाटनादिके संबंधसे। अर्थात् जिसकी जैसी कामना होती है उसीके अनुकूल वह उपासना करता है।" अर्थात् यह उपासना शुभ और अशुभके नातेसे देखी जाती है' (वि०)

चरखारी—" १ जो जिसको भावे है वह उसको भजता है, चाहे शुभ संबंध हो, चाहे अशुभ। वा, २ शुभ संबंधमें वा अशुभ संबंधमें जो जिसे भावे वह उसे भजता है। वा, ३ सगाई (संबंध) जीवका जीवसे होता है वही भावता है, चाहे शुभ दशामें हो चाहे कष्टमें वह उसीको भजता है" अर्थात् जिसका जिससे संबंध हो जाता है वह उसीको भजता है।

वैजनाथजी—उत्तम स्वामीकी रीति कह चुके; अब लोकरीति कहते हैं कि सब अपने अपने सेवकका भला चाहते हैं; बल अनुमान हित करते हैं। और, देवताओंकी यह रीति है कि जो देवता जिसको भावै उसीको शुभ या अशुभ सम्बंधसे भजै तो देवताभी मनोरथ अनुकूल फल दे देता है। अर्थात् मारण आदि अशुभ संबंधीकाभी मनोरथ देवता पूर्ण कर देता है और स्वर्ग आदि चाहनेवाले शुभसंबंधीकाभी मनोरथ वह देवता पूर्ण कर देता है। तथा मैं आपको भजता हूँ आप मेरा मनोरथ पूर्ण करें।

मेरी भलाई बुराई सब आपहीपर निर्भर है। (वि०) जो जिसको भाता है वह उसेही भले या बुरे संबंधसे भजता है। (दीनजी) सब अपनी अपनी भलाई चाहते हैं। उसकेलिये भले बुरेका संबंध जो जिसको अच्छा लगता है वह उसीकी सेवा करता है। (वीरकवि)

नोट—१ 'महादेव अवगुनभवन बिष्नु सकल गुनधाम। जाकर मन रमु जाहि सन तेहि तेही सन काम' गिरिजावाक्य है। इसके अनुकूल पं० रामकुमारजीका अर्थ बिलकुल ठीक उतरता है। भाव कि हमारा नाता तो आपसे जुड़ गया है जैसा आगेभी कहते हैं। आपको छोड़ मैं दूसरेके पास नहीं जानेका। दूसरेकी खुशामद नहीं करनेका। भले हों या बुरे, मेरी भलाई आपहीपर निर्भर है। 'जो जेहि भाव नीक तेहि सोई'। यही चरखारी टीकाकारकाभी मुख्य भाव जान पड़ता है। प्रायः सब टीकाकारोंने 'अपने अपने. सगाई' का एकहीसा अन्वय किया है। केवल बैजनाथजीने दोनों चरणोंको अलग अलग कर दिया है। परन्तु 'अपनो' पाठमें दोनों चरण एकसाथही रहेंगे, अलग नहीं। दोनों चरणोंका संबंध टूट नहीं सकता।

२ रा० त० बो० और वि० ने अर्थ किया है कि शुभाशुभके नातेसे उपासना की जाती है। शुभ कामनाकेलिये शुभ देवता, अशुभकेलिये अशुभ देवताभी उपासना करते हैं। मेरी समझमें यह अर्थ भावको शिथिल कर देता है। चाहे कामना शुभ हो चाहे अशुभ, जो जिसको भा गया वह उसी देवताकी उपासना करता है। उसीसे अपनी सब भलाई चाहता है। सब कामनाओंकी सिद्धि उसीसे चाहता है। जिससे नाता जुड़ गया उससे जुड़ गया। इस भावमें विशेषता प्रकट है।

५ (क) 'बाह बोल दै थापियै०' इति। भाव कि पहले आपने अपनी ओरसे ज़बरदस्ती मुझे शरणमें लिया। मैं अपनी ओरसे शरण नहीं हुआ था, अब मैं बुरा हूँ या भला, आपका भजन करता हूँ या नहीं! सुस्वामी होकर आपको तो मेरा पालन करनाही कर्त्तव्य है। इसीमें आपको यश है। यथा, 'भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाई

नीचु। सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीचु।' (बा०)
(ख) "निज बरिआई" का भाव निम्न उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जाता है। "टूकनि को घर घर डोलत कँगाल बोलि बाल ज्यों कृपाल नत-पाल पोसो है। कीन्ही है सँसार सार अंजनीकुमार बीर आपनो बिसारि है न मेरेहू भरोसो है॥"; "पाल्यो तेरे टूक को परेहू चूक मूकिये न कूर कौड़ी दूको हौं आपनी ओर हेरिये॥ भोरा-नाथ भोरे हौ सरोष होत थोरे दोष पोषि तोषि थापि आपनो न अवडेरिये॥ अंबु तू हौं अंबुचर अब तू हौं डिंभ सौ न बुझिये बिलंब अवलंब मेरे तेरिये। बालक बिकल जानि पाहि प्रेम पहि-चानि तुलसीके माथेपर लाँबी लूम फेरिये॥"; "कालकी करा-लता करम कठिनाई कि धौं पाप के प्रभाउ की सुभाय बाय बावरे। वेदन कुभाँति सो सही न जाति राति दिन सोई बांह गही समीर-डावरे॥ लायो तरु तुलसी तिहारो सो निहारि बारि सींचिये मलीन भो तयो है तिहूँ ताव रे। भूतन की आपनी पराई है कृपानिधान जानियत सबहीकी रीति राम रावरे॥" "खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो अंजनीकुमार सोध्यो राम पानि पाक हौं।" इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि श्रीहनुमान्‌जीने इनकी बांह पकड़कर और वचन देकर इनको अपनाया। बालपनेमें शिवरूपसे सहायता की थी। यह बात 'मूल गुसाईं चरित' सेभी स्पष्ट है। वाल्मीकि शरीरमेंभी श्रीहनुमान्‌जीने वचन दिया है।

६ 'चूक चपलता मेरियै तू बड़ो बड़ाई।' इति। (क) पूर्व कह आये हैं कि आप ज्ञाननिधान हैं, सर्वज्ञ हैं, सुजान हैं, सुस्वामी है। यथा, 'तो सो ज्ञाननिधानको सर्वज्ञ बिया रे।' (३३), 'कटु कहिये गाढ़े परे सुनि समुझि सुसाईं'। ऐसे स्वामीको नीति बताना, शिक्षा देना, बहुत कहना दोष है। यथा, 'सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।' (अ०) अतः अब उसकेलियेभी क्षमाकी प्रार्थना करते हैं।

(ख) 'चूक चपलता मेरिये' इति। स्वामीका संकोच न हुआ, उल्टा-सीधा जो मनमें आया बक डाला, यही धृष्टता है। यथा, 'नाथ निपट

मैं कीन्ह ढिठाई। स्वामिसमाज सकोच बिहाई॥ अविनय विनय जथा रुचि बानी। छमिहि देव अति आरत जानी॥' (अ०)

७ 'तू बड़ो बड़ाई' इति। मानता हूँ कि मैं आपकी सेवाके योग्य नहीं हूँ। मुझसे चूक हुईही चाहे। पर आप तो सुस्वामी हैं। इस अपनी बड़ाईका विचारकर मेरी चूकको सुधार लीजिये। यथा 'सेवा जोग तुलसी कबहुँ कहू चूक परी साहिब सुभाउ कपि साहिब संभारिये।' (बाहुक) मिलान कीजिये "जद्यपि जनम कुमातु तें मैं सठ सदा सदोसु। आपन जानि न त्यागि हैं मोहि रघुबीर भरोसु॥ जद्यपि मैं अलभल अपराधी। मोहि कारन भइ सकल उपाधी। तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। करिहहिं मोपर कृपा बिसेषी॥" पूर्व पदमें जो 'सब बिधि ऊपर करै' कहा है और यहाँ जो 'तू बड़ो बड़ाई' कहा है वह यही है। पुनः, ऊपर हनुमान्‌जीको 'सुसाईं' कहा है, उसीके संबंधसे यहां 'चूक चपलता' रूपी दोष अपनाही कहा। यथा, 'राम सुस्वामि दोष सबु जन हीं। मोरे सरन रामकी पनहीं॥''

८ 'होत आदरे ढीठ है अंत नीच निचाई' इति। नीच आदरसे ढीठ हो जाता है। यथा, "रज मग परी निरादर रहई। सबकर पग प्रहार नित सहई॥ मरुत उड़ाइ प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥ सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम कर संगा॥ उदासीन नित रहिय गुसाईं। खल परिहरिय स्वान की नाईं॥" (उ०)। नीच कुत्तेके समान है। जैसे कुत्तेका आदर करो तो वह मुँहभी चाटने लग जाता है, स्वामीको अशुद्ध करता है पर स्वामी उसे मारता नहीं बल्कि और दुलराता है। वैसेही मैं आपके यशमें बट्टा लगानेवाला हूँ, आप मेरी इस नीचतापर ध्यान न दीजिये। मेरा आदर करनेसे मैंभी ढीठ हो गया। यथा, 'आरति मोरि नाथ कर छोहू। दोउ मिलि कीन्ह ढीठ अति मोहू॥' (श्रीभरतवाक्य श्रीरामप्रति) मिलान कीजिये, "आसन बसन हीन विषम बिषाद लीन देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को। तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो दियो

फल सीलसिंधु आपने सुभाय को ॥ नीच यहि बीच पति पाइ भहराइ गयो विहाय प्रभु भजन बचन मन काय को। ताते तन पेखियत घोर बरतोर मिश फटि फूटि निकसत हैं लोन राम राय को ॥ " (बाहुक)

श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि यहां कुसेवक होनेका कारण बताते हैं कि आप सुस्वामी हैं। सेवकका आदर करना आपकी उत्तमताकी प्रशंसा है। अतएव यह कहना उचित नहीं कि आपने मुझे ढीठ बना दिया। यह दोष मेराही है कि मैं ढीठ हो गया। क्यों कि मैं अति नीच हूँ, कुसेवक हूँ। पुनः भाव कि आप कुस्वामी होते तो मुझे दंडका भय सदा बना रहता, मेरी नीचता दबी रहती, मैं ढीठ न हो जाता। एवं यदि मैं सुसेवक होता तोभी आदर पाकर ढीठ न हो जाता।

यह पदभी उसी खरी खोटी आर्त्तवाणी कहनेके प्रायश्चित एवं कारण स्वरूपमें लिखा गया है। इस पदमें पूर्वोक्त कल्पना तुलसीके वचनोंद्वारा सत्य स्वीकृत हुई। उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया। 'बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गायी।' इस पदमें तुलसीदासजी परम कृतज्ञके रूपमें प्रगट हुए। (दे० द० शर्मा)

१० 'नीको तुलसीदासको तेरिऐ निकाई' इति। अर्थात् मेरा भला दूसरी तरह नहीं होनेका। मेरा भला जब होगा तब आपकीही कृपा भलाईसे होगा। सबका भला आपनेही किया है। अतएव हमाराभी अवश्य करेंगे। मिलान कीजिये, "होइहहि जब तब तुम्हही ते तुलसी को भलेरो।", "राम निकाई रावरी है सबही को नीक। जौं यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक॥", "मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई। हौं तो सांइदोही पै सेवकहित साईं॥"

आशय यह है कि मेरे इस ढिठाई दोषकोभी दूर करके मेरा भला कीजिये। यथा, "यहु बड़ दोष दूरि करि स्वामी। तजी संकोच सिखइय अनुगामी॥" (अ०), "साहिब सुभाय कपि साहिब सँभारिये।"

११ यहांतक ग्यारह पदोंमें हनुमान्‌जीकी विनय है। श्रीहनुमान्‌जी ग्यारहों रुद्रोंके सम्मिलित अवतार हैं। अर्थात् अलग अलग रहनेवाले ग्यारहों रुद्र मिलकर एक हनुमद्रूपसे प्रगट हुए हैं। हनुमान्‌जी ग्यारहों रुद्रोंके कारण अर्धनारीश्वररूप महारुद्र महाशंभुके अवतार है। पद १० देखिये। तभी तो बाहुकमें कहा है कि '**पंचमुख छमुख भृगुमुख्य भट असुर सुर सर्व सरिसमर समरत्थ सूरो।**' अतः एकादश पदोंसे वन्दना की गयी। आगे एकही पदमें बहुतोंकी समष्टिवंदना है। उसमेंभी इनके साथ 'मंगल मूरति' विशेषण देकर इनको आदिमें रक्खा है जिसमें आगे मंगलही मंगल हो।

शिववंदनामें बारह पद कहे और ये उन्हींके अवतार हैं। तथा दोनोंही रूप श्रीरामजीके अनन्यभक्त हैं। दोनोंही रामभक्तिके कोठारी हैं, भण्डारी हैं। शिवजीके सम्बंधमें श्रीवचनामृत है कि, '**जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी।**' और श्रीहनुमान्‌का तो कहनाही क्या? उन्होंने तो '**अपने बस करि राखे रामू**'। श्रीसीतारामजीही नहीं किंतु सारा परिवार उनका ऋणी है। यथा, '**सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।**', '**प्रति उपकार करउँ का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥**' इसीसे गोस्वामीजी कहते हैं कि '**तोसे न उसीले**'। संभव है कि इसीसे बारह पदोंकी संख्याकी पूर्तिकेलिये आगे समष्टिवंदनामेंभी इनका नाम दिया गया हो।

यहांतक एक रुद्री हुई। इसके पाठसे मनोकामनाकी पूर्ति होती है।

प्रथम (२५ वें) पदके अंतमें '**जयति विश्वविख्यात बानैत बिरुदावली बिदुष बरनत वेद बिमल बानी**' कहा है और यहाँ अंतमें '**बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई**' उसका उपसंहार है।

१२ ग्यारह मुख्य पदोंमेंसे दो 'अति आरत अति स्वारथी' और 'कटु कहिये गाढ़े परे' को छोड़कर शेष नौ पदोंमेंसे प्रत्येकमें इनका रामसंबंध, रामभक्ति, रामप्रेम तथा इनकी वीरता और इनका पराक्रम वर्णन किया गया है। अन्य कोई बात ऐसी नहीं है जो सबोंमें

पाई जावे। ऐसा करके जनाया गया है कि ये दो गुण इनमें सर्वोपर हैं। एक तो रामप्रेम, दूसरे 'अघट घटना सुघट सुघट बिघटन 'का सामर्थ्य।

श्रीशिवजीकी वन्दनामेंसे बारह पदोंमेंसे तीन 'बावरो रावरो' (५) 'मागिअै गिरजापति' (६) और 'देव बड़े दाता' (८) को छोड़कर अन्य ९ पदोंमें कामसंबंधी कोई न कोई नाम शिवजीका या कामकाही कोई नाम आया है। यथा, '**कामरिपु** (३,७), **मयनरिपु** (९), **कामारी** (१०), **मर्दन मयन** (११), **काममदमोचन** (१२), **मयनमर्दन** (१३), **मारि कै मारु** (४) और **उरबसि प्रचंच रचे पंचबान**। (१४)'

इस प्रकार शिवजीकी वन्दना करनेका मुख्य कारण यह अनुमानित होता है कि उनसे कामके नाशकी प्रार्थना है। कामको शिवजीहीने भस्म किया है, यह जगत्‌विख्यात् है। इसीसे वहां आदिमें उपक्रम है। '**देहु कामरिपु रामचरनरति**' और अंतमें इसीसे उपसंहार किया है। '**करि कृपा हरिअ भ्रमकंदु कामु। जेहिं हृदय बसहिं सुखरासि रामु**'॥

३६ [११] राग-गौरा [गौरी]

मंगल मूरति मारुतनंदन। सकल अमंगल मूल निकंदन॥१॥
पवनतनय संतन हितकारी। हृदय बिराजत अवधबिहारी॥२॥
मातु पिता गुर गनपति सारद। सिवा समेत संभु सुक नारद॥३॥
चरन बंदि बिनवौं सब काहू। देहु रामपद नेहु निबाहू॥४॥
बंदौं राम लखन बैदेही। ते तुलसी के सहज सनेही॥५॥

नोट—इस पदके कोष्टकान्तर्गत चरण कुछ पोथियों (अर्थात् इ०, ५१, ज०, १५, ७४, आ०) में उपर्युक्त स्थानपर लिखे या छपे हुए पाये जाते हैं। पर ये दोनों चरण ६६, रा०, भा, बे० आदि प्राचीन पोथियोंमें नहीं हैं। इन चरणोंके न रहनेपरभी कोई त्रुटि नहीं देख पड़ती। इसीसे हमने उन्हें कोष्टकमें दे दिया है। इसमें प्राय: वही सब भाव हैं जो मानसके '**प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ज्ञानघन। जासु हृदय आगार बसहिं राम सरचापधर**॥' इस दोहे (बालकांड दो०

१७) में हैं। खलबनपावक होनेसे ' संतनहितकारी ' कहे गये। ' अवध-बिहार ' कहकर जनाया कि सगुण रूपकाही ध्यान सदा करते हैं, सगुणोपासक हैं।

शब्दार्थ—निकंदन = विनाश करनेवाले। बिनवौं = विनय करता हूँ। सिवा (शिवा) = पार्वतीजी। यथा, ' **सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउ रामचरित चित चाऊ॥** ' (बा०) सब काहू = सब किसीसे, सबसे। निबाह (सं० निर्वाह) = किसी स्थिति संबंध आदिका लगातार बना रहना, लगातार साधन, निरंतर व्यवहार। सनेही (स्नेही)= प्रेमी, जिसके साथ स्नेह किया जाय।

अब समुदायकी एकही पदमें बंदना करके श्रीरामचन्द्रजीकी परिक्रमा करेंगे।

पद्यार्थ—मंगलकी मूर्त्ति, पवनदेवके आनंद देनेवाले अर्थात् पुत्र, समस्त अमंगलोंको जड़से उखाड़ डालनेवाले, पवनपुत्र, संतोंका हित कर-करनेवाले, जिनके हृदयमें अवधमें बिहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी विराजते हैं; माता, पिता, गुरु, गणेशजी, सरस्वतीजी, भवानीजी समेत शिवजी, शुकदेवजी और नारदजी (इत्यादि) आप सबके चरणोंकी वन्दना करके मैं सबसे विनय करता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें मुझे प्रेम और (उस प्रेम नेम, प्रीति रीतिका) निर्वाह अर्थात् प्रेम और उसकी रहनी दीजिये। १, २, ३, ४। श्रीराम, लक्ष्मण और श्रीजानकीजीकी वंदना करता हूँ। वे (मुझ) तुलसीदासके सहज स्नेही हैं।५।

टिप्पणी—१ मंगलमूर्त्ति और अमंगलमूलनिकंदन विशेषण देकर जनाया कि श्रीहनुमान्‌जी प्रसन्न हो गये और गोस्वामीजीकी वंदना अंगीकृत हुई। समस्त अमंगलोंका नाश हुआ। 'मंगलमूरति' अर्थात् जिनके दर्शन वा स्मरणमात्रसे मंगल होता है। 'मारुतनंदन' पदसे अमंगलके नाशक प्रकार दिखाया। जैसे टोना, टोटका, भूत, प्रेत, यंत्र, मंत्र फूकद्वारा हटाये जाते हैं वैसेही आपने सब अमंगल इस प्रकार विनष्ट कर दिये मानों फूँककर सबको उड़ा दिया। 'मूल निकंदन' का भाव कि

अमंगलकाही नाश नहीं किन्तु उसके जड़ या कारणकाही नाश कर दिया जिसमें अब अमंगल होनेही न पावे।

२ 'सब काहू' इति। अर्थात् जिन्हें ऊपर गिना आये इनके अतिरिक्त औरभी जिन भक्तों या देवताओंकी वन्दना नहीं की है उनकाभी ग्रहण इस शब्दसे हो गया। 'सब काहू' का भाव यह है कि समष्टिवन्दना किये देते हैं। नहीं तो ग्रंथ बढ़ जायगा। प्रधान अंगोंकी वन्दना करही चुके। अन्य सब जिनकी मानसमें वंदना की गयी है, उनकोभी 'सब काहू' से जना दिया। सबसे विनय करते हैं जिसमें 'सब मिली करहिं छाडि छल छोहू सबसे समष्टि वरदान माँगते हैं। क्योंकि जो वर चाहते है, वह अलभ्य है। उसका मिलना बहुत कठिन है। वह है "रामपदनेह और उसका आजीवन निर्वाह।" इस कठिन प्राप्तिकी संभावना सबकी कृपासेही हो सकती है। 'निबाह' से प्रीति रीतिका निर्वाह अभिप्रेत है। यथा, 'का सेवा सुग्रीवकी प्रीति रीति निर्वाह,॥ 'नामसों निबाहु नेहु दीन को दयाल देहु दास तुलसीको बलि बड़ो बरु है।' इत्यादि।

३ 'नेहु निबाहू' इति। इन दोनों शब्दोंमें उकारांत होनेसे नेह और निर्वाह दोनोंका वरदान सूचित किया गया है। प्रेम होभी जाय पर यदि वह एकरस न स्थित रहा तो वह प्रेम प्रेम नहीं। इसीसे प्रीति रीतिका निरंतर एकरस निर्वाहभी माँगते हैं। निबाहका भाव यह है कि चातकवत् एकांगी हो। चाहे श्रीरामजीका स्नेह हमपर रहे या न रहे, पर हमारी ओरसे त्रुटि न हो, कसर न रहे। यथा, 'तुम चाहो न चाहो हमें चित सो हमे नेहको नातो निबाहनो है।' (दीनजीकृत)

४ 'सहज सनेही' इति। स्वाभाविक स्नेह करनेवाले जैसे माताका बच्चेपर, बँदरियाका अपने बच्चेपर, इत्यादि। निस्वार्थ, कारण रहित प्रेम करनेवाले। यथा, 'सहज सनेही राम सों तैं कियो न सहज सनेहु', 'एक सनेही साँचिलो केवल कोसलपाल। प्रेम कनोड़ो राम सों नहिं दूसरो दयालु।' (१९०, १९१) पुनः, 'सहज सनेही' का भाव कि जिनकी अबतक वंदना कर आये वे सबभी स्नेही

हैं। पर श्रीसीतारामलक्ष्मणजी हमारे सहज स्नेही हैं। हमारे इष्टदेव हैं। 'स्नेही' का दूसरा अर्थ है, 'जिसके साथ स्नेह किया जाय'; प्रेमपात्र।

५ अब अन्तरंगमें प्रवेश करनेकेलिये इनका मंगल कर रहे हैं। सातवे द्वारके भीतर प्रवेश करनेपर परिक्रमा करते हुए श्रीलक्ष्मणजीसे प्रथम भेट होती है।

६ 'शुक नारद' को कहकर समस्त उत्तम भक्ति और मुनियोंकी वन्दना सूचित कर दी। मानसके "**सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिवर बिज्ञान बिसारद॥ मनवों सबहिं**" मेंसे आदिके 'शुक' और अन्तके 'नारद' शब्दोंको यहाँ रखकर अन्य सभीको सूचित कर दिया है। श्रीशुकदेवजी और देवर्षि नारद दोनोंही परम भक्त हैं और दोनोंका शिवजीसे सम्बन्ध है। इसीसे शिवजीके साथ साथ इनकोभी कहा। शुकदेवजीने शुकशरीरमें श्रीरामतत्व श्रीशिवजीसे पाया था और उसीके प्रसादसे ब्रह्मसुखभोगी और चिरजीवी हुए। और '**नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रियहरि हरि हर प्रिय आपू॥**' (बा०) आनंदरामायणमें लिखा है कि देवर्षि नारदजी एकान्तमें सदैव '**राघव पालय मां दीनम्**' '**राघव पालय मां दीनम्**' यही गाया करते हैं। ये गानविद्यामें निपुण हैं और सदैव रघुपतिगुणगान वीणापर किया करते हैं। इनकी अव्याहत गति हैं। ये श्रीरामजीके प्रिय कृपापात्र है और यह ग्रन्थभी संगीतपर रचा गया है तथा ग्रन्थकारको इसे श्रीरघुनाथजीके पास पहुँचाना है। निकटवर्तीसेही यह कार्य सफल हो सकता है। इसीसे मुनियोंमेंसे इनकी वंदना की।

७ पं० श्रीदेवदत्तशर्माजी लिखते हैं की इस पदसे हनुमान्‌जीकी विनयका उपसंहार होता है। माता, पिता, गुरु, गणेश, शिव, पार्वती, शारदा, शुक और नारदकी स्तुति प्राथमिक नहीं है। किन्तु प्राधान्यतया और लाक्षणिकरूपसे इन सबोंकी वन्दना प्रारंभमें कर चुके हैं। यथा, "**पाहि भैरवरूप रामरूपी रुद्र बंधु गुरु जनक जननी बिधाता। यस्य गुनगन गनति बिमल मति सारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी॥**" प्रमुख ब्रह्मचारीसे शुकदेवजीकाही ग्रहण है। पुनः, नामोच्चारणद्वारा वन्दना

करना विधानसम्मत है। यह उत्तरपूजाकी पद्धति है। स्मार्त्त वैष्णवोंमें इसी विधानका प्रचलन है। पूर्व स्मरण किये हुए वन्दनीयोंको पुनः स्मरण करनेके बाद आगे वन्दनीयोंके स्मरणकी सूचना राम लषण वैदेहीकी वन्दनासे करते हैं। यहभी लोकवेदसम्मतपद्धति तो हैही। साहित्यिक दृष्टिसे उत्कृष्ट योजना है जो एक महाकाव्यके प्रणयनमें प्रयुक्त होती है।

३७ राग—केदार

लाल[1] लाडिले लखन हित हो[2] जनके।
सुमिरे संकटहारि[3] सकल सुमंगलकारि[4]
पालक कृपाल अपने[5] पन के ॥१॥
धरनी धरनहार[6] भंजनभुवनभार
अवतार साहसी सहसफन के।
सत्यसंध सत्यव्रत परमधर्मरत
निर्मल करम बचन (अरु[7]) मन के ॥२॥
रूपके निधान धनुबानपानि तून कटि
महावीर बिदित जितैया (बड़े[8]) रन के।
सेवकसुखदायक सबल[9] सब लायक
गायक जानकीनाथ गुनगन के ॥३॥

---

१ यह पाठ रा०, ह०, ५१, छु०, वै०, भ० दी०, वि० में है। भा०, बे०, मु०, प्र०, ज०, ७४ में 'लाडिले लखनलाल' है। २७८ मेंभी 'लाललखन दीन की' पाठ है। २ हो—रा०, छु०, मु०। हौ—औरोंमें। ३ हारि—रा०, ह०, ५१, मु०, ७४। हारी—औरोंमें। ४ मंगलकारि—रा०, ७४। मंगलकारी—ह०, छु०, भा० ('सु'पर हरताल है।) सुमंगलकारी—बे०; प्र०, ज०, १५, आ० (मु०)। सुमंगलकारि—मु०। ५ अपने—भा०, बे०, ५१, आ०। अपने के—रा०। आपने के—ह०, ७४, ज०, १५ ('के' पर हरताल)। ६ धरनिहार—रा०, ज०। ७ अरु—प्र०, भा०, ७४, वि०, हा०। 'वचन' और 'मन' के बीचमें रा०, आ० (वि०) में 'अरु' नहीं है। ८ रा० में नहीं है। औरोंमें 'बड़े' है,। ९ प्र०, ज०, १८, ह० में नहीं है।

भावते भरत के सुमित्रा सीता के दुलारे
चातक चतुर राम स्याम घन के।
बल्लभ उर्मिलाके सुलभ सनेह बस
धनी धन तुलसी से निर्धन के ॥४॥*

शब्दार्थ—लाडिले=लाडला, जिसका बहुत लालन, प्यार वा दुलार किया जाय, दुलारे। लाड़ (सं० लालन)=बच्चोंका दुलार। छोटे और प्रिय बालकको 'लाल' वा 'लालन' इत्यादि कहकर पुकारते हैं। इसका प्रयोग प्रायः कविता और बोलचालमें किसी प्रिय व्यक्तिकेलिये सम्बोधनके रूपमें होता है। सुमिरे=स्मरण करनेसे। धरनीधरनहार=पृथ्वीको धारण करनेवाले। भुवनभार='संसारभारापहर' पद २७ देखिये। साहस=वह मानसिक गुण या शक्ति जिसकेद्वारा मनुष्य यथेष्ट बलके अभावमेंभी कोई भारी काम कर बैठता है या दृढ़तापूर्वक विपत्तियों तथा कठिनायों आदिका सामना करता है। हिम्मत हियाव। साहसी=दिलेर। फन (फण)= साँपका सिर उससमय जब कि वह अपनी गर्दनके दोनों ओरकी नालियोंमें वायु भरकर उसे फैलाकर छत्रके आकारका बना लेता है। सहस फण, सहसशीश, सहसवदन, सहसमुख, सहस्रजिह्व ये सब शेषनागके नाम हैं। कद्रूके जो एक हजार नाग पैदा हुए थे वे सब सहस्र मस्तकवाले थे। परन्तु प्रायः सहसशीश, सहसफन आदि नाम शेषजीकेलिये रूढ हो गये हैं। सुरसा एक हजार सर्पोंकी जननी हुई। संध=स्थिति, प्रतिज्ञा। सत्यसंध=प्रतिज्ञा वा वचनको पूरा करनेवाला। यथा, 'सत्य संध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयसु अनुसारी ॥' सत्यव्रत=सत्यका व्रत अर्थात् नियम पालन करनेवाला। यथा, 'राम सत्यव्रत धरमरत सब कर सील सनेह।' जो व्रत लिया है उसको सत्य कर दिखानेवाले। निर्मल=विकाररहित। भावते=अच्छे लगनेवाले, प्रिय। यथा, 'सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के ॥' दुलारा=लाड़ला। बल्लभ=पति। उर्मिला=जनकमहाराजकी कन्या जो

---

* ह० में यह पद श्रीजानकी विनयके पश्चात् है और संख्या ३९ है।

लक्ष्मणजीको ब्याही गयी थी। धनी=महाजन, स्वामी। निधन=धनहीन, कंगाल।

पद्यार्थ—हे दुलरुवा लाल लक्ष्मणजी! आप भक्तोंका हित करनेवाले हैं। स्मरण करतेही संकटके हरनेवाले, समस्त सुंदर मंगलोंके करनेवाले और अपने प्रणके कृपाल पालक हैं।१। आप पृथ्वीको धारण करनेवाले, संसारके भारको दूर करनेवाले, साहसी शेषनागके साहसी अवतार, अपने वचनको सत्य करनेवाले, सत्यव्रत, भगवत भागवत धर्मपरायण, कर्म वचन और मनके निर्मल सौंदर्यके निधान अर्थात् नखशिखसे परम रूपवान्, हाथोंमें धनुषबाण लिये सेवकोंको सुख देनेवाले, बलवान, सब प्रकारकी योग्यतावाले अर्थात् सभी कुछ कर सकनेवाले और श्रीजानकीपतिके गुणगणोंके गानेवाले हैं।२, ३। भरतजीके प्रिय, श्रीसुमित्राजी और श्रीसीताजीके लाडले, श्रीरामघनश्याम अर्थात् श्रीरामरूपी श्याममेघके चतुर चातक, श्रीउर्मिलाजीके पति, प्रेमके वश सहजही प्राप्त होनेवाले और तुलसी सरीखे निधनके धन और धनी (दोनोंही) है।४।

टिप्पणी—१'लाल लाडिले लखन हित हो जन के।' इति। (क) 'लाल लाडिले' का भाव कि आप परिवारके दुलरुवा हैं। यथा, 'लालन जोग लखन लघु लोने। भे न भाई अस अहहिं न होने॥ पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे॥', 'जोगवहिं प्रभु सियलखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे॥' (अ०) भीतरी आशय यह है कि आप सबके दुलारे हैं इससे मेरी सिफ़ारिश व्यर्थ न जायगी। (ख) यहां माधुर्य वर्णन है। इसीसे 'लखन' नाम दिया जो माधुर्य एवं प्यारका नाम है। पुनः आगेके 'हितहो जन कें' के साहचर्यसे 'लखन' शब्दमें यह अभिप्रायभी भरा हुआ है कि आप हमारे मनोरथके, हमारे हितको लखनेवाले हैं, मुझे कहनेकी आवश्यकता नहीं है। (ग) 'हित हो जनके' इति। भाव कि आप भक्तोंका हित करते हैं। यथा, 'सीतल सुखद भगत सुखदाता'। मैं आपका दास हूँ, मेराभी हित कीजिये। (घ) 'सुमंगलकारि' इति। 'सु' यहां अत्यन्त और सुंदर दोनो अर्थका वाचक है। आप भक्तोंका अत्यन्त मंगल

करते हैं एवं सुंदर मंगलोंके कर्त्ता है। 'सु' (सुंदर) में भाव यह है कि मंगल असुंदरभी होते है, तामसिक। मलिन मंगल असुंदर हैं। 'सुमंगलारि' कहकर जनाया कि मलिन करनेवाले, जीवका परलोक बिगाड़नेवाले मंगल नहीं देते, किन्तु उसकी मलिनता दूरकर उसका अत्यन्त कल्याण करते हैं। मरण मोहनादि कुत्सित कर्मोंद्वारा जो बाह्य मंगल आनंद जीवको होता है वह सुमंगल नहीं है। क्योंकि इसका परिणाम बुरा है।

२ (क) 'पालक कृपाल अपने पन के' इति। 'सियरामलखन पालक कृपाल' (२३), 'बिश्वनाथ पालक कृपाल' पद २२ देखिये। (ख) 'अपने पनके' इति। अपना पन क्या है? जनका हित करना। इस प्रणका पालन आप कृपापूर्वक करते हैं। एवं औरभी जो प्रण करते हैं उनके पालनकी शक्तिभी रखते हैं, जैसे कि मेघनादवधकी प्रतिज्ञा की थी सो उसे पूरी की। (ग) 'धरनी धरनहार' इति। शेषजी अपने एक सिरपर पृथ्वीको धारण किये है। इनको 'अनंत' भी कहते हैं। भगवान् क्षीरसागरमें इन्हींपर शयन करते हैं। ये सर्पों और नागोंके एवं पातालके राजाभी माने जाते हैं। लक्ष्मणजी क्षीरशायी श्रीमन्नारायण, चतुर्व्यूहात्मक संकर्षण और शेषजीकेभी अवतार होते हैं। यथा, 'वैकुण्ठेशस्तु भरतो क्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मणः। शत्रुघ्नस्तु स्वयंभूमा रामसेवार्थमागता।' (ना० पं० रा०), 'अकाराक्षरसंभुतः सौमित्रिर्विश्वभावनः' (अथर्वश्रुति)। 'धरनीधरहार' कहकर 'भंजन भुवन भार' और फिर 'अवतार साहसी सहसफनके' क्रमसे कहनेका भाव कि पृथ्वी आपही थामे रहती हैं। जब उसपर पापका बोझा बहुत लद जाता है तब उस भारको उतारनेकेलिये आप अवतार लेते हैं। यथा, 'सेष सहस्र सीस जग कारन। सो अवतरेउ भूमि भय टारन॥' (बा०), जो सहससीस अहीसु महि धरु लखन सचराचर धनी। सुरकाज धरि नरराजतनु चले दलन खल निसिचर अनी॥' (अ०) अवतार कहकर, अवतारमें जो गुण धारण किये उनका एवं भुवनभारहरणकी उपयोगिताका वर्णन है। इसतरह अवतारका कारण, अवतार और अवतारका कार्य यहाँ कहा।

३ ‘ अवतार साहसी ’ इति । साहसी ऐसे कि मेघनादकी शक्तिसे एक बार घायल होनेपरभी दुबारा, प्रतिज्ञा करके, उससे लड़ने गये और उसका वध किया । इसीतरह रावणने अपने प्राण बचानेकेलिये ब्रह्मदत्त शक्ति इनपर चलाकर इनको मूर्छित कर दिया था । फिरभी ये मूर्छासे जागतेही अत्यन्त उतावलीसे रावणसे लड़ने गये । उससमय आपने इतनी शीघ्रता की कि रावण अभी रणभूमिहीमें था कि आप उसके सम्मुख पहुँच गये और उसको बाणोंसे पृथ्वीपर गिरा दिया । यथा,
“ आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो ।
गिर्‌यो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो ॥ ”
(लं०) पुनः, ‘ साहसी ’ इससेभी कह सकते हैं कि देखनेमें ‘ मृदु-मूरति सुकुमार सुभाऊ ’ हैं । साहसीको ‘ सहसफन ’ काभी विशेषण मान सकते हैं ।

४ ‘ सत्यसंध सत्यव्रत परमधर्मरत ’ इति । (क) जो जो प्रतिज्ञाएँ आपने की उनके पालनको आप समर्थ थे । आपका वचन अन्यथा नहीं हो सकता । जैसे कि धनुषयज्ञमें “ नाइ रामपदकमल सिर बोले गिरा प्रमान । ” “ जौं न करउँ प्रभुपद सपथ कर न धरउँ धनु माथ ॥ ” एवं मेघनाद वधके पूर्व “ बोले घन इव गिरा गँभीरा ॥ जौं तेहि आज बधे बिनु आवौं । तौ रघुपति सेवक न कहावौं ॥ जौं सत संकर करैं सहाई । तदपि हतौं रघुबीर दुहाई॥”

(ख) ‘सत्यव्रत’, इति । यथा, “ गुर पितु मातु न जानउं काहू । कहउँ सुभाउ नाथ पतियाहू ॥ जहं लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥ मोरे सबुइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर अंतरजामी ॥ धरम नीति उपदेसिय ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥ मन क्रम बचन चरन रत होई । कृपासिंधु परिहरिय कि सोई ॥ ” यह लक्ष्मणजीका व्रत है । इस व्रतको आपने पालन करके उसकी सत्यताका परिचय संसारको दिया है । इस व्रतका निर्वाह अंततक आपने किया है । आप ऐसे सत्यव्रती और परमधर्मरत थे कि श्रीरघुनाथजीका अपमान कदापि नहीं सह या देख सकते थे । जिसकोही रामविमुखी

जानते उसका वध करनेको तत्पर हो जाते थे चाहे वह सगा भाई, बाप, गुरुही क्यों न हो। परशुराम गर्वहरणप्रकरण और चित्रकूटमें भरतका ससैन्य आगमन सुननेपर ' जौ सहायकर संकर आई। तौ मारउं रन रामदुहाई ॥ ' इत्यादि वचन इसके प्रज्वलंत उदाहरण हैं।

(ग) ' परमधर्मरत ' इति। अहिंसा परम धर्म कहा गया है। यथा, 'अहिंसा परमो धर्मः।', 'परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा।' (उ०) भगवदाज्ञाका पालनभी परम धर्म हैं। यथा, ' सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा ॥ ' (बा०) भगवतभागवतधर्म ' परमधर्म ' है। अहिंसा लौकिक धर्म है और भागवत धर्म पारलौकिक धर्म है। यहां ' परमधर्म ' से भागवतधर्म, श्रीरामचरणानुराग वा रामभक्ति अभिप्रेत है। यथा, ' सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपदनेहू ॥ ', ' सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू ॥ ' (अ०) यह उपदेश लक्ष्मणजीका निषादराजप्रति है। जो उपदेश दे रहे हैं उसीपर आपभी तत्पर हैं। भागवतधर्ममें हिंसाभी अधर्म नहीं है। क्योंकि वहां तो सब कर्म निष्काम्य एवं भगवदर्पण हैं। गीताका चरम उपदेशभी यही है। ' सर्वे धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। '

(घ) ' निर्मल करम वचन अरु मन के' इति। जो प्रेम स्वार्थके लिये हो वह निर्मल नहीं हैं। चतुराई और कपटछलरहित प्रेम जिसे ' सहज प्रेम ', ' निष्केवल प्रेम ', या ' प्रेमहीकेलिये प्रेम ' कहते हैं वैसा प्रेम आपका है। यह ' निर्मल ' शब्दसे सूचित किया। पुनः, ' निर्मल ' से यहभी जनाया कि राग, रोष, ईर्ष्या, मद, मोह आदि समस्त विकारोंसेरहित होकर श्रीरामजीकी सेवा मन, कर्म, वचनसे करते हैं। श्रीसुमित्रा अंबाजीका आपको यही उपदेश था। यथा, ' राग रोष इरिषा मद मोहू। जनि सपनेहु इन्हके बस होहू ॥ सकल प्रकार विकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥ ' (अ०) इस आदेशका पालन आपने पूर्णतया किया है, यह बात ' निर्मल ' शब्दसे इंगित कर दी है।

श्रीलक्ष्मणजी मन कर्म वचनसे श्रीरामभक्तिमें रत हैं यह उनके वचनोंसे स्पष्ट है । यथा, 'तौ रघुपति सेवक न कहावउं ।', 'मन क्रम बचन चरन रत होई । कृपासिंधु परिहरिय कि सोई ।' इसकी साक्षी वे स्वयं रघुनाथजीको दे रहे हैं । 'दीनबंधु उर अंतरजामी ।' श्रीसुमित्राजीके वचनभी इसकी पुष्टि करते हैं । 'भूरि भाग भाजन भयेहु । जौ तुम्हरे मन छांड़ि छलु कीन्ह रामपद ठाउं ।'

५ (क) 'रूप के निधान' इति । 'रूप' पद २ देखिये । लक्ष्मणजी ऐसे सुंदर थे कि शूर्पणखाभी मोहित हो गयी थी । यथा, 'देखि विकल भइ जुगल कुमारा ।' मगवासियोंनेभी सौंदर्यकी प्रशंसा की है । यथा, 'राजकुअँर दोउ सहज सलोने । इन्ह तें लहि दुति मरकत सोने ॥ स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुखमा ऐन । सरद सरबरीनाथ मुख सरद सरोरुह नयन ॥ कोटि मनोज लजावनिहारे ।' (अ०) जनकपुर धनुषयज्ञशालामें दोनों भाइयोंके सौंदर्यका वर्णन इस प्रकार किया गया है । 'सुंदर स्यामल गौर तनु बिस्वबिलोचन चोर ॥ सहज मनोहर मुरति दोऊ । कोटि काम उपमा लघु सोऊ ॥' नगरदर्शन, पुष्पवाटिका इत्यादि कतिपय स्थलोंपरभी सुंदर नखशिख वर्णित है ।

(ख) 'धनुष बान पानि' अर्थात् दाहिने हाथमें बाण है और बाँयेमें धनुष। इससे खलवधनिरत और जनरक्षणमें सदैव तत्पर दिखाया । यही आगे कहतेभी हैं । नहीं तो धनुषको हाथमें लिये न कहते ।

(ग) 'महाबीर बिदित जितैया बड़े रन के' इति । ऊपर जो 'भंजन भुवनभार' कहा था उसीके संबंधसे यहां धनुष, बाण और तरकश धारण किये होना कहा । और बीर बानाही केवल नहीं है किन्तु वास्तवमें वे 'महावीर' हैं यह बताया । कैसे जाना कि महावीर हैं ? 'जितैया बड़े रन के' होनेसे । बड़े रणको जीता है इसीसे 'महावीर' विख्यात् हुए । 'बड़े रण' इससे कहा कि मेघनाद इन्द्रजित् था । उसको कोई दूसरा मार न सकता था ऐसाही उसको वरदान था । (मानसपीयूष देखिये ।) उसकेही वधसे देवताओंने जय और अपना निस्तार समझ लिया यद्यपि रावण

अभी जीवित था। यथा, 'जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्ह निस्तारा ॥' (लं०) उसके वधको अगस्त्यजीने बड़ा भारी काम बताया है। वाल्मीकीय उत्तरकांडमें इस कथाका विस्तृत उल्लेख है और मानसमें मेघनाथयुद्धमेंभी बिभीषणजीने यही बात कही है। दूसरा बड़ा रण रावणसे हुआ जिसमें उसके प्राणोंपर बन आयी थी। आप महावीर हैं, इससे रावण जब आपके बाणोंसे घायल होकर मूर्छित हो गिर गया तब आपने उसको न मारा। 'धरनी धरनहार' में ऐश्वर्य और 'सेवक सुखदायक' में ऐश्वर्यमाधुर्यमिश्रित वर्णन है।

६ (क) 'सेवक सुखदायक'। मेघनादादिपर विजय होना कहकर 'सेवक सुखादायक' कहा। इस विजयसे सेवकोंको सुख दिया। पुनः, 'सेवक' का भाव कि रामचन्द्रजीके सेवकोंको सब प्रकारका सुख देनेवाले हैं। यथा 'बंदउँ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥ सदा सो सानुकूल रह मोपर' (बा०)

(ख) 'सुखदायक' कहकर 'सबल' और 'सब लायक' कहनेका भाव कि सुख देनेकेलिये सामर्थ्यभी उनमें है और सब प्रकारका सुख देने योग्य हैं। कोईभी ऐसा पदार्थ नहीं जो वे न दे सकते हों। रामजीके पास सिफ़ारिश करके पहूँचभी सकते हैं। और ऐसा हुआभी। विनयपत्रिका आपनेही पेश की। 'मारुति मन रुचि भरत की लखि लखन कही है'। (पद २७९) रघुनाथजीसे ज्ञान भक्ति आदिके प्रश्न करके आचार्यरूपसे सेवकोंको सुख दिया। उपासनाभी इनकी आचार्यरूपसे की जाती है।

(ग) 'गायक जानकीनाथ गुनगनके' इति। 'सब लायक' कहकर उसका कारण यह बताया। 'सेवक सुखद' कहकर अब यह बताया कि वे निरंतर रामगुणगान किया करते हैं। शेष रूपसेभी और लक्ष्मणरूपमेंभी। निषादराजके साथ एक रातका प्रमाण तो मानसमें है और इसी तरह निरंतर समझ लिया जाय। 'कहत रामगुन भा भिनुसारा।

७ 'भावते भरतके' इति। यथा, 'सोक समाज राजु केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे॥' ,'जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा॥' ,'पूछत सखहिं सोठाउँ दिखाऊ।

नेकु नयन मन जरनिजुड़ाऊ ॥ जहँ सिय रामु लखनु निसि सोये । कहत भरे जल लोचन कोये ॥', 'लालन जोग लखन लघु लोने । मे न भाइ अस अहहिं न होने ॥ पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे ॥ सियरघुबीरहिं प्रान पियारे ॥ मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ । ताति बाउ तन लाग न काऊ ॥ ते बन सहहिं बिपति सब भाँती । निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ॥' (अ०), 'अहह धन्य लछिमन बड़भागी । रामपदारबिंद अनुरागी ॥' (उ०), 'लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ ।' इत्यादि उद्धरणोंसे लक्ष्मणजीके प्रति जो भरतजीका प्रेम है वह स्पष्ट झलक रहा है ।

८ 'सुमित्रा सीताके दुलारे' इति । सुमित्रा और सीता दोनोंको एकसे प्यारे कहा तथा दोनोंको एक साथ कहनेका भाव यह है कि सुमित्राजीके उदरसे तो जन्म हुआ । इस तरह वे माता हैं और परम धर्मके नाते श्रीसुमित्राजीने लक्ष्मणजीको जो उपदेश दिया है कि तुम मुझे अपनी माता न जानो, तुम्हारी माता सीता हैं। यथा, 'तात तुम्हारी मातु बैदेही । पिता राम सब भाँति सनेही ॥' उसके संबंधसे 'सीता' जी आपकी माता हैं । गीतावलीमें श्रीसुमित्राजीके वचन है कि 'सिया रघुबर सेवा सुचि होइहौ तब जानिहौं सही सुत मेरो । 'अर्थात् मैं तुम्हें अपना पुत्र तब जानूंगी जब तुम श्रीसीतारामजीकी सेवामें सरस उतरोगे । वनसे लौटनेपर उन्होंने लक्ष्मणजीको 'रामचरणरत' जानकर भेंटा है। यथा मित्रा रामचरन रत जानि ।' (उ०)

श्रीजानकीजीभी इनका दुलार प्रिय पुत्रकी तरह करती हैं । यथा, रामलखन सीता सहित सोहत परन निकेत । जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत ॥ जोगवहिं प्रभुसिय लखनहिं कैसे । पलक बिलोचन गोलक जैसे ॥' (औ०) कवितावलीमें लक्ष्मणजीकेलिये बारबार प्यारके वचनोंका प्रयोग पाया जाता है । यथा, ' जलको गये लक्खन हैं लरिका परिखो पिय ठाढ़ि घरिक द्वै छाहैं ' । लक्ष्मण जल लाने गये हैं, वे लड़के है, थक गये होंगे, एक दो घड़ी छायामें बैठ उनकी राह देख लीजिये, उन्हें आ जाने दीजिये, इत्यादि ।

'दुलारा' शब्द प्रायः लाड़ले बेटेके अर्थमें आता है। इसीसे यही शब्द यहां वही नाता दरसानेके विचारसे दिया गया।

९ 'चातक चतुर राम स्याम घनके' इति। चातक कहकर श्रीराम-घनश्यामका अनन्य प्रेमी जनाया। ये दूसरेको स्वप्नमेंभी नहीं जानते, मानते। मानसमेंभी कहीं किसी देवीदेवतादिको इनका प्रणाम या पूजा सेवा नहीं देखी जाती। बल्कि ये परम भागवत श्रीशंकरजीकाभी अनादर करते पाये जाते हैं।

चातककी अनन्यतापर पद १६ 'रामनाम नव नेह गेहकी मनु हठि होहि पपीहा।' देखिये। पद १५ 'देहि मा मोहि पनु पेमु यहु नेमु निज राम धनश्याम तुलसी पपीहा' भी देखिये।

चातकका प्रेम स्वातीके श्याम मेघोंसे है। स्वातिबुंदकेलिये वह श्याम मेघोंको देखकर रट लगाये रहता है। किस मेघसे उसे स्वातिबुंद मिलेगा यहभी वह नहीं जानता। प्रेमी होकरभी वह मेघकी कोई सेवाभी नहीं करता। वह ऐसेका प्रेमी है कि जो प्रीतिकी रीतिभी नहीं जानता, जो 'प्रेमपथ क्रूर' है। इन कारणोंसे चातक 'चतुर' नहीं हैं। श्रीलक्ष्मणजी ऐसे स्वामीके प्रेमी हैं कि जो सेवकका आदर करते हैं, सेवककी सेवा समझते हैं। पुनः, वे सब प्रकारसे प्रभुका ऐश्वर्य और माधुर्य जानते हैं और माधुर्यमें उनकी सेवाभी जैसी कुछ चाहिये करते हैं। अतः इनको 'चतुर चातक' कहा।

१० श्रीभरत, श्रीसुमित्रा और श्री उर्मिलाजीकोही यहां कहा और किसीको नहीं, यह क्यों? इसलिये कि भरतजीपर इन्होंने क्रोध प्रगट किया था और कैकयीजीकोभी बुरा भला कहा था। इससे संभव था कि भरतजीको वे अच्छे न लगते। अतः उनका प्रेम कहा। दूसरे, भरतजी स्वयं श्रीरामजीके अद्वितीय प्रेमी हैं। उनकेभी प्रिय कहकर इनके विशेष रामचरणानुरागकी अतिशय प्रशंसा सूचित की। तीसरे, 'भरत भावते' कहकर इनके हृदयको विकाररहित जनाया।

श्रीसुमित्रा और श्रीउर्मिलाजीका निःस्वार्थ प्रेम है। उन्होंने राम-बनवासमें अपना स्वार्थ त्यागकर इनके परमधर्मकी रक्षा की। ऐसी

माताएँ और धर्मपत्नीयाँ भूरि भूरि सुकृत होनेपरभी कदाचित् कहीं मिलती हैं। इसलिये इन तीनोंको सबोंसे अधिक रामप्रेममय जानकर इन्हींका प्रेम लक्ष्मणजीपर दिखाया गया। रामसंबंधसेही ये सबको अतिशय प्रिय हैं, यह बात 'गायक जानकीनाथ गुणगणके' कहकर तब 'भावते भरतके' इत्यादि कहनेसेभी प्रगट होता है। विशेष पद ३८ के अंतिम नोटमें लिखा गया है।

'राम सुहाते तोहि जो तू सबहि सुहातो' को इन्होंने सत्य कर दिखाया। अब प्रश्न होता है कि 'सुमित्राजी तो सीताजीकोही इनकी मां कह चुकी हैं, तब उनके दुलारे क्यों कहा?' उत्तर यह कि उनके वचन तो ये भी हैं कि 'पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई॥ नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी।' एवं 'भूरि भाग भाजन भयेहु मोहि समेत बलि जाऊँ। जो तुम्हरे मन छांडि छल कीन्ह रामपद ठाऊँ॥' अतएव सच्ची पुत्रवती और सच्चा प्रेम जानकर उनका संबंधभी दिया गया। दूसरे, सीताजीको माँ तो कहा है और 'सुमित्रा सीता के दुलारे' ये वचन कविके हैं न कि सुमित्राजीके। तीसरे, यदि पाठक 'दुलारे' का 'प्यारे' अर्थ केवल ले लें तो यह शंकाही न रह जाय।

११ 'धनी धन तुलसीसे निर्धनके' इति। निर्धन अर्थात् ज्ञान, भक्ति आदि दैवी संपत्तिरहित।

३८ राग-धनाश्री

जयति[1] लक्ष्मणानंत भगवंत भूधर भुजगराज भुवनेस [2]भूभारहारी।
प्रलय पावक महाज्वालमाला बमन समन संताप लीलावतारी॥
जयतिदासरथि[3]समर[4]समरथसुमित्रासुअनसत्रुसूदनराम[5]भरतबंधो।
चारु चंपक बरन बसन भूषन धरन दिव्य तर भव्य लावन्यसिंधो॥
जयति गाधेय गौतम जनक सुखजनक विश्वकंटक कुटिल कोटि हंता।
बचन चय चातुरी परसुधर गर्वहर सर्वदा रामभद्रानुगंता॥

---

१ जयति-मु०, ७४ में नहीं है। २ भू-रा०, ह०, १५, ५१ ७४, आ०। भुव-भा०, बे०, ज०। ३ दासरथि-ह०, ५१, ७४, आ०। दासरथी-भा०, बे०, १५। दासरथ-रा०, ज०। ४ रा०, ह०, ज०, १५ में नहीं है। समर-भा० बे०, ५१, ७४, आ०। ५ भरत राम-७४।

जयति सीतेससेवासरस विषयरस निरस निरुपाधि धुर धर्मधारी।
बिपुल बलमूल सार्दुल बिक्रम जलदनादमर्दनु महाबीर भारी ॥
जयति संग्रामसागरभयंकर तरन[6] रामहितकरन[7] बर बाहु सेतू।
उर्मिलारवन[8] कल्यान मंगलभवन दास तुलसी दोष दवन[9] हेतू ॥

शब्दार्थ—भुजगराज=सर्पराज। अनंत=जिसके आदि अंतका पार न हो। यह शेषजी और लक्ष्मणजीका एक नाम है। यथा, 'जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्ह निसतारा।' (लं०) भूभार हारी=पद ३७ 'भंजनभुवनभार' भी देखिये। बमन=मुंहसे उगलनेवाले। लीलावतारी=लीला+अवतारी। लीला=मनुष्योंके मनोरंजनकेलिये किये हुए ईश्वरावतारोंका अभिनय। चित्तके उमंगसे जो व्यापार केवल मनोरंजनार्थ किया जाय। अवतारी=अवतार लेने वा शरीर धारण करनेवाले। दासरथि (दाशरथि) = दशरथजीके पुत्र। सत्रुसूदन=शत्रुके नाशक, शत्रुघ्नजी। चंपक=पद १४ देखिये। दिव्य भव्य=पद १५ (२) 'दिव्य पट भव्य भूषन बिराजै' देखिये। लावण्य = सौंदर्य। गाधेय = गाधिराजाके पुत्र विश्वामित्रजी। यथा, 'गाधितनय मन चिंता ब्यापी। बिनु हरि मरिहि न निसिचर पापी।', 'गाधिसुनु कह हृदय हँसि मुनिहि हरिअरइ सुझ।' (बा०) गौतम=सप्तर्षिमेंसे एक येभी हैं। ये बड़े तेजस्वी थे। रावणादि सब राक्षस इनसे डरते थे। दण्डकराजाका राज्य इनके शापसे भस्म होकर भयावन हो गया था और उसमें राक्षस रहने लगे थे। यथा, 'दंडकवन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कर हरहू।' शापके विषयमें कथाए भिन्न भिन्न हैं। (मानस-पीयूष देखिये।) ये बड़े इंद्रियजित् थे। ब्रह्माजीने अहल्याको उत्पन्न किया। इंद्रादि सभी देवता उसके रूपपर मोहित हो गये। ब्रह्माजीने उसे गौतमजीके पास धरोहर रख दिया। बहुत काल बीत जानेपर ब्रह्माजीने आकर अपनी धरोहर मांगी। उन्होंने

६ बचन। ७ कर—रा०। ८ रमन—ह०, १५, वै०, दी०। रवन—औरोंमें। 'भवन' 'दवन' के साहचर्यसे 'रवन' उत्तम जान पड़ता है। ९ दमन—ह०, ज०। दवन—प्रायः औरोंमें।

दे दिया। ब्रह्माजीने इनके ब्रह्मचर्यसे प्रसन्न होकर अहल्या इन्हींको दे दी। महाराजा जनकजीके पुरोहित श्रीसतानंदजी इन्हींके पुत्र हैं। इंद्रने अहल्याका धर्म बिगाड़ा। इसीसे गौतमजीने दोनोंको शाप दे दिया। अहल्या पत्थर हो गयी। श्रीरामजीके चरणरजके स्पर्शसे उसका उद्धार हुआ। जनक=मिथिलाप्रदेशके राजा, श्रीजानकीजी और श्रीउर्मिलाजीके पिता, श्रीसीरध्वजजी ये बड़े भारी ज्ञानी, योगी और रामभक्त थे। वात्सल्यरसके उपासक थे। परमहंस श्रीशुकदेवजी आदि बड़े बड़े महर्षि आपसे ज्ञानकी दीक्षा लिया करते थे। आप योगी श्रीयाज्ञवल्क्यजीके शिष्य थे। विशेष मानस-पीयूषमें देखिये। कथा प्रायः सब जानते हैं। सुखजनक = सुखके उत्पन्न करनेवाले। कंटक = काँटा, विघ्नकर्ता। चय = पद १७ एवं आगे टि० ८ में देखिये। बचन चातुरी = वचन-रचनामें प्रवीणता। परसुधर = फरसा धारण करनेवाले, परशुराम। रामभद्रानुगंता = (रामभद्र + अनुगंता) श्रीरामचंद्रजीके अनुगामी। रामभद्र = रामचंद्रजी। यथा, '**कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्रभरि बाहू॥**' भद्र = कल्याणस्वरूप। अनुगंता = आज्ञाकारी, सेवक, पीछे पीछे चलनेवाला। सीतेस (सीता+ईश) = सीतापति। सरस = भावपूर्ण, प्रसन्नचित्त, सहृदय, आनंदप्रेमयुक्त, (सेवा विधिमें) निपुण, अनुरागयुक्त। बिषयरस = विषयका आनंद वा मज़ा। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पाचों पंचज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं। श्रवणका विषय शब्द, त्वचाका स्पर्श, नेत्रका रूप, जिह्वाका रस और नासिकाका गंध है। विषयरस अर्थात् भोगविलास, विषयमाधुरी। यथा, '**राम पुनीत विषयरस रूखे। लोलुप भूमि भोगके भूखे॥**' (अ०) निरस = रसरहित, रूखा, विरक्त। यथा, '**रे मन जग सों निरस ह्वै सरस राम सों होहि। भलो सिखावन देत है निसदिन तुलसी तोहि॥**' (दोहावली) धुर धर्म धारी = पद २५ देखिये। शार्दूल = अमरकोषमें शार्दूल व्याघ्रका पर्यायवाची दिया है। यथा, '**शार्दूल द्वीपिनौ व्याघ्रे।**' (अ० को० २।५।१) गंधहस्तीके मारनेवाले व्याघ्रको शार्दूल कहते हैं। साधारणतया इसका अर्थ लोग

सिंह करते हैं। जलदनाद = जलद, मेघ, वारिद, घन ये सब पर्याय हैं। गोस्वामीजीने जलदनाद, मेघनाद, वारिदनाद और घननाद ये सभी नाम प्रयुक्त किये हैं। तरन (तरण)= पार करनेवाले, नाव, जहाज, पार करनेकेलिये। पद ११ देखिये। रवन टि० १६ में देखिये।

पद्यार्थ—अनंत, षड़ैश्वर्यसंपन्न, पृथ्वीको धारण करनेवाले, सर्पराज, लोकोंके स्वामी, पृथ्वीका भार हरनेवाले, (प्रलयके समय) प्रलयाग्निकी भारी ज्वालासमूहोंके उगलनेवाले, (भक्तोंके) संतापके शान्त करनेवाले और लीलासे एवं लीलाकेलिये अवतार लेनेवाले (श्रीलक्ष्मणजी)! आपकी जय हो।१। समरमें समर्थ, श्रीसुमित्राजीके पुत्र, शत्रुओंके नाश करनेवाले, (एवं शत्रुघ्न), राम और भरतके भाई, सुंदर चंपाके पुष्पके समान गौरवर्ण, अत्यन्त दिव्य (देवताओंकेसे, अलौकिक) और प्रकाशमान शुभ वस्त्र और भूषण धारण करनेवाले, शोभासौंदर्यके समुद्र, दशरथजीके पुत्र आपकी जय हो।२। गाधिपुत्र श्रीविश्वामित्रजी, गौतमजी और श्रीजनकजीको सुख उत्पन्न करनेवाले, संसारके कंटकरूप, करोड़ों कुटिल राक्षसोंके मारनेवाले, वचनोंकी चातुरीसे परशुरामजीका गर्व हरनेवाले, सदैव श्रीरामचंद्रजीके अनुगामी! आपकी जय हो।३। श्रीसीतापति रामचद्रजीकी सेवामें सरस, (अनुराग आनंदयुक्त और निपुण) विषयरससे विरक्त, धर्मकी धुरीको निर्विघ्न धारण करनेवाले, भारी और बहुत बलके मूल अर्थात् महाबली, शार्दूलसमान पराक्रमवाले, मेघनादका वध करनेवाले, भारी महावीर! आपकी जय हो।४। संग्रामरूपी भयंकर समुद्रको पार करनेवाले और श्रीरामचंद्रकेलिये (इस भयंकर संग्राम-सागरसे पार उतारने) अपनी श्रेष्ठ भुजाओंको सेतु बनानेवाले, (अर्थात् जैसे समुद्रपर सेतुबंधन होनेसे लोग सहजही पार हो जाते हैं वैसेही श्रीलक्ष्मणजीकी श्रेष्ठ भुजाएँही राम रावण संग्रामरूपी भयंकर समुद्रको सुगमतासे पार करनेमें सेतुरूप साबित हुई। इन्होंने मेघनादवध करके समरविजय वा रावणवधको सुगम कर दिया।) श्रीउर्मिलाजीके पति, कल्याण और मंगलके धाम, और तुलसीदासके दोषोंके नाश करनेमें कारणस्वरूप (श्रीलक्ष्मणजी)! आपकी जय हो।५।

टिप्पणी—१ इस पदमें विशेषतः ऐश्वर्य स्वरूपकी वन्दना है। इसीसे भगवंत, अनंत, लक्ष्मण आदि ऐश्वर्यद्योतक नाम और विशेषण दिये गये हैं। 'लक्ष्मण' ऐश्वर्यसूचक नाम है। श्रीरामचरितमानसमें जहां ऐश्वर्यका संबंध है वहां यही नाम दिया गया है। यथा, 'लच्छन-धाम राम प्रिय सकल जगत आधार। गुर बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥' (बा०) यह 'लक्ष्मण' शब्दका अर्थ है।

२ (क) 'अनंत' अर्थात् आपका पार किसीने न पाया। आपके गुण, चरित, रूप, प्रताप आदिका अंत नहीं। यथा, 'तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥' (देववाक्य। अ०) पुनः 'अनन्त' से देशानवच्छिन्न, कालानवच्छिन्न और वस्त्वनवच्छिन्न जनाया। 'भूधर', 'भुजगराज' और 'भुवनेस' से 'जगत् आधार' (जगदाधार) सूचित किया। 'भूभारहारी' से अवतार और अवतारका कारण एवं भुवनोंके पालनपोषणकर्ता जनाया। मेघनादवधपर ऐसेही विशेषणोंसे देवताओंने आपकी स्तुति की है। यथा, 'जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्ह निसतारा॥' उस स्तुतिके सब भाव इस तुकमें सूचित कर दिये हैं। (विशेष 'मानस-पीयूष' में देखिये।) भगवंत कहकर आपको उत्पत्ति, पालन और संहारकेलिये समर्थ जनाया। भुवनका रक्षण करनेसे 'भुवनेस' कहा। इसी तरह श्रीहनुमानूजी एवं श्रीशिवजीको 'भुवनभर्ता' (२५), 'भुवनैकभर्ता' (२९), 'लोकनाथ' (१२) विशेषण दिये गये हैं।

(ख) 'प्रलय पावक' इति। इससे जनाया कि आप प्रलयके करनेवाले हैं। प्रलय करनेलिये अग्निकी विकराल ज्वालाएँ अपने सहस्रोंमुखोंसे उगलकर ब्रह्माण्डका नाश करते हैं। यथा, 'जुग षट भानु देखे प्रलय कृसानु देखे सेषमुख अनल बिलोके बार बार हैं।' (क०) ये मेघोंके वचन हैं। प्रत्येक प्रलयमें ऐसा होता है। उस अग्निको प्रलयके बादलभी नहीं बुझा सकते। इसीसे 'महाज्वालमाला' कहा।

(ग) 'समन संताप' इति। पद २५ (१) लोकगन सोक संतापहारी' देखिये। इसकेलिये अवतार लेना कहा। एवं यह बताया कि जिनका यह अवतार है वे कैसे ऐश्वर्यवाले हैं।

(घ) 'भुजगराज, महाज्वालमाला वमन' से विषधर, क्रोधमय, विकराल प्रतीत होते हैं। अतः 'समन संताप' कहकर जनाया कि वे परम कृपालुभी हैं। भक्तोंके संताप मिटाते हैं। उसीसे माधुर्यलीलामें नरशरीर धारण करते हैं। ये दोनों विरोधी गुण होनेसे निश्चय नहीं होता कि कठोर स्वभाव करालरूप हैं या कृपामय कोमल स्वभाव सुभग सौम्य-रूप हैं? इनका अंत कोई नहीं पाता! अतः 'अनंत भगवंत' कहा।

३ 'लीलावतारी' इति। वे० भू० पं० रामकुमारदासजी कहते हैं कि शास्त्रोंमें श्रीलक्ष्मणावतारकेलिये तीन तरहके प्रमाण विशेषरूपसे पाये जाते हैं। यथा, '**तत्र ज्ञानबल द्वान्द्वाद्रयं संकर्षणं हरेः। भगवान-च्युतोऽपीत्थे षड्गुणेन समे धिताः। बल ज्ञान गुणौ तस्य स्फुटौ कार्यवशान्मुने॥**' (तत्त्वत्रयभाष्ये) प्रमाणोंसे चतुर्व्यूह रूपोंमें ज्ञान तथा बलयुक्त संकर्षण रूपभी ब्रह्मका एक रूप हैं जिसे विश्वभी कहते हैं। '**अकाराक्षर संभूतः सौमित्रिविश्वभावनः।**' (अथर्ववेद) इस श्रुतिमें '**विश्वभावन संकर्षण**' नामक व्यूहका अवतार लक्ष्मणजीको कहा गया। नारदपांचरात्रमें '**क्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मणः**' से शेषशायी श्रीमन्नाराय-णका अवतार लक्ष्मणजीको कहा गया। '**शेषस्त्वभूल्लक्ष्मणः।**' (पाद्मे) और '**अवतार साहसी सहसफनके**' से लक्ष्मणजीको शेषावतार कहा गया। कल्पभेदसे तीनोंही ठीक हैं। व्यूहात्मक संकर्षण तथा शेषशायी श्रीमन्नारायणको एक विशेषणसे विशेषित किया जा सकता है। क्योंकि ब्रह्मके विग्रहमें आकारभेद हुआ करता है। स्वरूपसे ब्रह्ममें (कितनेभी उसके रूप हों) कोई भेद नहीं। शेषको उन विशेषणोंसे इसलिये विशेषित नहीं कर सकते कि वे नित्यमुक्त जीवोंमेंसे एक जीव विशेषही हैं। इसीलिये सर्वशास्त्रज्ञ श्रीगोस्वामीजीने पद ३७ में लक्ष्मणजीको शेषावतार कहा और यहाँ पद ३८ में प्रथम चरणमें नारायणावतार

कहकर तब लीलावर्णन करते हैं। 'अनंत' शब्द शेषमें रूढ़ि है। किंतु भगवंत शब्दभी गौणरूपसे शेषकेलिये कह सकते हैं। अनंतत्व ब्रह्मका गुण एवं विशेषण है। † अतः अनंत और भगवंत शब्द ब्रह्मके विशेषण हैं। 'भुवनेश' के साथका ईश शब्द समास करनेसे भूधर और भुजगराज तथा भवन तीनोंके साथ संघटित होता है। इस उत्तरार्धका अर्थ यह है कि "प्रलयपावक महाज्वालमालावमन, समन संताप' आदि जिनकी लीला है उन शेषके आप अवतारी अर्थात् कारण हैं।'

४ 'जयति दासरथि समर समरत्थ' इति। (क) लीलावतारी कहकर अब बताते हैं कि कहां अवतार लिया और किस रूपसे! 'दाशरथि' कहकर रघुकुलमें चक्रवर्ती महाराज दशरथके यहाँ जन्म लेना बताया जिसमें ऐश्वर्य छिपा रहे। दशरथके पुत्र तो औरभी हैं? इसलिये 'सुमित्रा-सुवन' कहकर रानी सुमित्राजीके गर्भसे जन्म बताया। 'सुमित्रासुवन' कहकर यहभी जनाया कि सुमित्राजी इनकी माता होनेसे अपनेको पुत्रवती मानती हैं। (ख) 'सत्रुसूदन राम भरत बंधो' इति। शत्रुसूदन 'राम' का विशेषणभी हो सकता है और स्वतंत्ररूपसे शत्रुघ्नजीकाभी अर्थ दे सकता है। असमंजस केवल यह हो जाता है कि नाम क्रमसे नहीं रह जाते। राम भरत शत्रुघ्नके भाई कहनेका भाव यह होगा कि दशरथगृहमें आप इन तीनोंके भाईरूपसे जन्म लेते हैं। इससे यहभी जनाते हैं कि दशरथजीके यहां आकाशवाणीके अनुसार ब्रह्म अंशोंके सहित इन चार रूपोंसे प्रकट हुआ है। पुनः, भाव कि आप भगवान् राम, परमभागवत भरत और भागवत भक्त शत्रुघ्न तीनोंके बंधु हैं।

५ 'चारु चंपक' यह रूपका वर्णन है। चंपाके सदृश पीत (तप्त स्वर्ण सदृश) वर्ण, दीप्तिमान, मृदुमूर्ति, देखनेमें सुकुमार पर बहुत पुष्ट, और सुगंधित शरीर जनाया। ये सब गुण चंपामें हैं। 'दिव्यतर भव्य' का भाव कि अवतारके साथ आपके भूषण वस्त्रकाभी अवतार होता है

†ईश्वरके स्वरूप, रूप, गुण और चरित्रादि सब अनंत हैं। यथा, 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म' (तै० ब्रा० १), 'नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्'।

जो कभी मलिन नहीं होते। नित्य एकसे बने रहते हैं। 'लावण्यासिंधो' पद ३७ टि० ५ 'रूपके निधान' में देखिये। पुनः भाव कि वह समुद्र खारे जलका है और आप परमाशोभारूपी जलभरे समुद्र हैं। आपके सौंदर्यकी थाह नहीं। जो देखता है वह उसीमें डूब जाता है। 'सोभासींव सुभग दोउ बीरा।' 'सिंधु' कहकर जनाया कि इनके समान यही हैं। 'यह छबि सखि पटतरिय काही।', 'कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यहु रूप निहारी (बा०)

६ 'जयति गाधेय गौतम जनक सुखजनक' इति। ऐश्वर्य स्वरूप, उसके अवतारका हेतु, अवतार और अवतारशरीर कहकर अब अवतारका कार्य कहते हैं। पूर्व दाशरथी समर समरथ कहा। अब समर सामर्थ्यके उदाहरण देते हैं। 'गाधेय गौतम जनक सुखजनक' इति। ये तीनों बड़े तेजस्वी, वीर, प्रतापी और सामर्थ्यवान् थे। इनकीभी चिन्ताओंको हरकर इनके सुखके कारण हुए। दाशरथी कहकर जनाया था कि जैसे दशरथजी इन्द्रके सहायक होते थे वैसेही उनके पुत्र लक्ष्मण इंद्रावतार गाधिके पुत्र गाधेयके सहायक हुए। पुनः 'गाधेय'का भाव कि ऋषियोंको चिन्ता न होनी चाहिये। ये राजाके पुत्र हैं। अतः चिंता हुई थी कि निशिचर वध कैसे हो? इसी संबंधमें मानसमें कविने दिया हैं। यथा,
"बिश्वामित्र महामुनि ज्ञानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी॥
जह जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं॥
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥
गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरिहि न निसिचर पापी"
विश्वामित्रजी स्वयं बड़े पराक्रमी और समर्थ थे। दूसरा स्वर्ग और ब्रह्मांड रचनेकी जिनमें शक्ति थी, जिन्होंने शापसेही वसिष्ठजीके सौ पुत्रोंको तुरत भस्म कर दिया, बड़े बड़े कार्य जिनके हैं, जो क्षत्रिय-शरीरमेंही ब्रह्मर्षि हो गये, जो पद सिवाय ब्राह्मणके और कोई प्राप्त न कर सका ऐसे महात्माकेभी सुखके हेतु लक्ष्मणजी हुए। अपने सहायक जानकर मुनिने लक्ष्मणजीकोभी दशरथमहाराजसे माँगा था। यथा, गी० ४१ 'चहत महामुनि जाग जयो। नीच निसाचर देत दुसह दुख

कुस तन ताप तयो॥ सापे पाप नये निरतर खल तब यह मंत्र ठयो।' पुनः, "प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा। 'करी बिनती आनउँ दोउ भाई॥" 'अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥' एवं "पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन॥" श्रीरामजीके साथ साथ इन्होंनेभी निशाचरोंका संहार किया। रामजीने सुबाहुको मारा और 'अनुज निसाचर कटक सँघारा॥ मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देवमुनि झारी'॥ निर्भय करना यही 'सुख' का देना है जैसा 'स्तुति' करनेसे प्रगट है।

जनकसे उनके कहे हुए बचनोंने उनका सुख झलक रहा है। यथा, 'ताड़का सँहारि मख राखि नीके पाले ब्रत कोटि कोटि भट किये एक एक घायके। एक बान बेगही उड़ाने जातुधान जात सुखि गये गात हैं पतौअ भये बायके'; 'मम हित लागि नरेस पठाये॥ मख राखेउ सब साखि जग जिते असुर संग्राम॥'

(ख) 'गौतम सुखजनक' इति। बाबू शिवप्रकाशजी लिखते हैं कि "यद्यपि अहल्याका उद्धार श्रीरामजीने किया तथापि उनकी कर्तव्यता श्रीलक्ष्मणजीसे भिन्न वा पृथक् नहीं है। विना इनके श्रीरामजी अयोध्यासे अकेले जातेही कब? विश्वामित्रजी इसे भली भाँति जानते थे। इसीसे उन्होंने दशरथजीसे 'अनुज समेत' रघुनाथजीको माँगा और दोनोंको साथ लेकर गये। श्रीमद्गोस्वामीजी इनके विषयमें लिखते हैं, "रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयेउ जसु जाका॥"

श्रीरघुनाथजीकी किर्ति पताकाको ऊँचा करने और जगत्में फहरानेके-लिये आप 'दंड' (डंडे) के समान हैं जिसपर पताकाका आधार है। संभव है कि लक्ष्मणजीनेही शिलाको देखकर श्रीरघुनाथजीसे प्रश्न करके उनकी दृष्टि उधर आकर्षित की हो या शिलाकी तरफ़ इशारा किया हो। तब उन्होंने विश्वामित्रजीसे पूछा हो कि यह क्या है? नगर दर्शन प्रकरणमेंभी ऐसाही देख पड़ता है। लक्ष्मणजीको उत्कण्ठा होती है और भगवान् रामचन्द्रजी उनको दिखाते हैं।

महर्षि गौतम महान् तेजस्वी थे। उनके वचनकी रक्षाकेलिये अहल्या-जीको शापसे मुक्त करानेमें आप सहायक हुए। पति पत्नीका पुनर्संयोग

होनेसे सुख हुआ। उनको इतना सुख हुआ कि वह स्वयं आकर उसी समय अहल्याजीको अपने साथ ले गये।

(ग) 'जनक सुखजनक' इति। श्रीजनकजी महाराजको बड़ी चिंता और ग्लानी थी कि "हमने विवाहकेलिये धनुष तोड़नेकी प्रतिज्ञा कर दी है। देवता, दैत्य, राक्षस कोईभी उसे अपनी जगहसे हटाभी न सका। विवाह कैसे होगा? यद्यपि राम सब प्रकार सीताके योग्य वर हैं तथापि प्रतिज्ञा तोड़कर उनके साथ विवाह कर नहीं सकते। ऐसा करें तो उसमेंभी हँसी है? यथा, "**कुँअरि मनोहरि बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय। पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥ सुकृत जाइ जौ पन परिहरउं। कुँअरि कुँआरि रहउ का करउँ॥ जौ जनतेउं बिनु भट भुइं भाई। तौ पन करि होतेउँ न हँसाई॥**" पुनः, '**मेटहु तात जनकपरितापू**' विश्वामित्रजीके इन वचनोंसेभी श्रीजनकजीका दुखित होना स्पष्ट है। इसी तरह गीतावलीमेंभी श्रीजनकजीको दुखित और अधीर कहा है। यथा, "**बोले जनक बिलोकि सिया तन दुखित सरोष अधीर। डग्यो न धनु जनु बीर बिगत महि किधौं कहुं सुभट दुरे॥**" (पद ९०) जनकमहाराजके '**बीर बिहीन मही मैं जानी।**' '**जनु बीर बिगत महि**' इत्यादि वचन लक्ष्मणजी न सह सके। ये वचन उनको बाणसे लगे और वे सकोप वचन बोले। यथा, "**रघुबंसिन्ह महं जहं कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई॥ जनक कही जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुलमनि जानी॥ तोरउँ छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ। जो करऊँ प्रभुपद सपथ कर न धरउँ धनु भाथ॥**" इन वचनोंको सुनकर जनकजी सकुचा गये और सभीको सुख हुआ। यथा, '**सिय हिय हरष जनक सकुचाने॥ गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाहीं॥**' न ये बोलते न मुनि श्रीरामजीको धनुष तोड़नेकी आज्ञा देते और न जनक महाराजका दुःख मिटता। क्योंकि ये तो धनुष तोड़ते नहीं और तोड़तेभी तो केवल कौतुक और बल दिखानेकेलिये। यथा, '**कौतुक करऊँ बिलोकिय सोऊ।**' कारण कि ये तो सीताजीको माता

मानते थे। गीतावलीमें कहा है, 'मेरो अनुचित कहत लरिकाई सब पन परमित आन भांति सुनी गई है। नतरु प्रभु प्रताप उतरु चढ़ाइ चाप देत्यों पै दिखाइ बल फल पापमइ है' ॥८६॥ गीतावलीमें भी इस अवसरपर जनकका हर्ष वर्णन किया गया है। यथा, 'हरषे पुरनरनारि सचिव नृप कुँवर कहे कल बैन।' श्रीरामचरितमानसमें परशुराम गर्वहरणके पश्चात् श्रीजनकजी स्वयं अपना हर्ष अपने वचनोंमें प्रगट कर रहे हैं। यथा, 'मोहि कृत्यकृत्य कीन्ह दोउ भाई।' अतएव लक्ष्मणजीको 'जनक सुख जनक" कहा।

७ 'विश्वकंटक कुटिल कोटि हंता' इति। चरित प्रसंगका जो क्रम चल रहा है उसके अनुसार यहां यज्ञ रक्षण चरित अभिप्रेत जान पड़ता है। यथा, 'कोटि कोटि भट किये एक एक घायके'। (गीतावली)

८ 'बचन चय चातुरी परसुधर गर्बहर' इति। यहाँ गर्वहरणमें 'परशुधर' नाम कहा। यह स्वयं निरादर वा अपमानसूचक है। लक्ष्मणजी रामप्रति इनके वाक्य सुनकर प्रथमही इनका अपमान करते हुए बोले और अंततक अपमानही करते रहे। मानसमें कविने इनकी वार्ताका प्रारंभ 'परसुधर' हीसे कियाभी है। 'बोले परसुधरहिं अपमाने'। दूसरे, इनसे वाक्यवादमें परशुरामने बारंबार अपने फरसेका नामभी लिया है। यथा, 'बोले चितइ परसकी ओरा', 'परसु बिलोकु महीपकुमारा', 'परसु मोर अति घोर'। परशुरामजीको बड़ा गर्व था कि मैंने सहस्रार्जुनका वध किया। २१ बार पृथ्वी निःक्षत्रिय कर दी। कोई मेरा सामना करनेवाला नहीं है। इत्यादि गर्वित वचनोंके उत्तरमें लक्ष्मणजीने कहाभी है, 'अहो मुनीस महाभट मानी'। अतः 'परसुधर गर्बहर' कहा अर्थात् उनको जो अपने फरसेका बड़ा भारी अभिमान था वह दूर कर दिया। यथा, 'तासु गर्व जेहि देखत भागा'।

'बचनचयचातुरी' पर पूरा प्रसंग मानसपीयूषतिलकमें पढ़ने योग्य है। शत्रु स्वयं पराजित होकर वचनकी प्रशंसा करता है। 'जयति बचन रचना अति नागर'। वचनही वचनसे पराजित हो गये। अंतमें गर्वहरण होनेपर उन्होंने क्षमा माँगी है। 'छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता'।

कवितावलीमें परशुरामगर्वहरणप्रसंग थोड़ेहीमें खूब कह दिया गया है। यथा, " भूपमंडली प्रचंड चंडीस कोदंड खंड्यो चंड बाहुदंड जाको ताही सों कहतु हौं। कठिन कुठार धार धारिबेको धीर ताहि बीरता विदित ताको देखिये चहतु हौं॥ तुलसी समाज राज तजि सो बिराजै आजु गाज्यौ मृगराज गजराज ज्यों गहतु हौं। छोनीमें न छांड्यौ छप्यौ छोनिप छौना छोटो छोनिपछपन बांको विरुद बहतु हौं॥ ' इति परशुरामगर्वः। अब लक्ष्मणजीका उत्तर सुनिये। " सुजस तिहारो भरो भुवननि भृगुनाथ प्रगट प्रताप आपु कह्यो सो सबै सही। टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेस जू को रावरी पिनाकमें सरीकता कहा रही॥ " इसका उत्तर न देते बना तब कौसिकजीसे बात करने लगते है। यथा, " गर्भके अर्भक काटन को पटु धार कुठार कराल है जाको। सोइ हौं बुझत राजसभा धनु को दल्यो हौं दलिहौं बल ताको॥ लघु आनन ऊतरु देत बड़ो लरि है मरि है करि है कछु साको। गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको॥"

' चय ' के औरभी अर्थ ये हैं। किला, शहरपनाह (परकोटा) और नींव (बुनियाद)। ये सभी अर्थ यहां घट सकते हैं। वचन किला या नींव है जो बड़ी चतुराईसे दृढ़ बनायी गयी हैं कि हिल न सके, परशुरामजी उसको तोड़ न सके। मानस मुखबंदमें ' बर बानी ' को घाट और परशुरामजीके क्रोधको ' घोर धार ' कहा है। यथा, ' घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी॥ ' (बा०)

प्रायः सभी टीकाकारोंने ' समूह ' अर्थ किया है। वीर कविजीने ' वचनोंकी अपार चतुराई ' और वि० ने ' चतुराई भरी बातोंसे ' ये अर्थ किये हैं।

९ परशुरामजी और विश्वामित्रजी राजा जन्हुके पुत्र अज, अजके बलाकाश्व और बलाकाश्वके कुशिक हुए। कुशिकने पुत्रप्राप्तिकेलिये कठिन तपस्या की, जिससे इंद्र स्वयं उनके पुत्र हुए। पुत्रका नाम गाधि था। ये कन्नौजके राजा थे। गाधि महाराजने संतान प्राप्तिकी इच्छासे

वनमें रहकर यज्ञानुष्ठान किया। यज्ञसे उन्हें एक अनुपम सुंदरी कन्या प्राप्त हुई जिसका नाम सत्यवती हुआ। ऋचीक महर्षिने उसकेलिये राजासे याचना की। तब राजाने उनसे शुल्कमें चन्द्रमासमान कान्तिवाले और वायुसमान वेगवान् एक हजार घोड़े माँगे जिनके एक कान श्यामवर्णके हों। मुनिने वरुणसे वैसे घोड़े माँगे। वरुणने कहा कि जहाँ आपकी इच्छा होगी वहीं ऐसे एक हज़ार घोड़े प्रकट हो जायँगे। तब मुनिने कन्नौजके पास गंगातटपर आकर उन घोड़ोंका चिंतवन किया और वे प्राप्त हो गये। महर्षि ऋचीकने वे घोड़े राजाको दे दिये। तब शापके भयसे राजाने अपनी कन्या उनको दे दी। (महाभारत अनुशासनपर्व)

एक बार महर्षिने सत्यवतीपर अत्यंत प्रसन्न हो वर माँगनेको कहा। जब उसे यह मालूम हुआ कि पति मुझपर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो उसने यह समाचार मातासे कहा। माताने उससे कहा, 'बेटी! तुम्हारे पतिको मुझपरभी कृपा करनी चाहिये। उनसे कहो कि वे मुझेभी पुत्र प्रदान करें। वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। सत्यवतीने पतिके पास जाकर माताकी बात कही। उन्होंने कहा, 'मेरी कृपासे तुम दोनोंको गुणवान् पुत्र प्राप्त होगा। तुम्हारी माता ऋतुस्नानके बाद पीपलके वृक्षका आलिंगन करें और तुम गूलरका। मैंने दो मंत्रपूत चरू तैयार किये हैं। यह तुम खा लेना, दूसरा माँको देना' ।*

---

*१ महाभा० शान्तिपर्वमें कथा इस प्रकार है कि एक बार पत्नीपर बहुत प्रसन्न होकर महर्षि ऋचीकने सत्यवती और गाधिको पुत्र देनेके-लिये दो चरू बनाये और अपनी पत्नीको बुलाकर दोनों चरू उसे देकर उससे कह दिया कि 'यह तुम खा लेना'। पत्नीको समझाकर मुनि वनमें तपस्या करने चले गये। उसीसमय राजा गाधि पत्नीसहित आश्रमपर आये। सत्यवती बड़ी प्रसन्नताके साथ चरु लिये हुए माताके पास आयी और मुनिकी कही सब बात कह दी। माताने भूलसे अपना चरु सत्य-वतीको दे दिया।

सत्यवतीने सब बात माँसे कह दी। माँने कहा, 'बेटी! तुम्हारे स्वामीने मंत्रसे अभिमंत्रित करके जो चरू तुम्हारेलिये तैयार किया है वह मुझे दे दो और मेरा तुम ले लो। इसीप्रकार हम लोग वृक्षोंमेंभी अदल बदल कर लें। मैं तुम्हारी माँ हूँ। यदि मेरी बात माननेयोग्य समझो तो ऐसाही करो।' (भीष्मवाक्य युधिष्ठिरप्रति) इस प्रकार सत्यवतीने माँ-वाला और माँने कन्यावाला चरू खा लिया। दोनों गर्भवती हुईं।

मुनि जब वनसे लौटे तो सत्यवतीकी अवस्था देख वे उससे बोले, 'चरूके बदल जानेसे तुम्हारा पुत्र क्षत्रिय होगा। ब्राह्मण होते हुएभी वह क्षत्रियोंके आचरण करेगा।' यह सुनकर वह काँप उठी और बारंबार प्रार्थना करने लगी कि 'मुझे ब्राह्मणरहित पुत्र होनेका आशीर्वाद न दीजिये। आप समर्थ हैं। मुझे शान्त और सरल पुत्रही दीजिये। मेरा पौत्र भलेही उग्र स्वभावका हो।' तब मुनिने कहा कि ऐसाही होगा। इस तरह सत्यवतीके महर्षि हुए और जमदग्निजीके प्रसेनजित् राजाकी बेटी रेणुकासे पांच पुत्र हुए जिनमेंसे सबसे छोटे परशुरामजी थे। (शान्तिपर्व)

परशुरामजीने गंधमादनपर्वतपर जाकर शिवजीको प्रसन्न कर उनसे अनेकों दिव्य अस्त्र और अत्यंत तेजस्वी परशु प्राप्त किया। परशुरामजीने इस परशुसे सहस्त्रार्जुनको कुलसहित काटकर पिताका बदला चुकाया और उसी कोपसे उन्होंने एक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया।

गाधिराजाके पुत्र विश्वामित्र हुए। कुशिकवंशीय होनेसे वे कौशिक और गाधिपुत्र होनेसे गाधेय कहलाये। कई बार वसिष्ठजीसे हारनेपर

२ वनपर्वमें परशुरामजीके शिष्य अकृतव्रणने यह कथा इस प्रकार कही है कि 'सत्यवतीके साथ ऋचीकका विवाह हो जानेपर महर्षि भृगुजी आये और पुत्रको सपत्नीक देख प्रसन्न हो उन्होंने सत्यवतीसे कहा, 'सौभाग्यवती वधू! तुम वर माँगो। तुम्हारी जो इच्छा होगी वही मैं दूंगा।' उसने अपने और अपनी मांकेलिये पुत्रकी याचना की। आगेकी कथा प्रायः वैसीही है जैसी ऊपर दी गयी है। केवल 'ऋचीक' की जगह 'भृगु' हैं।

इन्होंने क्षत्रियबलको तुच्छ मान तपस्या कर महर्षि पदवी प्राप्त की। विश्वामित्र और परशुराम दोनों बहुत प्रसिद्ध हैं।

१० 'सर्वदा रामभद्रानुगता' इति। अनुगंतामें दोनों भाव हैं। सेवक हैं और सदा साथ साथ रहते हैं। आपने कभी साथ नहीं छोड़ा। सब कार्योंमें सदा हाथ बटाते रहे हैं।

११ (क) 'जयति सीतेस सेवा सरस' इति। 'सीतेस' का भाव कि जो सीता पराशक्ति हैं, जो '**उमा रमा ब्रह्माणि बंदिता। जगदंबा संततमनिंदिता॥ जासु कृपाकटाच्छ सुर चाहत चितवन सोइ।**' है; '**जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित उमा रमा ब्रह्मानी।**' और जो श्रीरामजीसे अभिन्न हैं, परम करुणामयी और कृपाल हैं, उनके पति। पुनः, 'सीतेस सेवा' का भाव कि सीताजी जैसी सेवा अपने स्वामीकी करती हैं। यथा, "**पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता॥ जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरण कमल मन लाई॥ जेहि बिधिकृपासिंधु सुख मानइ। सोइकर श्री सेवा बिधि जानइ॥**" उ०

इसी प्रकार उनकी प्रभुता जानकर इनकी सब प्रकार प्रेमपूर्वक सेवा करते हैं। पुनः, 'सीतेस सेवा' कहकर जनाया कि आप श्रीसीताजी और उनके पति, दोनोंकी सेवामें मन, कर्म और बचनसे अत्यंत अनुरक्त रहते हैं।

(ख) 'सेवा सरस' इति। भाव कि सेवाधर्म परम कठिन है। यथा, '**सबते सेवक धरम कठोरा।**' आप इस परम कठिन धर्मको सरसतासे करते हैं। अत्यन्त अनुराग बढ़ाकर मन कर्म वचनसे सब प्रकारकी सेवा करते हैं। अंबा श्रीसुमित्राजीका उपदेश है कि, "**सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥ तुम्ह कहँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु राम सिय जासू॥ जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥ उपदेसु यहु जेहि जात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं। पितु पातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥**" एवं '**सिय रघुबर सेवा सुचि ह्वै रहौ तौ जानिहौं सही सुत मेरो।**' (गीतावली) और ऐसी सेवा इन्होंने कीभी है। दिनमें सब सेवा करतेही

थे और रात्रिमें बराबर जागते, पहरा देते थे। न दिनमें सोये न रात में। यह बात ग्रन्थकारने मानसमें उनकी एक दिनकी चर्या लिखकर प्रकट कर दी है। शृङ्गवेरपुरमें यह सब सेवा दिखायी है। फिर चित्रकूटमें भी सेवाकी रीति दिखायी है। यथा, '**सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं॥ सेवहिं लखन करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥**' दु:खमें 'सुबंधु' और 'सुहृद' होकर धिरज देते थे, रणमें अपने प्राणतक दे दिये थे, रात्रिमें बराबर पहरा देते थे।

'सीतेश सेवा सरस' में उपर्युक्त उद्धरणोंके सब भाव भरे हुए हैं। आपने सदा सानुकूल रहकर सेवा की है। अपना मत विरुद्धभी हुआ तबभी किया वही जो स्वामीको सुखद था। क्योंकि वे जानते थे कि ये 'सीतेश' हैं, ब्रह्माण्डनायक हैं, जगत्पति हैं। उनके भाव वे ही जान सकते है। हम सब नहीं जान सकते।

सेवा सरसताका सबसे बढ़कर उदाहरण चित्रकूटमें भरतागमनके अवसरपर हमें दिखायी पड़ता है। "**बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बर जोरा॥ मिलि न जाइ नहि गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई॥ रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ि चंग जनु खैंच खेलारू॥**"

१२ 'विषय रस निरस' इति। जो भगवत् सेवामें सरस होगा, उसे विषयोंके चिन्तवनका समयही कहाँ? भोग तो बहुत दूर है। मिलान कीजिये, '**राम प्रेम पथ पेखिये दिये बिषय तन पीठि। तुलसी केंचुरि परिहरे होत साँपहू डीठि॥**' दो० ८२ '**तुलसी जौलौं बिषयकी सुधा माधुरी मीठि। तौलौं सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि॥**' दो० ८३।

आप 'विषयरस रूखे' हैं। आपका सारा चरितही इसका उदाहरण है। स्मरण रखनेकी बात है कि लक्ष्मणजीको वनवास हुआ नहीं था। वे चाहते तो घरही रह जाते, वनको न जाते। परंतु ये सेवाका मर्म जानते थे। अतएव इन्होंने सब प्रकार कष्ट स्वीकार किया। आप श्रीरामप्रेममें ऐसे पगे हुए थे कि शरीरका मोह न था। कहांतक कहा जाय? ये

श्रीसीतारामजीके साथकेलिये ऐसे उतावले थे कि स्त्री तकसे न मिले। मातासेभी मिले तो रघुनाथजीके आदेशानुसार वनगमनकी आज्ञा लेनेकेलिये। श्रीरघुनाथजीनेभी तो यही देखकर कि ये तो '**देह गेह सब सों तृन तोरे**' हुए हैं, इनको साथ न ले जायेंगे तो ये प्राणही छोड़ देंगे, इनको अपने साथ लिया था। माताने कहाभी है कि बनवासमेंही तो तुम्हें पूर्ण सेवाका लाभ प्राप्त होगा। यथा, "**तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥**" (अ०), "**कीजेहु इहै बिचार निरंतर राम समीप सुकृत नहिं थोरे॥**" (गीतावली) अध्यात्मरामायणके अनुसार मेघनादका वध उसीके हाथ हो सकता था जिसने बारह वर्ष न कुछ खाया पिया हो, न सोया हो, न विषय भोग किया हो। श्रीलक्ष्मणजी चौदह वर्ष सब सुख, निद्रा, भोजन, स्त्री इत्यादि त्याग रहे थे। यद्यपि यह मत वाल्मीकीय तथा मानसके अवतारवाले कल्पका नहीं जान पड़ता। 'मानस-पीयूष' में देखिये।

१३ 'निरुपाधि धुर धर्म धारी' इति। 'सीतेस सेवा सरस' और 'विषयरस निरस' कहकर तब 'निरुपाधि धुर धर्म धारी' कहनेका भाव कि सेवक स्वामि धर्म और वैराग्यमें आप अत्यंत श्रेष्ठ हैं, शुद्ध शरणागति धर्मके पालक हैं। आपका रामप्रेम निरुपम है। गीतावलीमें इस परम धर्मका एक उदाहरण स्वयं इनके वचनोंमें मिलता है। "**हृदय घाव मेरे पीर रघुबीरै। पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेम पुलक बिसरै सरीरै॥ मोहि कहा पूछत पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै। सोभा सुख छिति लाहु भूप कहं केवल कांति मोल ही हीरै। तुलसी सुनि सौमित्रि बचन धरि न सकत धीरौ धीरै। उपमा राम लखनकी प्रीति की क्यों दीजै छीरै नीरै॥**" पद २५ देखिये।

वैजनाथजी 'निरुपाधि' का भाव यह लिखते हैं, 'उपाधिना धर्मचिंता' इत्यमरः। माता पिता कुलगुरु देवविप्रादि यावत् धर्म है। उनकी चिन्ता त्याग उपाधिरहित श्रीरामस्नेहरूप जो भारी सेवक धर्म है उसका बोझा।

१४ 'विपुल बलमूल सार्दूल विक्रम जलदनादमर्दन' इति। 'विपुल बलमूल सार्दूल विक्रम' को जलदनादका विशेषण मान लेनेसे श्रीलक्ष्मणजीके बलकी अत्यन्त उत्कृष्टता और पराकाष्ठा सिद्ध होती है। वाल्मीकीयमें स्वयं मेघनादने बिभीषणसे अपने बलपराक्रमके संबंधमें कहा है, 'त्रिलोकनाथो ननु देवराजः शक्रो मया भूमितले निविष्टः। मयार्पिताश्चापि दिशः प्रसन्न सर्वेतदा देवगणः समग्राः॥ ऐरावतो निःस्वनमुन्नदत्सन्नि पातितो भूतितले मयातु। विकृष्य दन्तौ तु मया प्रसह्य वित्रासिता देवगणास्समग्राः॥ सोऽहं सुराणामपि दर्पहंता दैत्योत्तमानामपि शोकहर्त्ता। कथं नरेन्द्रात्मजयोर्नशक्तो मनुष्ययोः प्राकृतयोः सुवीर्यः।' मैंने त्रैलोक्यके स्वामी महान् पराक्रमी इंद्रकोभी अपनी शक्तिसे बशमें कर कैद कर लिया और जोरसे चिल्लाते चिंघाड़ते हुए ऐरावतके दोनों दाँतोको उखाड़कर उसको पृथ्वीपर पटक दिया जिससे सब देवता भयभीत हो गये थे। देवताओंके गर्वको हरनेवाले और श्रेष्ठ दैत्योंकेभी शोकके हरनेवाले मुझ ऐसे श्रेष्ठ वीरके सामने साधारण मानव राजकुमार क्या चीज़ है कि मैं उनको न मार सकूंगा ? रावणको अपने इस पुत्रके बलका बड़ा भरोसा और अभिमान था। यथा, 'करिहौं बहुत कहौं का थोरा॥ सुनि सुत बचन भरोसा आवा।' (लं०)

इसे मेघनादका विशेषण और 'महावीर भारी' को लक्ष्मणजीका विशेषण माननेसे 'महाबीर भारी' का भाव होगा कि मेघनाद महावीर था और ये भारी महावीर हैं। 'महाबीर भारी' को भी 'जलदनाद' का विशेषण ले सकते हैं।

१५ 'जयति संग्राम सागर भयंकर तरन' इति। (क) संग्रामको सागर कहनेका भाव कि राम रावण संग्राम अनुपमेय हैं। वाल्मीकिजी कहते हैं कि जैसे सागरकी उपमा सागरही है और गगनकी उपमा गगनही है वैसेही राम रावण समरकी उपमा रामरावणसमरही है। हनुमान्नाटकमेंभी वही बात कही गयी है। यथा, "गगनं गगनाकारं सागरं सागरोपमम्। राम रावणयोर्युद्ध राम रावणयोरिव॥" (ह० न० १४।१८) ऐसा घोर भयंकर संग्राम कोई न हुआ है और

न होगा। यहां परंपरित सहित सम अभेद रूपक अलंकार है। श्रीबैजनाथजी संग्रामसागरका रूपक यह देते हैं कि, "रावणकुम्भकर्ण दोनों तट हैं। अतिकाय, अकंपन और महोदरादि मगर, घड़ियाल आदि जलजंतु हैं। निशाचरसेनासमूह जल है। मेघनाद कहर (क्रोध) धारा है।" इस रूपकका विस्तार इस तरहभी कर सकते हैं कि रावणकी बीस भुजाएँ बीस समुद्र हैं, अतुलभुजबल जल हैं, (रावणका बड़ा बल मेघनाद था अतः वह जल है, ऐसाभी कह सकते हैं), राम रावण संग्राम 'भयंकर' सागर है। लक्ष्मणजीने मेघनादको मारकर रावणका बलरूपी जल सोख लिया।

(ख) 'बर बाहु सेतु' इति। श्रीरघुनाथजीने स्वयंभी लक्ष्मणजीको अपना 'बाहु' कहा है। गीतावलीमें श्रीमुखवचन हैं, "**मेरो सब पुरषारथ थाको। बिपति बटावन बंधु बाहु बिनु करऊँ भरोसो काको॥ सुनु सुग्रीव साँचहू मोपर फेरो बदन बिधाता। ऐसे समय समर संकट हौं तज्यौ लखन से भ्राता॥ गिरि कानन जैहै साखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती। ह्वै है काह बिभीषन की गति रही सोच भरि छाती॥**"

(ग) 'बाहु' का भाव है 'सब काममें सहायक, साथी, विपत्ति बँटाने वाला।' जैसे शरीरमें 'बाहु' न हो तो मनुष्य अपनेसे कुछ नहीं कर सकता। गीतावलीका उपर्युक्त पद 'बाहु' की व्याख्याही समझिये।

(घ) 'करन बर बाहु सेतू' इति। समर सागरसे पार उतारनेकेलिये सेतुरूप हुए। यथा, '**आनि पहार जुहारे प्रभु कियो बैद्य उपचार। करुनासिंधु बंधु भेंटयो मिटि गयो सकल दुखभार॥ मुदित भालु कपि कटक लह्यो जनु समर पयोनिधि पार। तुलसिदास सुधि पाइ निसाचर भये मनहु बिनु प्रान॥ परि भोर ही रोर लंकगढ़ दई हाँक हनुमान॥**" (गीतावली) भाव कि आपने अपनी भुजाओंके बलसे सबको समरसागर पार उतार दिया है। इनके मुर्छासे जगनेपर सारी सेना ऐसी प्रसन्न हुई मानों समरसागरके पार हो गयी। इनके बलका सबको ऐसाही भरोसा रहा है। आप रावणको कुछ समझतेही न थे। उसे डाँटा

ललकारामी है। 'रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू ॥' मंदोदरीनेभी रावणसे कहा है 'रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहिं नाँघेहु असि मनुसाई ॥'

१६ (क) 'उर्मिलारवन' इति। इससे शक्तिसहित वंदना कर भावभी सूचित होता है। (ख) 'कल्यान मंगलभवन' से पारलौकिक और लौकिक दोनों मंगल गिनाये। आपके स्मरणसे मंगल और कल्याण होता है। यथा, 'ललित लखन मूरति मधुर सुमिरहु सहित सनेह। सुख संपति कीरति बिजय सगुन सुमंगल गेह ॥' दो २१० ॥ सुख, संपत्ति, कीर्त्ति और विजय आदि मंगल हैं और सुमंगल कल्याण है।

१७ श्रीदेवदत्तशास्त्रीजीने श्रीलक्ष्मणजीकी स्तुति दो पदोंद्वारा की है। पहले पदसे गोस्वामीजीने लाड़िले लखनलालजीको अपना सर्वस्व मान कर खूब अपनपौ दिखाया है। यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजीकी तपश्चर्याकी वृद्धिको देखकर कुछ लोगोंने उनके वैभव (धनसम्पत्ति) की वृद्धिका अन्दाज लगाया और एक रात चोरी करनेको घुसे। किन्तु वहाँ देखते हैं कि दो सुन्दर राजकुमार धनुषबाण लिये पहरा दे रहे हैं। चोर निस्तब्ध गतिहीन हो गये। और दिन निकलनेपरभी टससेमस न हुए। गोस्वामीजीके पूछनेपर उन्होंने सारी कथा कह सुनायी। तब तो गोस्वामीजी प्रेमविभोर हो गये। रहा सहा असबाब लुटा दिया और एकमात्र धन तथा धनी श्रीरामचंद्रजी और लखनलालजीकोही मान लिया।

तुलसीदासजीके इस पदसे उल्लिखित घटनाका संघटन पूर्णतया प्रतीत है। उन्होंने प्रारम्भमेंही निर्भर प्रेममगन होकर कहा, 'हे लाड़िले लखनलालजी! तुम जनके (भक्त) हित हो। पदके अन्तिम चरणमें कहते हैं, 'हे उर्मिलाके बल्लभ! तुलसीसे निर्धनके सुलभसनेह बस धनी और धन तुम्ही हो।' तात्पर्य यह कि यह पद उपर्युक्त घटनाके संस्मरणरूप स्वाभाविकरूपसे वाग्धारामें प्रवाहित हुआ है।

दूसरे पदमें श्रीलक्ष्मणजीका सांगोपांग परिचय दिया है। अन्वीक्षणशक्ति सम्पन्न, समीक्ष्यकारी महाकविने लक्ष्मणजीकी स्तुति करते हुए ग़ज़ब कर दिया। पूर्व जन्मसे लेकर इस जन्मतकका पूर्ण परिचय अलौकिक

वैभवका गान छोटेसे पदमें करके गागरमें सागरही भरा है। विशेष-भाव गोस्वामीजी लक्ष्मणजीकी स्तुतिके प्रथम पदके अन्तिम चरणमें श्रीलखनलालजीको 'वल्लभउर्मिलाके' लिखते हैं। द्वितीयपदमें 'उर्मिला रवन' लिखते हैं। वस्तुतः ये दोनों विशेषण दोनों पदोंके मुख्य भाव और वैशिष्ट्यकेही द्योतक हैं। वल्लभ और रमण दोनोंके शब्दार्थ तो पतिही हैं, किन्तु भावमें अन्तर है। 'वल्लभ' शब्दमें अतिप्रियता, स्वाभाविकता, सात्विकता और समवाद सम्बन्ध निहित है। 'रमण' में रजोगुणमयी विलासिता, दाम्पत्यप्रेम और शिष्टाचारकी कृत्रिमता रहती है।

प्रथम स्तुतिमें स्वार्थत्यागपूर्वक लोकप्रियता और लाड़िलापन छलकता है जिसमें स्वाभाविकता और स्नेहका पुट है। इस पदसे अपनापनहीं है। कृतिमता या आदाव अलकावकी कोइ बू नहीं है। तुलसीदासजीने आत्मविभोर होकर छगनमगनकी सात्विकता और स्वाभाविकताका स्मरण करकेही प्रार्थना की। द्वीतीयपदमें रजोगुणात्मक वैभव बिरुदावलीका वर्णन है। अतः क्रान्तदर्शी कविने तदनुरूप रमण शब्दसे स्मरण किया। इन दोनों विशेषणोंसे उर्मिला और लक्ष्मणकी एकता तथा आत्मीयताका परिचय दिया है। जब पतिका लाड़िलापन दिखाया तो अर्द्धांगिनीका परिचयभी उन्हींके अनुरूप दिया। जब वैभव वर्णन करते है तो वैभवशालिनी रमणीके रूपमें स्मरण करते हैं।

३९ [१७४]

जयति[1]भूमिजारमनपदकंजमकरंदपरसरसिकमधुकरभरतभूरिभागी।
भुअनभूषन भानुबंसभूषन भूमिपालमनि रामचंद्रानुरागी[2]॥
जयति बिबुधेस धनदादि दुर्लभ महाराज सम्राट[3]पद[4] सुख बिरागी।

---

१ मु०, ७४ में नहीं है। २ रामचरनानुरागी–ज०। ३ सम्राट–६६। सम्राज–५१, भ०, बक्सर, ७४, दी०। संम्राज–इ०, १५, वि०। संभ्राज–रा०, भा०, बे०, मु०, डु० (टीकामें सम्राज है), वै०। ४ सुख पद–रा०, भा०, बे०, १५, इ०, ५१, ७४, डु०, वै०, मु०। सुखप्रद–भ०, दी०, बि०। पद सुख–६६।

खड्गधाराव्रत[5] प्रथम रेखा प्रगट सुद्ध मति जुवति पति[6] पेम पागी ॥
जयति निरुपधि[7] भक्ति भाव जंत्रित हृदय बंधुहित चित्रकूटाद्रिचारी ।
पादुका नृप सचिव पुहुमि पालक परम धर्म[8] धुर धीर बर बीर भारी ॥
जयति संजीवनी समय संकट हनूमान धनु बान महिमा बखानी ।
बाहुबल बिपुल परमिति[9] पराक्रम अतुल गूढगति जानकीजानि[10] जानी ॥
जयति रन अजिर गंधर्बगन गर्ब्बहर फेरि[11] किये रामगुनगाथ[12] गाता ।
मांडवी चित्तचातक नवांबुद बरन[13] सरन तुलसीदास अभय दाता ॥

शब्दार्थ–रसिक=रसग्राही, रस लेनेवाले, प्रेमी । भूरि=बहुत बड़ा, समूह । भागी=भाग्यवाले । रामचंद्रानुरागी=रामचंद्र+अनुरागी । भुवन=भूषन–पद २६ देखिये । बिबुधेस [बिबुध (देवता) + ईश] इंद्र । धनदादि=धनद (कुबेर) + आदि । सम्राट (सं० सम्राज) = चक्रवर्ती महाराज । पद २७ 'राम सम्राज सोभा सहित' देखिये । पद=अधिकार। खड्गधाराव्रत='खड्ग' प्राचीनकालका एक अस्त्र है जैसा आजकल पशुबलिमें काममें लाया जाता है। तलवार इसीकी एक किस्म हैं। खड्गधारा=तलवारकी धार अर्थात् अत्यन्त कठीन । जैसे तलवारकी धारपर पैर रखकर चलना कठिन है, पैरही कट जायगा, वैसा (व्रत) । यथा 'ज्ञान क पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होई नहिं बारा ॥ (उ०) ' 'एहि कर नाम सुमिर संसारा । तिय चढ़िहहिं पतिव्रत असि धारा ॥'(बा० ६६) प्रथम रेखा=प्रथम गणना। यथा, 'पतिदेवता सुतीय महं मातु प्रथम

५ व्रत–६६, रा०, बे०, ह० । व्रतं–भा० । व्रति–१५ । व्रती–५१, ७४, आ० । ६ पति–६६, १५, ५१, ७४, आ० । वत–भा० प्र०, ह० । ७ निरूपाधि–औरोंमें । ८ धर्म धुरधीर बर–६६, रा०, ५१, आ० । धीर गंभीर बर–भा०, बे०, प्र०, ज०, ह०, ७४ । धुरधीर गंभीर–१५ । ९ परमिति–६६, रा०, दी०, वि० । परमित–५१, ह०, भा०, बे०, ७४, ज०, मु०, १५। १० जानि–६६, भा०, बे०, मु०, भ०, वि०। जान–डु०, बे०, ज०, १५, ७४ । ११ फिरि–५१ । फिर–बै०, मु०, वि० । १२ गान–ज० । १३ चरण–बे० ।

तव रेख।' (बा०) पेम=प्रेम। पागना=शीरा अर्थात् मीठी चाशनीमें सानना वा लपेटना। यथा, 'आखर अरथ मंजु मृदु मोदक प्रेम पाग पागि है।' प्रेम रसमें पागना=प्रेममें अत्यंत डूब जाना, तन्मय हो जाना। प्रेम पागी=प्रेममें डूबी रहती है, सदा संयोग किये रहती है। भाव=भावना, विचार। विषयोंको छोड़कर बार बार ध्येय वस्तुका ध्यान करना 'भावना' है। जंत्रित=(यंत्रित) ताला लगा हुआ; बंद किया या बाँधा हुआ, जकड़ा हुआ (दी०)। यथा, 'लोचन निजपद जंत्रित प्रान जाहिं केहि बाट।' (सुं०) भक्तिभाव जंत्रित = जिसपर भक्तिभावका ताला हुआ हो। भक्तिभावसे परिपूर्ण (हृदय)। चित्रकूटाद्रिचारी=चित्रकूट+अद्रि (पर्वत)+चारी (चलनेवाले)। पादुका=खडाऊँ। सचिव=मंत्री। पुहुमि (सं० भूमि। प्राकृत० पुहवी)=पृथ्वी। धुर=धुरा, केंद्र। संजीवनी=यह एक बूटीका नाम है जो लक्ष्मणजीको जिलानेकेलिये लानेको हनुमानजी द्रोणागिरि भेजे गये थे। इससे शरीरपर लेप करतेही सब घाव पुर जाते हैं और शरीर स्वस्थ हो जाता है तथा इसको सुँघानेसे मूर्छा जाती रहती है। विशेष 'मानसपीयूष' में देखिये। बखानना=प्रशंसासहित वर्णन करना। परमित=सीमा। परमिति [पर (परे, बाहर, आगे बढ़ा हुआ) + मिति (परिमाण, सीमा)] हदसे बाहर, अपरिमिति। पराक्रम=पुरुषार्थ, सामर्थ्य, शक्ति। अतुल=जिसकी तौल या अंदाज न हो सके। गूढ़ गति=हृदयका गंभीर भाव, गुप्तरहस्य एवं कठिन दशा। जानि = भार्या, स्त्री। यथा, 'सो मय दीन्ह रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी।' (बा०) जानकीजानि=जानकीजी जिनकी स्त्री है। अजिर=आँगन। रन अजिर=रणांगन, रणभूमि। नवांबुद=(नव+अंबुद) नवीन श्याम मेघ। बरन (वर्ण)=रूप। फेरि=फिर, पुनः। यथा, 'दास इते पर फेरि बुलावत यों अब आवत मेरी बलैया।', 'हरे हरे हरे हेरि हँसि फेरि फेरि कहत कहानीकी लगत।' (देव०) पुनः, फेरि=फेरफार अर्थात् विमुखसे सम्मुख करके। (डु०, वै०, दी०) मांडवी=श्रीकुशध्वज महाराजकी कन्या जो श्रीभरतजीको ब्याही गयी थीं।

पद्यार्थ—श्रीजानकीरमण श्रीरामजीके चरणकमल (के अनुरागरूपी) मकरंदरसके लोभी भौरे†, अतिशय बड़भागी, त्रैलोक्यके भूषण, सूर्य कुल-भूषण (अर्थात् सूर्य कुलको भूषित करनेवाले, उसकी शोभा बढ़ानेवाले) पृथ्वीका पालन करनेवाले राजाओंमें शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीके अनुरागी (श्रीभरतजी) की जय हो ।१। देवराज इंद्र और धनके अध्यक्ष कुबेरजी आदिकोभी दुर्लभ (ऐसे) 'चक्रवर्त्ती महाराज' पदके सुखसे वैराग्यवान्, खड्गधारा समान कठिन व्रत (धारण करने) में जिनकी प्रथम लीक प्रसिद्ध है और जिनकी निर्मल बुद्धिरूपिणी कामिनी (स्त्री) श्रीराम-प्रेमरूपीपतिमें पगी हुई है, उन भरतजीकी जय हो। उपाधिरहित भक्तिभावसे परिपूर्ण जकड़े हुए हृदयवाले, भाईकेलिये चित्रकुट पर्वतपर (पैदल) जानेवाले, श्रीरामचन्द्रजीकी चरणपादुकारूपी राजाके मंत्री (रूपसे) पृथ्वीका पालन करनेवाले, परम धर्मकी धुरा और धीरोंमें श्रेष्ठ एवं परम धर्मकी धुरा धारण करनेमें बड़े धीर और भारी वीरोंमें श्रेष्ठ श्रीभरतजीकी जय हो ।३। संजीवनी लायी जानेवाले संकटके समयमें श्रीहनुमान्‌जीने जिनके बाणकी महिमा बखान की है, भारी बाहुबल और अतुलित पराक्रमकी सीमा, जिनकी गूढ़ गतिको श्रीजानकीपति श्रीराम-जीहीने जाना है, उन भरतजीकी जय हो ।४। जिन्हे रणांगण (लड़ाईके मैदान) में गंधर्वगणका गर्व हरकर फिर उनको रामगुणगाथाका गानेवाला बनाया, श्री मांडवीजीके चित्तरूपी चातकको नवीन श्याम मेघरूप और शरणागत तुलसीदासको अभय देनेवाले (श्रीभरतजी) ! आपकी जय हो ।५।

टिप्पणी—१ "जयति भूमिजारमन पदकंजमकरंद रस रसिक मधुकर" इति (क) श्रीसीताजीको ' भूमिजा ' लिखनेका यह अभिप्राय है कि उनको मानवीसृष्टि योनिजसृष्टिसे कहीं अधिक पवित्र और गौरवशालिनी प्रतीत

---

†परंपरित रूपक । दूसरा अर्थ—'स्वामीके प्रेममें पगी हुई रहती है ।' यहाँ सम अभेद रूपक हैं । तीसरा अर्थ—"पतिपरायणा निर्मल बुद्धिरूपिणी स्त्रीने 'खड्गधाराव्रत' की श्रेष्ठ रेखा प्रकट की ।"

होती थी। (ख) 'रमन' इति। ऐसी अलौकिक (आदिशक्ति) रमणीके रमण भी अलौकिक (ब्रह्म) होनेही चाहिये। क्योंकि भूमिजाके रमण समस्त ऐश्वर्योंसे संपन्न समस्त शक्तियोंसे युक्त होंगेही। ऐसे दशरथनंदन मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामही हैं जिनकी उत्पत्ति भूमिजाकी भाँति अलौकिक और उनसे कहीं अधिक पवित्र एवं आश्चर्ययुक्त है। भगवान् राम योनिज नहीं है, उत्पन्नभी नहीं हुए। वे तो प्रगट हुए, बालरूपसे नहीं, निजरूपसे। 'भये प्रगट कृपाला परम दयाला' इत्यादि। अतः भूमिजारमण साङ्गोपाङ्ग यथार्थ एवं युक्तिसंगत है। (दे० द० शर्मा)

(ग) 'भूमिजारमणपदकंज' इति। (पृथ्वीकी कोखसे उत्पन्न हुई सीताजीके पति) से जनाया कि श्रीभरतजी सगुण ब्रह्म रामके उपासक हैं। भूमिजारमणसे भूमिजा (आदिशक्ति) सहित भगवान् रामके उपासक जनाया और पदकंजमकरंदरस रसिक' से सेवक भाव अर्थात् दास्यरसके उपासक जनाया। यथा 'सिरभर जाऊँ उचित अस मोरा। सब ते सेवक धरम कठोरा।', 'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।'

(घ) 'पदकंजमकरंद रस रसिक मधुकर' इति। यह पद आत्मसमर्पणकी उत्कृष्ट भावनाका द्योतक है। भ्रमर कमलके मकरंदको चखकर आत्मविस्मृत हो जाता है। उसे आत्मअनात्मका ज्ञान नहीं रहता। वह पागलप्रेमी यहां तक आत्मविभोर बन जाता है कि खिले हुए पंकजकोशमें दिनभर मकरन्द पान करता है। सूर्यास्त होनेपर, कोशके संकुचित होनेपरभी हटनेकी इच्छा नहीं करता और अन्तमें पंकजकोशके अंदरही बन्दी बनकर रहनेमें सुखी रहता है। यही उसके जीवनकी क्रीड़ा है, लीला है और भक्तिभावयंत्रित हृदयकी क्रियाकी पराकाष्ठा है। श्रीरामचरणचंचरीक महात्मा भरतजी भूमिजारमणके पदकंजमकरंदके लोभी हैं, रसीले रसिक हैं। वे तो लौकिक भ्रमरसे कहीं अधिक प्रगतिशील हैं। लौकिक भ्रमर अनेक फूलोंका मकरंद पीता है। उसकी बुद्धि व्यभिचारिणी होती है। किन्तु भैया भरत एकनिष्ठ भोले भक्त हैं। इनकी अवस्थामें सदैव त्याग और अनुरक्तिकी पराकाष्ठाही दिखायी पड़ती है। इन्होंने

जिन पदपंकजोंके मकरंदरसिक बनकर आत्मसमर्पण किया, वह इन्हींके योग्य है। तभी तो 'भूरिभागशाली' बने। (दे० द० शर्मा)

(ङ) कमलमें मकरंद होता है जिसे उसका लोभी भौंरा पान करता है। श्रीरघुनाथजीके पदकमलका मकरंद अनुराग है। भरतजी अनुरागरूपी मकरंदरस ('रस'का अर्थ जल और प्रेम दोनोंही है।) के रसिक हैं। उसीको निरन्तर पान करते रहते हैं, उनके प्रेममें मग्न रहते हैं।

२ (क) 'भूरिभागी' इति। चरणानुरागी होनेसे 'भूरिभागी' कहा। यथा, 'भूरि भाग भाजन भएहु मोहि समेत बलिजाउँ। जौं तुम्हरे मन छाड़ि छल कीन्ह रामपद ठाउँ॥' (अ०), 'अतिसय बड़ भागी चरनन्हि लागी' (अहल्या), 'अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंद अनुरागी॥' (उ०), 'परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥' (सुतीक्ष्णजी), इत्यादि। तथा, 'सकल सुमंगलमूल जग रघुबर चरन सनेहु॥ सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरिभाग को तुम्हहिं समाना॥' (श्रीभरद्वाजवाक्य, श्रीभरतजीप्रति।)

(ख) 'भुवन भूषन', 'भानुबंसभूषन' और 'भूपालमनि' ये सब श्रीरामचंद्रजीके विशेषण हैं जो अगणित स्थलोंपर उनकेलिये आये हैं। इन विशेषणोंसेभी भरतजीको सगुण ब्रह्म रामका उपासक होना जनाया जो रघुकुलमें अवतीर्ण होकर चक्रवर्त्ती महाराज और भुवनमात्रके भूषणरूप हुए।

(ग) 'बिबुधेस धनदादि दुर्लभ' इति। इस चक्रवर्त्ति राज्यके ऐश्वर्य, भोगविलास और संपदाको देखकर, इंद्र, कुबेर आदि सिहाते थे कि जिनके समान भोगविलास और धनसंपत्ति संसारमें नहीं है। कुबेर धनाध्यक्षही हैं। भोगविलासकेलिये इंद्रकी उपमा दी जाया करती है। यथा, 'सत सुरेस सम बिभव बिलासा।' 'सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलासा' (लं०), 'अमरावति जसि सक्र

निवासा।' (बा०) परन्तु श्रीदशरथजी महाराजके राज्यसुखके विषयमें कहा गया है कि 'अवधराज सुरराज सिहाहीं। दसरथ धनु सुनि धनद लजाहीं।" ऐसे राज्यके चक्रवर्त्तिपद और उसके सुखकाभी त्याग श्रीभरतजीने किया है। ऐसे राज्यकोभी उन्होंने 'शोक-समाज' समझा है। यथा, 'चलत पयादेहि खात फल पिता दीन्ह तजि राज।', 'सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सियपद बिनु देखे।', 'बादि मोरि सब बिनु रघुराई।' जो राज्यको शोकसमाज समझेगा वह उसे कब ग्रहण करेगा? इसी तरह संसारको अनित्य और शोकका घर समझ कर लोग उससे विरक्त हो जाते हैं। श्रीभरतजी ऐसे दुर्लभ राज्यके चक्रवर्ती राजाके पदके सुखसे उदासीन हो गये। यथा, "भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिनु तूरी॥ तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥" 'भूरि भागी', 'रामचंद्रानुरागी' कहकर 'सम्राटपदसुख बिरागी' कहनेका भाव कि 'रामानुरागी' हीके ये लक्षण हैं। यथा, 'रमाबिलास राम अनुरागी। तजत बमन इव जन बड़भागी॥' (अ०)

३ 'खड्गधाराव्रत प्रथम रेखा प्रगट' इति। इस विशेषणको देकर श्रीभरतजीकी उपासनाका अनन्य पातिव्रत्य दिखाया। सती स्त्रियोंके पातिव्रत्य धर्मकोभी खड्गधाराव्रत कहा है। यथा, 'एहि कर नाम सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असि धारा॥' (बा०) वैसेही यहाँ 'खड्गधाराव्रत' पद देकर अनन्य उत्तम उपासना धर्मव्रतको परम सतीके पातिव्रत्यके समान जनाया। इस व्रतके धारण करनेवालोंमें ये श्रेष्ठ हैं। ऐसे कठिन भागवत 'सेवक स्वामी' धर्मको सुखपूर्वक, प्रसन्नतापूर्वक निबाह ले जानेमें इनके समान येही हैं। मानसमें कविने कहाभी है, "सुनि व्रत नेम साधु सकुचाही। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥" श्रीरामप्रेमको पति और इनकी बुद्धिको स्त्री कहकर उत्तम पतिव्रताके समान जनाया। गीतावलीके "निगम अगम मूरति महेस मति जुवति बराय बरी।" इस पदसे मिलान कीजिये। विशेष 'भक्ति

भाव जंत्रित हृदय ' टि० ४ में देखिये। श्री हनुमान्‌जीभी मुक्तकंठसे श्रीभरतजीके संबंधमें (गीतावलीमें) ऐसाही कह रहे हैं, "**होतो नहिं जौ जग जनम भरतको। तौ कपि कहत कृपानधारा मग चलि आचरन चरत को ॥** " 'मति जुवति पति पेम' अर्थात् जैसे पतिव्रता मन कर्म बचनसे अपने पतिके प्रेममें पगी रहती है वैसेही इनकी शुद्ध बुद्धि श्रीरामप्रेममें पगी रहती है। 'प्रथम रेखा प्रगट' को दीपदेहरी मानकर इसका अर्थ योंभी कर सकते हैं, "जितनी पतिप्रेमपागी (अर्थात् पतिव्रता) शुद्ध बुद्धिरूपिणी स्त्रियाँ हैं, उनमें इनकी शुद्ध मति युवतिकी प्रथम गिनती है।" प्रथम रेखा, श्रेष्ठ गणना यह मुहाविरा है। " खड्गधारा व्रत प्रथम रेखा प्रगट सुद्ध मति जुवति पति प्रेम पागी " इति। प्रायः सभी टीकाकारोंने इस पदांशकी टीकामें भरतजीकी शुद्धमति युवतीको श्रीरामचन्द्रजीमें (पति) अनुरक्त लिखा है। यहाँ पातिव्रतका आदर्श बताया है। गीतावलीमें आये हुए " **निगम अगम मूरति महेस मतिजुवति बराय बरी** " परभी हमने विचार किया। किन्तु टीकाकारोंके ऐसे अर्थपर कुछ न कुछ सन्देहकी गुंजाइश रहही जाती है। भरतजीकी शुद्ध बुद्धि है। वह एक युवती नायिकाके तुल्य है। श्रीरामजी श्रीभरतजीके ज्येष्ठ भ्राता है। उनके सर्वस्व है सही; किन्तु लोकव्यवहारमें छोटे भाईकी युवती मति यदि बड़े भाई या अन्य किसी इष्टपर आसक्त हो तो क्या उचित है? पातिव्रत्यधर्म तो तब कहा जायगा, जब वह जिसकी हो उसीपर आसक्त हो। दूसरेको पति मानकर उसपर दूसरेकी नायिकाको आसक्त कहकर पातिव्रत धर्मकी परिभाषा बदलना है। महाभाष्यमें महर्षि पतञ्जलिने लिखा हैं, **यद्यपिशास्त्रं लोकविरुद्धं नाचरणीयम्** ' अर्थात् शास्त्र यदि लोकविरुद्ध समझ पड़े तो उसे लोकमें आचरण न करना चाहिये। धर्मशास्त्रमेंभी लिखा है, ' **बहिरुभयथा स्मृतेराचाराच्च** ।

इसके अतिरिक्त साहित्यिक दृष्टिसेभी यह महान् दोष है। यदि यह कहा जाय कि 'यह भक्ति मार्गकी पद्धति है, सखीभावके उपासक भगवान्‌को अपना पति मानकर स्वयं स्त्रीकी कल्पना करते हैं'।

ऐसी दशामें समष्टि और व्यष्टिरूपसे विचार करना पड़ेगा। सखी भावका उपासक कुछभी बन जाय। ऐसे भक्तकी आलोचनाका यहाँ प्रसंग नहीं है। क्योंकि वह सर्व तो भावसे अपने स्त्रीत्वका अनुभव करता है। पुरुषत्व भावना रहतीही नहीं। किन्तु यहां भक्त भरतमें पुरुषोचित, वीरोचित सभी भाव विद्यमान् हैं। उनकी शुद्ध बुद्धिको उनकी पत्नी बतलाया गया है। निःसन्देह रूपक लाजबाब है। किन्तु शुद्ध निरुक्तिपरभी दृष्टिपात करना चाहिये। सर्व प्रथम हम 'बुद्धि' परही विचार करें। वेदान्तशास्त्रके अनुसार अन्तःकरणकी दो वृत्तियाँ होती हैं। एक बुद्धि, दूसरा मन। निश्चयात्मक अन्तःकरण वृत्तिका नाम बुद्धि है और संकल्पविकल्पात्मक वृत्तिका नाम मन है। चित्त और अहंकार दोनोंही बुद्धि और मनके अन्तर्गत दो वृत्तिमात्र हैं। गोस्वामीजीने श्रीभरतजीकी बुद्धिको शुद्ध कहकर निश्चयात्मक वृत्तिका संकेत किया है। उनकी बुद्धि शुद्ध थी, सात्विक थी और थी अव्यभिचरिणी। भक्तवर श्रीभरतके हृदयकी अनुगामिनी बुद्धि थी, अतः पति प्रेम पागी थी। सारांश यह कि बुद्धिपर भरतजीका अंकुश था, भरतपर बुद्धिका नहीं।

'युवती'से परमोत्कृष्टता, सौन्दर्य और निर्मलता तथा लोकप्रियता टपकती है।

बुद्धिका यौवन ज्ञान है। उसकी सुन्दरता निर्मलता हैं। भक्तवर भरत ज्ञानी भक्त थे। वे समय कुसमय विचारकरही कार्य करते थे। उनके ज्ञानी होनेका प्रबल प्रमाण चित्रकूटदरबारमें प्राप्त होता है। जब मर्यादा पुरुषोत्तम सारा निर्णय उन्हींके उपर रख देते हैं, तब समस्त पुरवासी अभीष्ट सिद्धि समझ हर्षित होते हैं कि भरत भगवान्को लौटानेही आये हैं, अब काम बना किन्तु ज्ञानसम्पन्ना भरतकी बुद्धि नीरक्षीरविवेक करके नया रेकार्ड कायम करती है।

अस्तु, अब खड्गधाराव्रतकीभी संगतिपर विचार कीजिये। यह वेदान्त प्रिय और प्रयुक्त वाक्य है। खड्गधारासे ज्ञानके पन्थका सादृश्य दिया जाता है। गोस्वामीजीनेभी 'ज्ञानके पंथ कृपानकी धारा' लिखा

है। ज्ञान बुद्धिजन्य विचार है। भरतजी ज्ञानी थे। अतएव उनकी बुद्धिको शुद्ध और युवती कहा हैं। अब अर्थभी देखिये। 'बिबुधेस धनदादिदुर्लभ महाराज सम्राटपद सुखविरागी (भरत) जयति। (जिनकी) पतिप्रेमपागी शुद्धिमति युवति खड्गधारा व्रत (की) प्रथम रेखा प्रगट (की)।' अर्थात् 'श्रीभरतजीकी जय हो जिनकी अनुरागिणी पति परायणा निर्मल बुद्धि रूपी युवतीने (कामिनी) ज्ञानमार्गके अनुष्ठानकी श्रेष्ठरेखा (गणना) प्रगट की।' (देवदत्त शर्माजी)

पं० देवदत्तशास्त्रीजी लिखते हैं 'भरतजीको स्तुतिमें प्रधानतया सुयोग्य शासक होनेकी स्पष्ट झलक है। तुलसीदासजीके जीवनकालमें सुयोग्य शासनका सर्वथा अभाव रहा जिसके कारण धर्म और समाज अव्यवस्थित था। तुलसीदासजी धार्मिक और सामाजिक कवि भक्त थे। वे भारतीय समाजमें रामराज्यकी अभिलाषा रखते थे। इसलिये विश्वभर्त्ता भरतसे दीनार्त्त होकर अभय और सुव्यस्थित होनेकी कामना करते हैं।'

४ 'जयति निरुपधि भक्ति भाव जंत्रित हृदय' इति। (क) निरुपधि, बाधारहित अर्थात् गुरु, माता, पिता आदिकी तथा लोकपरलोक धर्मकी चिन्तारूपी बाधासे रहित। यथा, 'गुरु अवमान दोष नहिं दूषा।', 'डरु न मोहि जगु कहइ कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू॥', 'नाहिंन डरु बिगरइ परलोकू।', 'जानहु राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥ सीतारामचरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे॥' जितनीभी बाधाएँ संसारमें प्रेम छुडानेकेलिये हो सकती हैं उन सबसे रहित निष्काम भक्ति, प्रेमकेहीलिये प्रेम 'निरुपधि भक्ति भाव' है।

(ख) ये सब चरित क्रमसे कहे गये, जैसे-जैसे हुए हैं। भरतजीका हृदय 'भक्तिभाव यंत्रित' है यह प्रथम प्रथम श्रीअवधकी सभामें प्रगट हुआ। ऐसे 'भक्तिभाव यंत्रित हृदय' से वचन निकले। इसीसे वे 'भरत वचन सब कहुं लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे॥' इस भक्तिभावका विशेष परिचय उनके अंतिम वचनोंमें मिलता है।

"डरु न मोहि जगु कहइ कि पोचू। परलोकहु कर नाहिंन सोचू॥ आपनि दारुन दीनता कहउं सबहिं सिरु नाइ। देखे बिनु रघुनाथ पद जियकै जरनि न जाइ॥ आन उपाइ मोहि नहिं बुझा। को जिय कै रघुबर बिनु बुझा॥ एकहि आंक इहै मन माहीं। प्रातकाल चलिहउं प्रभु पाहीं॥ आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस॥" इन बचनोंमें आत्मनिवेदन, रक्षामें विश्वास आदि शरणागतिके लक्षण और प्रेमही प्रेम भरा हुआ है। 'प्रेम भरा मन निज गति छूछा।' इसीपर सबके सब भरतजीको कहते हैं कि 'रामप्रेम मुरति तनु आही'। यही 'भक्तिभाव जंत्रित हृदय' है।

भरद्वाजजीकाभी यही मत है। यथा, 'तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु रामसनेहू॥' उनका हृदय भक्तिभावसे ऐसा यंत्रित है कि सभीकी बुद्धि यंत्रित हो जाती है। यथा, 'सभा राउ गुर महीसुर मंत्री। भरत भगति सबकै मति जंत्री॥ (अ० ३०२)

(ग) अवधकी सभामें प्रातःकाल चित्रकूटको प्रस्थान करना निश्चय हुआ, इसीसे 'भक्तिभावजंत्रित हृदय' कहकर उसके बाद 'बंधुहित चित्रकूटाद्रिचारी' अर्थात् श्रीरामजीको मनानेकेलिये जाना कहा। आगे पैदल और नंगे पैर चले हैं, यह 'चारी' से जनाया। यथा, 'चलत पयादेहि खात फल पिता दीन्ह तजि राजु। जात मनावन रघुबरहिं भरत सरिस को आजु॥' वहांसे चरणपादुका लेकर लौटे, उनको सिंहासनपर पधराया और आप चँवर लेकर सेवा करने लगे। जो कार्य आ पड़ता उसे आज्ञा लेकर करते थे। अतः 'पादुका नृप सचिव' कहा। इस तरह चौदह वर्षतक प्रजाका पालन किया। पादुकाको राजासिंहासनपर पधराकर आप तपस्वी वेषसे नंदिग्राममें कठिन व्रत धारण कर रहने लगे जिसका कुछ वर्णन श्रीरामचरितमानसमें है।

५ 'परम धर्म धुर धीर' इति। यथा, 'सिर भरि जाउं उचित अस मोरा। सब ते सेवक धरम कठोरा।' इस परम धर्मके धारण करनेमें इनके समान येही हैं। इनका पूरा चरित्र सेवककेलिये 'उपदेश' है। श्रीभरद्वाजजी इनको इस धर्मका आचार्य मानते हैं। यथा, "तुम्ह कहं

भरत कलंक यह हम सब कहं उपदेसु। रामभगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु॥" "रामभगत अब अमिय अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसु धाहू॥" आपके उपदेशका सारांश यह है, 'स्वामि-धरम स्वारथहि बिरोधू। बइरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू॥' 'जो सेवक साहिबहि सकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥' 'सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई॥' तथा 'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।'

श्रीजनकमहाराज श्रीभरतजीके संबंधमें अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं, 'साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥', 'परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुं मनहुं निहारे॥' 'खड्गधाराव्रत', 'पादुकानृप सचिव पुहुमिपालक', 'परमधर्म धुर धीर बर'। इति। यह प्रसंग विशेषकर 'आयसु होइ त रहउं स नेमा' अ० ३२२ से लेकर कांडकी समाप्तितक है और गीतावलीमें इसका वर्णन निम्नपदमें है। "जब ते चित्रकूट ते आए। नंदिग्राम खनि अवनि डासि कुस पर्नकुटी करि छाए॥ अजिन बसन फल असन जटा धरि रहत अवधि चित दीन्हे। प्रभुपद प्रेम नेम व्रत निरखत मुनि नमित मुख कीन्हे॥ सिंहासन पर पूजि पादुका बारहि बार जुहारे। प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे॥ तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज त्यों त्यों प्रीति सवाई।' मानसमें कहा है, 'सिंहासन पर प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि।' 'नित पूजन प्रभु पांवरी प्रीति न हृदय समाति। माँगि माँगि आयसु करत राजकाज बहु भाँति॥" श्रीरघुनाथजीने कहा था कि 'पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।' अतः कविने वही 'पुहुमि' शब्द यहां दिया है।

६ यहां यह शंका लोग करते हैं कि ऐसे प्रेमीके कहनेपरभी रघुनाथजी न लौटे, पादुकाएँ दीं। यह यशमें न्यूनता आती है। पर यह समझकी भूल है। भरतजीकी रुचिही रघुनाथजीने रक्खी है। भरतजीने कहा है, 'मोरे सरन रामकी पनहीं'। अतएव 'पनही' अर्थात् पादुका उनकी रक्षाकेलिये दीं। भगवानके सब वस्त्रभूषण दिव्य हैं, चेतन हैं, भगवद्रूपही हैं। पादुकासे बराबर आज्ञा मिलती थी, जैसे मुद्रिकाने सीताजीसे

सब हाल पूछनेपर कहा है और हनुमान्‌जीके रूपके अनुसार वह छोटी बड़ीभी हो जाती रही है। दूसरे भरतजी अपना सेवकका परम धर्म यही मानते हैं कि जिसमें स्वामीका धर्म रहे, स्वामीको संकोच न हो, स्वामीकी जो मर्ज़ी हो वही करना और यही उन्होंने रामजीसे कहाभी है और इसीमें वे प्रसन्नभी हैं। पादुका पानेपर उन्हें वही सुख हुआ जो रामजीके लौटनेसे होता।

७ 'धीर बर' 'बर बीर भारी' इति। (क) ऐसे कठिन धर्मके धारण करनेमें टिक जाना सबका काम नहीं। एवं विपत्ति पड़नेपर श्रीअवध और चित्रकूटमें ऐसा भाषण ऐसे बड़े समाजमें कौन कर सकता कि जिसको सुनकर "**सभासहित मुनि भयउ बिदेहू**"॥ "**भरतमहामहिमा जलरासी। मुनिमति ठाढ़ि तीर अबला सी॥ गा चह पार जतनु हिय हेरा। पावति नाव न बोहित बेरा॥ अउर करहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई॥**", "**सोकमगन सब सभा खभारू**"। "**भरत बचन सुनि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥ असमंजस सब अवधनिवासी। प्रमुदित मुनि तापस बनबासी॥ चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची।**" "**भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ॥ सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे॥ ज्यों मुख मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अद्भुत बानी॥**' (अ. २९३), **भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥ रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। मनमहुँ सराहत भरतभायप भगतिकी महिमा घनी॥ भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से।**" तथा "**सभा राउ गुर महिसुर मंत्री। भरतु भगति सब कै मति जंत्री॥**" अतः 'धीर बर' कहा।

(ख) इस चरितके बाद श्रीभरतजीका दूसरा चरित्र तब देखनेमें आता हैं जब मेघनादकी शक्तिसे लक्ष्मणजीके घायल होनेपर हनुमान्‌जी विशालरूप धारण किये हुए विशाल पर्वत अर्द्धरात्रिके पश्चात् लिये हुए श्रीअवधके ऊपरसे निकले थे। गीतावली ओर हनुमन्नाटकमें से चरित्र

विशेषरूपसे दिया है। उससमय श्रीसुमित्राजीके घोर स्वप्नकी शांतिकेलिये घृतका हवन मुनि करा रहे थे और भरतजी उस समय धनुषबाण धारण करके (मुनिकी आज्ञासे) बैठे होम कर रहे थे। पूर्णाहुतीके ठीक अवसानपर वे वहाँ पहुँचे थे। यह मानकर कि कोई राक्षस पुरीके नाशकेलिये पर्वत लेकर आया है, हो न हो दुःस्वप्नका मूलही होगा; अनुमान मात्र है धोखेमें कोई और न मारा जाय भरतजीने बिना फलका बाण चलाया। औरभी अनेक कारण बिना फलके बाण चलानेके हैं जो 'मानसपीयूष' में दिये गये हैं। **'देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि। बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥ लं० ५७॥'** यह वीरताका चरित्र है। अत: 'बीर भारी' कहा। क्योंकि हनुमान्‌जी ऐसे वज्रांग महाबलीकोभी इनका बाहुबल मानना पडा। अतः 'भारी' कहकर वह चरित आगे कहते हैं।

'संजीवनी समय संकट' इति। संकटसमयका बल यह है कि भरतजीके बिना फलवाले बाणसे बाण लगतेही हनुमान्‌जीको मूर्छा हो गयी। **'परेउ मुरछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥'** (लं०) पुनश्च यथा हनुमन्नाटके, (१३।२५) **"तदा भरतबाणेन भिन्नौ हनुमान् भरत दोर्दण्डमुक्तकांड प्रचंडप्रहारमूर्छितो। विधिलिखिताक्षरपंक्ति लोपात्प्राणान्परित्यक्तुमिच्छन्। पुंखावशेष भरतेषु ललाटपट्टो हा राम लक्ष्मण कुतोऽहमति ब्रुवाणः॥ संमूर्छितो भुवि पपात गिरिं दधानो लांगूल शेखरुहेणसकेसरेण॥"** उससमयभी भरतजीके बाणसे घायल होकरभी हनुमान्‌जी भरजीके भुजदंडोंसे युक्त हुए धनुषके प्रचंड प्रहारसे मूर्छित हो गये और प्रारब्धके लिखे हुए अक्षरपंक्तिके नाशसे प्राण त्यागनेकी इच्छा करने लगे। पुंखमात्र शेष बचे हुए भरजीके बाणसे ललाटपट्टमें बिंधे हुए हनुमान्‌जी, **'हा राम! हा लक्ष्मण! मैं कहाँ हूँ'**, यह कहते हुए, केसरसहित लांगूलके अग्रभागमें द्रोणाचलको धारण करते हुए, मुर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडे। पुन: यथा गीतावल्याम्, **"परयो कहि राम पवन राख्यो गिरि पुर तेहि तेज पियो है।"** उस बाणने उनका सब तेज पी लिया।

श्रीहनुमन्नाटकके मतानुसार भरतबाहुबलकी जिज्ञासाके निमित्त अब हनुमान्‌जीने उनसे कहा कि मैं थक गया हूँ, मुझे पर्वत समेत वहाँ पहुँचाओ। उनके वचन सुनकर भरतजीने प्रत्यंचा आरोपण कर पर्वत सहित उनको बाणपर चढ़ाकर प्रत्यंचा धनुषमें लगा जब छोड़कनेकेलिये (धनुषको) थामा तभी झट कानतक खींचा जिससे भगवान् मारुति (सफलतासे) सन्तुष्ट और (पराक्रम देख) परम विस्मित हुए। बाणसे कुशलपूर्वक उतरकर उन्होंने भरतके बाहुबलकी प्रशंसा और कृतज्ञताद्वारा (मानसिक) पूजा की। श्रीहनुमान्‌जी (अवधसे लंकामें अपने) शिविरको ऐसे वेगसे पहुँचाये कि जैसे दरिद्रका मन (मनोरथ करते हुए) दिग् दिगन्तको पहुँच जाता है।*

गीतावली लं० ११ मेंभी अभिमानसे तीरपर चढ़ना कहा है। यथा, "**कुधर सहित चढ़ो बिसिष बेगि पठवौं सुनि हरि हिय गर्व गूढ़ उपयो है ॥३॥ तीर ते उतरि जस कह्यो चहै गुन गनन जयो है।**" हनुमन्नाटकके श्लोकका ऐसाभी अर्थ किसी किसीने किया है और मानसमें तीरपर चढ़ना नहीं कहा है। अभिमान आतेही वहीं दब जाता है।

९ यह बल 'संकट समय' का है। जब भरत और पुरवासी दुःस्वप्नके कारण शोचमें पड़े थे ऐसे समयका यह पराक्रम है और जब स्वस्थचित्त होगा तबका पराक्रम कौन जाने? रामजीही जानते हैं। 'समय संकट' का यहभी अर्थ ले सकते हैं। यह पद श्लेषार्थी है। हनुमान्‌जीके मूर्च्छित होनेपर भरतजी बहुत दुःखी हुए। फिर सीताहरण और शक्तिका हाल सुनकर तो प्रेमवश अत्यन्तही दुःखी हो गये। ऐसेमेंभी धीरज रखकर इनको बाणपर चढ़ाकर रघुनाथजीके पासही पहुँचानेका काम किया।

---

*"श्रुत्वेति तस्य वचनं भरत शराग्रे साद्रि कपिं समधिरोप्य गुने नियोज्य। मोक्तुं दधे झटिति कुंडलिनं चकार तुष्टावतं परम विस्मयमागतः सः ॥२९॥ उत्तीर्य बाणात्कुशलं गृहीत्वा संपूज्यबाहुं भरतस्य वाग्भिः। मनो दरिद्रस्य यथा दिगन्तं तथा हनूमाच्छिबिरं जगाम ॥१३।३०॥"

अतः 'धीर बर' और 'बीरभारी' कहा। 'जानि कुअवसर मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलवीरा॥'

बाबू शिवप्रकाशने 'संकट समय' का अर्थ यह किया है कि इस समय श्रीरामविरहके कारण अत्यंत क्लेश है, शरीर दुर्बल हो गया है। 'देह दिनहि दिन दूबरि होई' सब भोग छूटे हुए हैं। उससमयका यह बल 'सींक बाणका है।

१० 'धनुष बान महिमा बखानी' इति। यथा, 'सपूज्यबाहुं भरतस्य वाग्मिः'। 'श्रान्तोऽहमित्यथ गिरिं नयतं कुमारं वाक्यं जगाद हनुमान्भरतं सरोषः।' (हनु० १३।२७) मैं थक गया, पहुँचनेको असमर्थ हूँ। 'भरत बाहुबल सील गुन प्रभुपदप्रीति अपार। मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥' लं० ५९॥, एवं गी० लं० ११ यथा, 'तीर ते उतरि जस कह्यो चहै गुन गगन जयो है। धन्य भरत करत भयउ मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है। यह जलनिधि खन्यो मथ्यो लंघ्यो बाँध्यो अचयो है। तुलसीदास रघुबीर बंधु महिमा को सिंधु तरिको कपि पार गयो है॥

इस प्रसंगमें बाहुबल और पराक्रम वा प्रतापका वर्णन है। जैसे मारीचको बिना फरका बाण मारा गया था उसपर मंदोदरी कहती हैं, 'बान प्रताप जान मारीचा' यह प्रताप है। वही यहाँ 'धनुषबानमहिमा' के 'महिमा' शब्द से सूचित किया है। इसीको अगले चरणमें 'पराक्रम अतुल' कहा है। बाणपर श्रीहनुमान्‌जीको चढ़ाकर पर्वतसहित उन्हें उठाकर लंका निमिषमात्रमें पहुँचा देना, यह बाहुबल और पराक्रम दोनों हैं। यही नहीं किन्तु 'पठवहुँ तोहि जहँ कृपानिकेता' यह अतुल महिमा और अपरिमित पराक्रम है। अतः 'महिमा बखानी' कहकर 'बाहुबल अतुल' कहा। इनके अतुल बल पराक्रमको तो किसीने देखाही नहीं और न जाना। उसे तो केवल रघुनाथजीही जानते हैं, वेभी कह नहीं सकते। बाणपर चढ़नेकी बात कहते समय कविने इनको 'बलबीर' कहा है। 'पुनि कपिसन बोले बलबीरा'। और हनुमान्‌जीने 'तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहौं नाथ तुरंत॥' यह स्वयं भरतजीसेही कहा है।

पाश्चात्य एवं अमरीकाके महाास्त्रोंके निर्माणमें भी जानसे लगे हुए लोगोंको श्रीभरतजीके बिना फलके बाणकी महिमापर विचार करना चाहिये। V 2 (वी टु) वेपन इसके सामने हेच है।

११ 'गूढ़ गति जानकी जानी' इति। इसके प्रमाण ऊपर बहुत आ चुके हैं। श्रीजनकमहाराज, गुरु श्रीवशिष्ठजी, देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सरस्वती इत्यादिभी उनको नहीं जान सकते। दूसरा कौन जानेगा? एकमात्र रघुनाथजी जानते हैं। 'हरिहरहि हरता बिधिही बिधिता श्रियहि श्रियता जेहि दई सो जानकीपति' (पद १३५)। श्रीजनकजी कहते हैं कि "भरत अमित महिमा सुनु रानी। 'जानहिं राम न सकहिं बषानी' और श्रीरामजीका बचन है, 'तात तुम्हहिं मैं जानऊँ नीके। करऊँ काह असमंजस जीके"। कविभी कहते हैं कि "आगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मन, बिधि हरि हरको॥" (अ०) और स्वयं भरतजीके वचन हैं कि 'आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा (अ०)

श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण और श्रीसीताजीकी गतिके विषयमें दोहावलीमें कवि कहते हैं "हित उदास रघुबर बिरह बिकल सकल नरनारी। भरत लषन सिय गति समुझि प्रभुचष सदा सुबारि॥२०१॥' 'जानी राम न कहि सकै भरत लषन सिय प्रीति। सो सुनि गुनि तुलसी कहत हठत सठता की रीति॥२०३॥' 'सब बिधि समरथ सकल कह सहि साँसति दिन राति। भलो निबाह्यो सुनि समुझि स्वामिधरम सब भाँति॥'

दासकी समझमें गतिमें बल, पराक्रम एवं 'भरत रहनि समुझनि करतूति। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती' इत्यादि सबकी दशाओंका समावेश है जिसे 'बरनत सकल सुकवि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाहीं' (अ०) *

---

*'गूढ़ गति' के भावार्थान्तर–१ रा० त० बो० अर्थात् हृदयका गुप्त अभिप्राय जनकादिकोभी अगम्य है।

२ वै० पराक्रम अर्थात् शक्ति और बल बुता जैसा अन्तरमें गुप्त है सो रघुनाथजीही जानते हैं।

'महिमा बषानी' और 'गुढ़गति जानकी जानि जानी' इति । गीतावलीमें हनुमान्‌जीका तीरसे उतरनेपर महिमाका बखान इस प्रकार वर्णित हैं, 'हो तो नहि जौ जग जनम भरतको । तौ कपि कहत कृपानधार-मग चलि आचरन चरतको ॥१॥ धीरज धरम धरनिधर धरहु ते गुरु धुर धरनि धरतको । सब सद्‌गुन सनमानि आनि उर अघ औगुन निदरतको ॥२॥ सिवहु न सुगम सनेह रामपद सुजननि सुलभ करतको । सजि निज जस सुरतरु तुलसी कहुँ अभिमत फरनि फरतको ॥३॥ (गी० लं०)

१२ 'नर अजिर गंधर्वगनगर्बहर' इति । वाल्मी रा. उ. सर्ग १००-१०१ में यह कथा इस प्रकार पायी जाती है कि एक बार भरतजीके मामा केकयनरेश युधाजितने एक अपने गुरु गर्गकुलमें उत्पन्न अङ्गिराजाके पुत्रको भेट सहित श्रीरामचंद्रजीके पास भेजा और यह संदेशभी कहला भेजा कि "गंधर्वदेश जो सिंधुनदके दोनों तटोंपर बसा हुआ है, फल मूलोंसे शोभित है । उसकी रक्षा युद्धविशारद शस्त्रधारी गंधर्व करते हैं जो शैलूषनामक गंधर्वकी संतान हैं और तीन करोड हैं । उनको परास्त कर उस देशको अपने राज्यमें मिला लीजिये । किसी दूसरेका सामर्थ्य नहीं कि उस सुंदर देशकी सर कर सके । यदि आप इसे पसंद करें तो करें । हम आपका अनभल नहीं चाहते ।" संदेश सुनकर श्रीरघुनाथजी प्रसन्न होकर बोले, 'महर्षे ! आपका मंगल हो । ये दोनों राजकुमार तक्ष और पुष्कल अपने कर्त्तव्यमें सावधान रहकर वहां जायेंगे और मामाकी रक्षामें वहीं रहेंगे । भरतजी इन दोनों कुमारोंके साथ बहुतसी

---

३ चरखारी—गुढ़गति यह कि जब भरतजीने हनुमान्‌जीको बाण मारा तब वे शिथिल हो गये । सो यह बात रामचंद्रजीनेही जानी कि इनका अहंकार अब दूर हो गया । जो रामजीकी गुढ़गति है वह तुमही जानते हो ।

४ वि०—गुढ़गति यह है ' सगुन छीर अवगुन जल ताता । मिलइ रचइ परपंच बिधाता ॥भरत हंस रविबंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ' ।

सेना ले जाकर उन गंधर्वपुत्रोंको मारकर वहाँ दो नगर बसावेंगे। उन श्रेष्ठ नगरोंको आबाद कर अपने पुत्रोंका वहांका राज्य सौंप महात्मा भरत शीघ्र मेरे पास लौट आवेंगे।" यह कहकर भरतजी और दोनों कुमारोंको उन्होंने आज्ञा दी। शुभ नक्षत्र और योगमें गार्ग्य महर्षिको आगे कर वे सेना सहित रवाना हुए और डेढ़ मासमें कैकय देश पहुँचे।

यहांसे युधाजितभी सेना साथ लेकर भरतजीके साथ गंधर्व नगरको गये। सात दिन सात रात बड़ा भयंकर रोमहर्षणकारी युद्ध गंधर्वोंसे हुआ। तोभी किसी पक्षकीभी हार जित न हुई। चारों ओर रक्तकी नदियां बह निकलीं। तब भरतजीने संवर्त नामक अस्त्र गंधर्वोंपर चलाया जिससे वे तीन करोड़ गंधर्व विदीर्ण हो क्षणमात्रमें कालके हवाले हो गये। ऐसा घोर युद्ध जिसमें इतने गंधर्व पलभरमें कट गये देवताओंकी स्मृतिमेंभी कभी नहीं हुआ था।

'चित चातक नवांबुद बरन' इति। श्रीभरतजीभी श्याम वर्ण हैं जैसे रामजी। यथा, 'भरत रामही की अनुहारी। सहसा लखिन सकहिं नरनारी।' श्याम वर्ण होनेसे श्याम मेघकी उपमा बडीही सुंदर है। 'अंबुद' का भाव कि मेघ स्वातीकी वर्षा करनेवाले हैं जिसकी चाह चातकको होती है। सब मेघ जल नहीं बरसते। पर ये 'अंबु' (जलके) 'द' (देनेवाले) हैं। चातकका प्रेम मेघपर, वैसाही इनका प्रेम अपने पति श्रीभरतजीपर।

'माण्डवी' कोभी कहकर शक्तिसमेत वन्दना सूचित की एवं यह जनाया कि पत्नीभी आपके अनुकूल और गुणवती मिली जिससे धर्ममें बाधा न हो सकती थी। "कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुनसील सुख-सोभामई"

'अभयदाता' इति। इन्होंनेभी सिफारिश की है। पद २७९ देखिये। इसीसे अभयदाता विशेषण दिया।

समाप्त

संबंध सूची

संबंध	पृष्ठ
अर्जुनके गर्वहरण की कथा	६९
अर्जुन	७१
अदिती	३५
अप उपसर्ग	५२
आगम	८३
आसिष	१७
अंजना	२
अंजना गर्भ	६
कपाली	३६
कपी केसरी	८८
कश्यप	३५
कालनेमी	४४
कालाग्नी	५३
काव्य	८१, ८३
केतु	३
केसरी	१०६
कैरव	३
खल	३७
गगन गंता	३०
गरुड गर्वहरणकी कथा	७४
गंधर्व गर्वहरणकी कथा	२०१
गौतम	१६५, १७२
गुण	५०
चकोर	३
चमू	६३
जटा	६६
जनक	१६६, १७३
ज प्रत्यय	३४
जयति	२
जंत्र	४९
तंत्र	४४
द्रोण	६३
नाटक	८६
निगम	८३
परशुराम	१७४
पाक	४२
पुष्पक	४३
फन	१५५
ब्रह्म	४५
बालार्क	१
बालकेली	९
बाली	१३, २०
बिभीषण	४८
बंधन	१११
भरतजी बीरभारी	१९७
भीमसेनकी गर्व हरणकी कथा	६६
भीमसेनकी निर्भय ताकी कथा	६८
भीम गर्व गंजनकी कथा	६९
भूमिजा	९६
मर्म	४२
मरुत	५२
मरुद्गण	५२
महानाटक	९१
मेघनाद	१४
मंडल	३
मंत्र	४४
मन्मथ	८५
माण्डवी	२०२
रघुवीर	१६, १२६
राग धनाश्री	१०
राहु	३
लक्ष्मणावतार	१६९
वज्र	४
वानरोंके आयुध	३९
वात	६३
व्याकरण	८१
विश्वामित्र	१७१, १७५
वेदांग	४४
श्रीरामविनयावली	१२२
शुकदेवजी	४५
शूलपाणी	९९
सिरमोर	१०३
सुमित्राजीका घोर स्वप्न	१९७
सिंहीका	१३, २०
सूर्यग्रासका आध्यात्मिक रहस्य	१०
हनुमानजीका जन्म	२८
हनुमानजी रुद्र	१५
हनुमान मंत्र	७०